भाष्य त्रयम्

(हिन्दी अनुवाद)

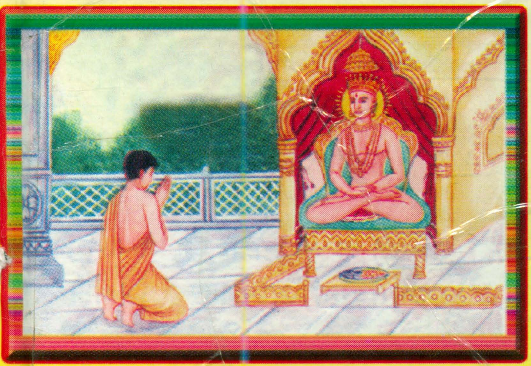

श्री चैत्यवंदन विधि

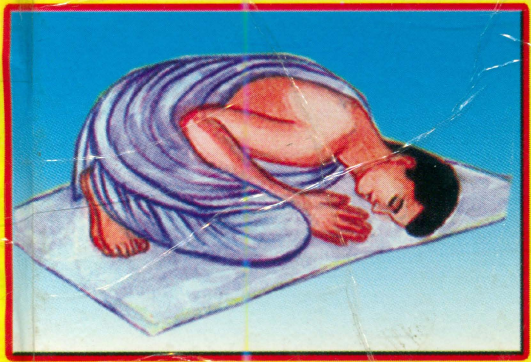

श्री गुरुवंदन विधि

श्री पच्चक्खाण विधि

संशोधक : पूज्यपाद दक्षिण केसरी
स्व. आ. दे. श्रीमद् विजय स्थूलभद्रसूरीश्वरजी म. सा.
के शिष्य रत्न वर्धमान तपोनिधि आ. दे. श्री विजय अमितयश सूरि म. सा.

श्री दक्षिण भारत-शासन-प्रभावक दक्षिण केशरी

स्व. प.-पू. आ. देव श्रीमद् विजय स्थूलभद्रसूरीश्वरजी म. सा,

के पावन चरणों में सादर वंदना

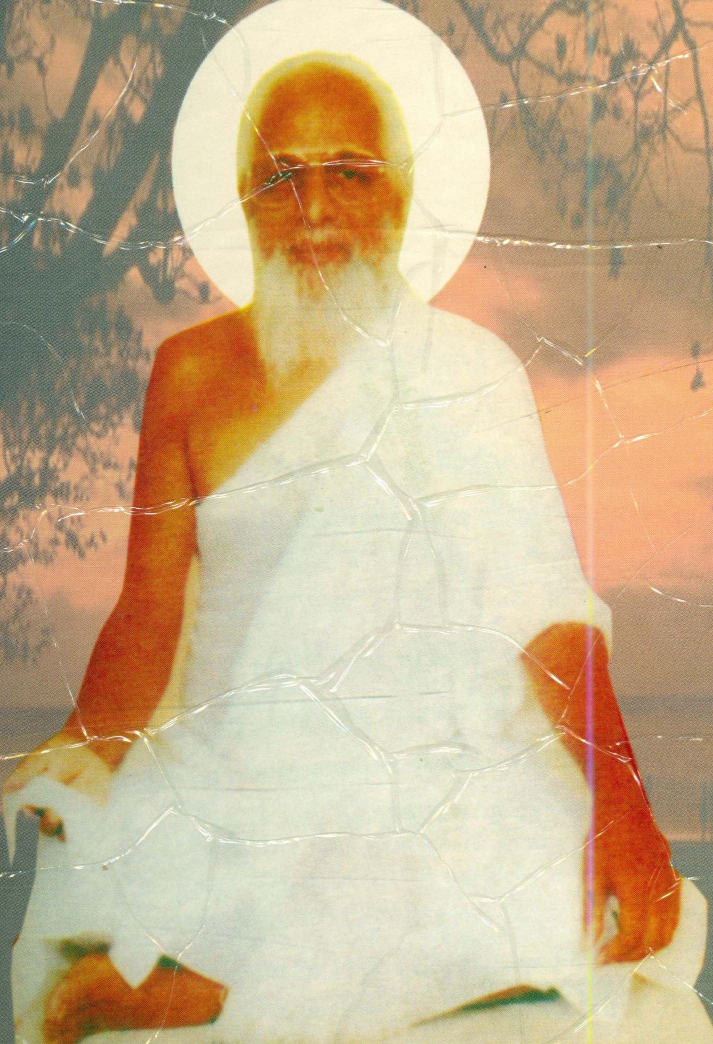

भाष्य त्रयम्

(हिन्दी अनुवाद)

तपागच्छीय देवेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

शुभ निश्रा एवं आर्शीवाद दाता

संकट मोचन पार्श्व भैरव तीर्थ स्थापक श्री लब्धि विक्रम स्थुलभद्रसूरीश्वरजी म. सा.
पट्टालंकार प.पू. आ. श्री कल्पयश सूरीश्वरजी महाराज एवं
ज्योतिषाचार्य स्वाध्यायमग्न प.पू. आ. श्री अमितयश सू. म. सा.

प्रेरक :

तपस्वी सम्राट रत्न वर्धमान तपोनीधि १००+४५ ओली के आराधक
प्रवर्तक प्रवर प.पू. मुनिराज श्री कलापूर्ण वि. म. सा.

हिन्दी भाषांतर कर्ता :

श्री वासुपुज्यस्वामी जैन धार्मिक पाठशाला के प्राध्यापक श्री मीठालालजी

संशोधक :

आ. भ. श्री. अमितयश सूरीश्वरजी महाराज

प्रकाशक

संकट मोचन पार्श्व भैरव तीर्थ,
अरसीकेरे (कर्नाटका)

ग्रंथ का नाम : भाष्य त्रयम् (हिन्दी अनुवाद)

नकल : १000

किंमत : प्रचारार्थ मूल्य - २५ रू.

प्राप्तिस्थान :

सोहनलालजी आनन्दकुमार तालेडा

महेन्द्रा ज्वेलर्स

चम्पक हाउस, 24/2, पिल्लप्पा लेन,

नगरथपेट क्रॉस, बेंगलोर - 560 002

फोन : 22215293

मुद्रण सेवा :

Gautamchand Jain, Bangalore
Mobile : 94484 65316 / 94484 75316

ज्ञान आँख - विधि पाँख

अनादि काल से आत्मा प्रमाद की पथारी में पोढकर भौतिक (पर) पदार्थों के पीछे अनंत-अनंत कर्मों की रज से गंदा बनता जा रहा है ।

अब पुण्योदय का सूर्योदय हुआ है अत: जैन शासन रुप नगर में प्रवेश मिला है। केवल प्रवेश मिलने पर कार्य निष्पन्न नही होता अत: जागृत होना पडेगा, सम्यगदर्शन यही जागृत दशा है, मिथ्यादर्शन निद्रित अवस्था है यानि एक है सभान-विवेक पूर्ण अवस्था, दूसरी है गुमराह-अविवेक भरी अवस्था ।

जागृत अवस्था वाला आत्मा शाश्वत शुध्धि के लिए तडपता है अजागृत आत्मा विनश्वर देह शुध्धि के लिए चिंतित रहता है, अत: देह शुध्धि के लिए पानी जरुरी है, देह तृप्ति के लिए बाह्य पदार्थ जरुरी है वैसे आत्म शुध्धि के लिए धर्म वाणी रुप पाणी की जरुरत है आत्म तृप्ति के लिए तप, त्याग, व्रत, नियम आदि की जरुरत है जहाँ आत्मा को परम शान्ति की अनुभूति होती है।

जीवन जीने के लिए पानी की जितनी आवश्यकता है इससे भी ज्यादा जिनवाणी का श्रवण और वितराग परमात्मा ने दिखाया हुआ मार्ग पर चलना आवश्यक है ।

पानी के लिए कुए, सरोवर, तालाब के प्रति झुकना पडता है वैसे सम्यकज्ञान रुप पाणी के लिए विनय, विवेक, नम्रता, समतादि गुणों को आत्मसात करना जरुरी बनता है ऐसी गुणावली मुक्ति तक पहुंचाती है ।

आँख और पाँख से पक्षी उड पाता है । मानव तैरने के ज्ञान मात्र से नही किन्तु हाथ पांव हिलाने की क्रिया से किनारा प्राप्त कर सकता है, मिठाई का थाल आँख देख सकती है लेकिन हाथ से मुंह में रखने से, दांतों से चबाने की क्रिया से जीभ स्वाद ले पाती है पेट तृप्ति का अनुभव करता है ।

आंतर वैभव को पाने के लिये सिर्फ ज्ञान से नही चलता इन के लिये क्रिया भी चाहिये आँख है लेकिन गति नही तो स्थान पर पहुंचना अशक्य है, आँख स्थान दिखाती है पाँव (गति) लक्ष सिध्ध करने में सहायक बनता है ।

धरती और आकाश का विराट अंतर काटने के लिये ज्ञान और क्रिया का मिलन चाहिये सम्यग्ज्ञान मोक्ष दिखाता है क्रिया वहाँ पहुंचाती है ।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

यही उक्ति के अनुसार आयंबिल तप के घोर तपस्वी सम्राट् महाज्ञानी और जिनका चित्तौड के राणा ने तपा का बिरुद देकर स्वागत किया था, ऐसे निष्पृहि तपोनिधि जगतचन्द्रसूरीश्वरजी के प्रकांड विद्वान कर्मग्रंथादि महन विषयों के कर्ता प.पू.आ. भ. देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग एवं कथानुयोग के

गहन सागर में अवगाहना कर शासन रुप नगर में ज्ञान रुप सरोवर से आध्यात्मिक मौक्तिक के आनंद लूटने वाले भव्य जीव रुप राजहंस के लिए चरणकरणानुयोग रुप तीन भाष्य की रचना कर भेंट दी है । जो कि चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग का महत्त्व बहुत है ।

ओघ निर्युक्ति (भा.गा.७) में 'दविए दंसण शुध्धि' द्रव्यानुयोग से दर्शन शुध्धि होती है क्योंकि उनके द्वारा युक्तिपूर्वक यथावस्थित अर्थ का ज्ञान होता है । ओघ निर्युक्ति (भाष्य गाथा-११) में अक्षर एवं अर्थ के अल्प बहुत्व का आश्रय कर चत्तुर्भंगी बताई है, अक्षर कम अर्थ बहुत वह है चरण करणानुयोग ओघ निर्युक्ति वगेरह, अक्षर बहुत अर्थ बहुत अर्थ कम वह है धर्म कथानुयोग ज्ञाता धर्म कथादि अक्षर बहुत अर्थ बहुत वह है द्रव्यानुयोग दृष्टिवाद वगेरे, अक्षर कम अर्थ भी कम वह है गणितानुयोग ज्योतिष्कांड विगेरे ऐसे चार अनुयोग में से चरणकरणानुयोग रुप तीन भाष्य की रचना में प्रथम चैत्यवंदन भाष्य में जिन मंदिर में प्रवेश की विधि, ८४ आशातना, जिनेश्वर के चार निक्षेप, ३ मुद्रा, पांच अभिगम, तीन प्रकार के वंदन, नवकारादि सूत्र के अक्षर-पद एवं संपदायें काउसग्ग के दोषों, उनका प्रमाण, सात चैत्यवंदन, देववंदन विधि आदि २४ द्वारों से २०७४ स्थानों से वर्णन किया है ।

द्वितीय गुरूवंदन भाष्य में गुरूवंदन के प्रकार, वंदनीय अवंदनीय की समझ, द्रव्य-भाव वंदन में शीतलाचार्यादि के दृष्टांत, वंदन कब करना, वंदन के निमित्त, मुहपत्ति की ओर शरीर की पडिलेहणा, ३२ दोष रहित वंदन, उनका फल, वंदन से उत्पन्न होनेवाले ६ गुण. गुरू की स्थापना किस में करना, अवग्रह गुरू की तेंतीस आशातना, सुबह शाम की संक्षिप्त वंदन विधि आदि का सुचारु रुप से वर्णन किया है ।

तृतीय पच्चक्खाण भाष्य में दश प्रकार के पच्चक्खाण, दश प्रकार के काल पच्चक्खाण, उच्चारविधि, उसका भेद, चार प्रकार के आहार, विगइयें, उनके ३३ भेद, ६ भक्ष्य, ४ अभक्ष्य, महाविगइ, ३० निवियातें, पच्चक्खाण के भांगे, उनकी शुध्धि और इहलोक एवं परलोक के फल को दिखाते धम्मिलकुमार एवं दामन्नक विगेरे दृष्टांत के साथ उपकारक बनें वैसा उमदा भाव से वर्णन किया है ।

अत: भाष्य त्रयम् नामक यह पुस्तक द्वारा ज्ञान प्राप्त कर शुध्ध क्रिया विधि का आचरण कर आत्मश्रेय की साधना में आगे बढकर मनुष्य जन्म का फल मोक्ष प्राप्त करें यही भावना है ।

अंतर में उछलती उर्मि के साथ : -
दक्षिण केसरी आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय स्थूलभद्रसूरि पदांबुज
भ्रमर शिशु कल्पयशसूरि का धर्मलाभ ।

महावीर जन्म कल्याणक
चैत्र शुक्ला १३, शनिवार
दिनांक -३१-४-२००७
वीर संवत २५३३

प्रकाशक के दो बोल

॥ श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथाय नमः॥

परम कृपालु परमात्मा ने मनुष्य जन्म का परम लक्ष्य बताया है कि जन्म जन्मान्तर के बंधनों से मुक्त बन कर मोक्ष प्राप्ति का परम फल प्राप्त करें। इस हेतु आत्म साधना करने के लिए सन्मति एवं सुसंस्कार प्राप्त करके धर्म ग्रन्थों का अध्ययन श्रवण चिन्तन मनन अति आवश्यक है। इसी संदर्भ में हमारे परम उपकारी दक्षिण केशरी परम पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय स्थूलभद्रसूरीश्वरजी म.सा. के पट्टालंकार प.पू. आ. भ. श्री कल्पयश सू. म.सा. एवं स्वाध्याय मग्न प.पू. आ. भ. श्री अमितयश सू. म.सा. और प्रवर्तक प्रवर तपस्वी सम्राट् रत्न वर्धमान तप की १००+४३ ओली के आराधक प्रवर्तक पू. मुनिराजश्री कलापूर्णविजयजी म.सा. की प्रेरणा एवं निश्रा में गत दि.२१.०१.२००७ को हर्षोल्लासपूर्वक हमारे "श्री नाकोड़ा भैरव ट्रस्ट" द्वारा संचालित "श्री संकटमोचन पार्श्व-भैरव तीर्थधाम" की भूमिपूजा हुई एवं दि.६.०५.२००७ को भारतवर्ष के तमाम संघों की उपस्थिति में उपरोक्त गुरूदेवों की निश्रा में तीर्थ की शिलान्यास विधि सम्पन्न कर बैंगलोर विजयनगर पाईपलाइन श्री संभव लब्धि-जैन श्वे. मू. संघ मंदिर की प्रथम वर्षगांठ की ध्वजारोहण शासनप्रभावना सह करवाकर चैन्नई (मैलापुर) संघ की आग्रहपूर्ण चात्तुर्मास की विनंति स्वीकृत कर यहाँ पधारे। हमारे ट्रस्टमण्डल, द्रव्य सहायकों एवं उद्घाटन कर्ता श्रीमान् महेन्द्रजी मुणोत 'मारुति मेडीकल, बैंगलौर' वालों ने जो यह ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय किया है उन सभी ज्ञान पिपासु आत्माओं को हम हमारे ट्रस्ट की ओर से धन्यवाद देते हैं।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में उपकारक बने इस हेतु को लक्ष में रखकर तपस्वी सम्राट् रत्न वर्धमान तपोनिधि १०० + ४३ ओली के आराधक प्रवर्तक प्रवर मुनि श्री कलापूर्ण वि. म.सा.की प्रेरणा से 'श्री यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाला', मेहसाणा द्वारा गुर्जर भाषा में प्रकाशित तीन भाष्य का हिन्दी भाषा में 'भाष्य त्रयम्' नामक यह पुस्तक प्रथमबार 'श्री नाकोड़ा भैरव ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित हो रहा है जिसका हमें मेघ-मयूर जैसा परम आनन्द है। सहयोगियों का ऋण स्वीकार करते हैं।

ऋण स्वीकार :

* श्री लब्धि विक्रम स्थूलभद्रसूरि पट्टालंकार कविरत्न वर्धमान तप समाराधक पू. आ. भ. श्रीमद् विजय कल्पयशसूरीश्वरजी म. सा. ने 'ज्ञान आँख - विधि पाँख' लिखकर देव गुरू धर्म विवरण की टूंक नोंध द्वारा अभ्यासियों को विषय की जानकारी देकर पुस्तक का गौरव बढ़ाया।

* स्वाध्याय मग्न, वर्धमान तपोरत्न पू. आ. भ. श्री. वि. अमितयशसूरीश्वरजी म. सा. ने स्वाध्याय मेंसे अपना अमूल्य समय निकालकर संशोधक बने।

* तपस्वीसम्राट्रत्न वर्धमान तपोनिधि (१००+४३) प्रवर्तक प्रवर पू. मुनिश्री कलापूर्णविजयजी म. सा. श्रुत भक्ति हेतु हिन्दी भाषी सुगमता से अभ्यास कर सके यही लक्ष्य सिद्ध करने के लिए हिन्दी भाषा में छपवाने के लिए प्रेरक बने।

* कर्म निर्जरा हेतु मीठालालजी महात्मा (गुरूजी) गुर्जर भाषा से हिन्दी भाषा में परिवर्तित किया।

* विद्याप्रेमी समाजसेवी कर्नाटक ज्योति श्रीमान महेन्द्रजी मुणोत (मारुति मेडीकल, बैंगलोर) ने विमोचन उद्घाटनकर्ताबनकर पुण्य लक्ष्मी का सद्व्यय कर सम्यग ज्ञान के प्रति आस्था के केन्द्र बने।

* श्रीमान सोहनलालजी तालेड़ा ने द्रव्य सहायक के साथ ही पुस्तक के प्रकाशन में प्रूफ संशोधन एवं छपाई के कार्य में अथक प्रयास किया।

* अभ्यासी सरलता से पढ़ सके ऐसे स्वच्छ एवं सुन्दर छपाई आदि में श्रीमान गौतमजी बागरेचा (बालोतरा वाला) मधुकर एन्टरप्राईजेज, बैंगलोर ने ध्यान देकर पुस्तक निर्माण कार्य में सहयोग प्रदान किया।

तप्त आत्माओं के लिए शीतल प्याऊ जैसा यह 'भाष्य त्रयम्' पुस्तक में सम्यक् ज्ञान के प्रति प्रीतिधारा के दान का प्रवाह बहाकर सुकृत का भागी बने। नामी अनामी सभी सहायकर्ताओं का भी ऋण स्वीकार करते हुए तृप्ति की अनुभूति करते हैं।

अन्तत: यह "भाष्य त्रयम्" पुस्तक का अभ्यासियों द्वारा अभ्यास कर देव गुरू धर्म के प्रति श्रद्धावान बनकर सम्यक् ज्ञान और सम्यक् क्रिया द्वारा मोक्षद्वार प्राप्त करें।

यही शुभ भावना के साथ।
श्री नाकोड़ा भैरव ट्रस्ट का जय जिनेन्द्र।
दिनांक ६.७.०७ (श्री पार्श्व नाकोड़ा भैरव तीर्थ शीला स्थापना दिन)

सहयोगदाता श्रुतभक्त

१) श्रीमान् महेन्द्रजी मुणोत (मारुति मेडीकल, बेंगलोर) ।

२) श्रीमान् पारसमलजी संपतराजजी, चित्रदुर्गा ।

३) श्रीमान् प्रकाशजी राठोड़ (कृष्णा सिल्क एण्ड सारीज, बेंगलोर) ।

४) श्रीमान् राजकुमारजी अशोककुमारजी मुणोत,पाईपलाईन,

५) श्रीमान् मांगीलाल एण्ड कं., बेंगलोर ।

६) श्रीमान् सोहनलालजी आनन्दकुमार तालेड़ा, बेंगलोर ।

७) श्रीमान् ताराचन्दजी प्रतापचंदजी राठोड़, बेंगलोर ।

८) श्रीमान् सौभागचन्द चत्रभुज सलोत,बेंगलोर ।

९) श्रीमान् मधुकरभाई, ए. आर. एण्टरप्राइजेज, बेंगलोर ।

१०) श्रीमान् दामजी तेजसी वीरा, गंगानगर ।

११) श्रीमान् किशोरकुमार तेजसी वीरा, गंगानगर, बेंगलोर ।

१२) श्रीमान् पारसमलजी मुकेशकुमार पूनमिया, बेंगलोर ।

१३) श्रीमान् मिश्रीमलजी इन्दरमलजी गाँधीमुथा, बेंगलोर ।

१४) श्रीमति भंवरीबेन घेवरचन्दजी सुराणा, बेंगलोर ।

१५) श्रीमति कमलाबाई देवीचन्दजी साकरीया ।

१६) श्रीमति कलावती दिनेशकुमारजी सोनेगरा ।

१७) श्रीमति मल्लीबेन लहेरचन्दजी (मद्रास) ।

१८) श्रीमति पानीबाई हस्तीमलजी ।

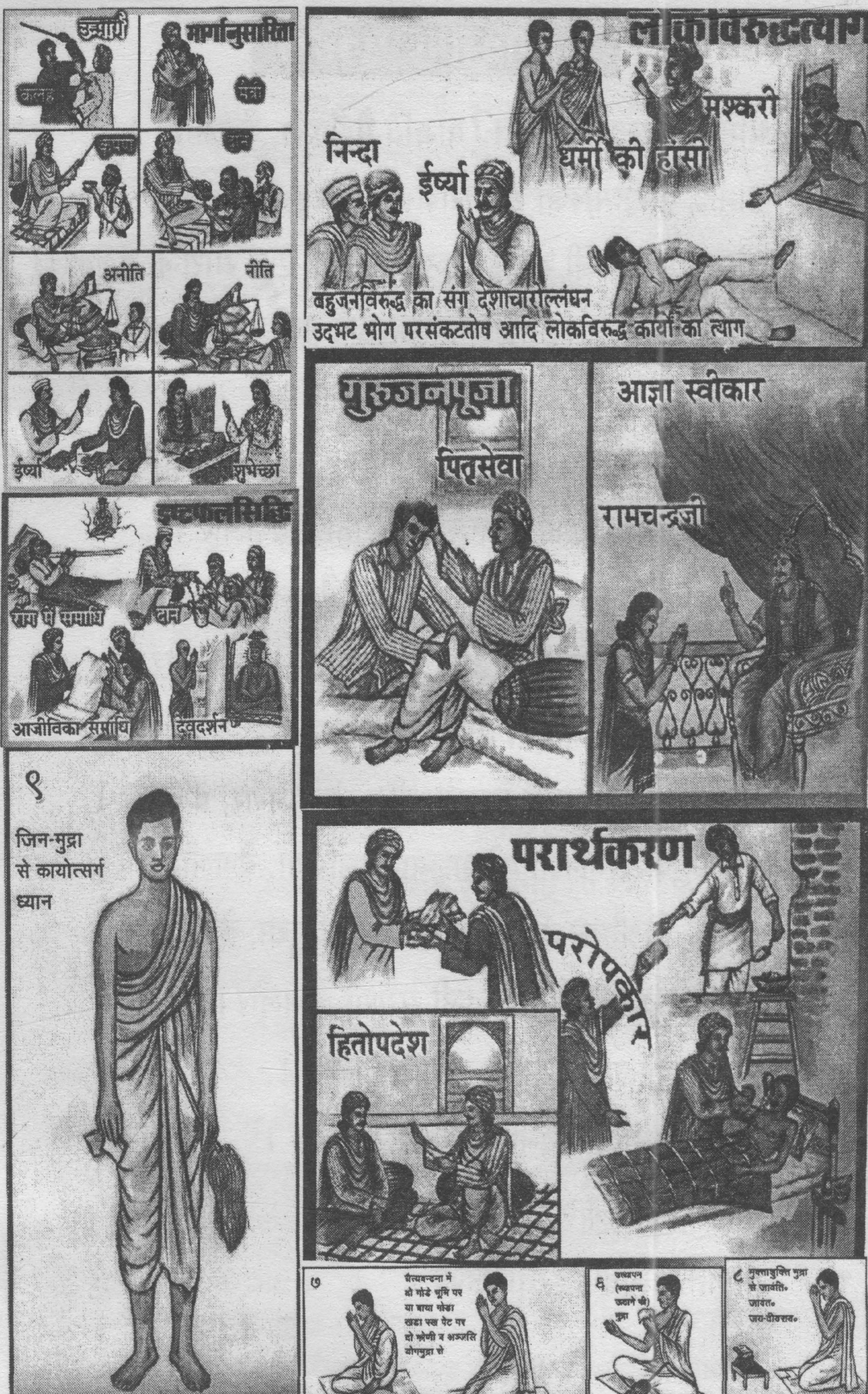
मार्गानुसारिता
कलह
अनीति
नीति
ईर्ष्या
शुभेच्छा
इष्टफलसिद्धि
रोग में समाधि
दान
देवदर्शन
लोकविरुद्धत्याग
निन्दा
ईर्ष्या
धर्मी की हाँसी
मश्करी
बहुजनविरुद्ध का संग देशाचारोल्लंघन
उद्भट भोग परसंकटतोष आदि लोकविरुद्ध कार्यों का त्याग
गुरुजनपूजा
पितृसेवा
आज्ञा स्वीकार
रामचन्द्रजी
१
जिन-मुद्रा
से कायोत्सर्ग
ध्यान
परार्थकरण
परोपकार
हितोपदेश
७
६
८

श्री चैत्यवंदन भाष्य

मंगलाचरण : विषय : परंपरा संबंध : प्रयोजन : अधिकारी:

वंदित्तु वंदणिज्जे सव्वे चिइ- वंदणाऽऽइ सु-वियारं ।

बहु-वित्ति- भास -चुण्णी-सुयाऽणुसारेण -वुच्छामि ॥१॥

(**अन्वय** - सव्वे वंदणिज्जे, वंदित्तु, बहु-वित्ति-भास-चुण्णी- सुयाऽणुसारेण चिंइ- वंदणाऽऽइ सुवियारं वुच्छामि)

शब्दार्थ : - वंदित्तु = वंदन करके, वंदणिज्जे = वंदन करने योग्य, सव्वे = सभी को या सर्वस्व जानने वाले-सर्वज्ञ को, चिइ-वंदणाऽऽइ सुवियारं =चैत्यवंदन आदि का सु अर्थात् व्यवस्थित विचार, बहुवित्ति-भास-चुर्ण्णी- सुयाऽणुसारेण = अनेक टीकाएँ-भाष्य-चुर्ण्णियाँ और आगम के अनुसार, वुच्छामि = कहता हुं ।

गाथार्थ :- वंदन करने योग्य सर्वज्ञों को वंदन करके, अनेक टीकाएँ भाष्य चुर्ण्णियाँ और आगम के अनुसार, चैत्यवंदन आदि का(सुविचार) व्यवस्थित विचार कहता हूं।

विशेषार्थ :- सव्वे तक मंगलाचरण है । सुविचार तक ग्रंथ का विषय दर्शाया है । यहाँ तीनों ही भाष्यरूप एक विस्तृत ग्रंथ समझना है क्योंकि - चिइ-वंदणाइ-सु-वियारं- में आदि पद से चैत्यवंदन-गुरुवंदन और प्रत्याख्यान इन तीनों ग्रंथों का सुविचार कहना है , जिससे ग्रंथ का नाम भाष्यत्रयम रखा गया है ।

शेष बहु वित्ति आदि पदो से ये ग्रंथ परंपरागत है ऐसा संबंध दर्शाया है और ग्रंथकार को इस विषय का ज्ञान अपने गुरुओं से परंपरा से प्राप्त हुआ है, ऐसा गुरु परंपरा संबंध भी गर्भित रीत से दर्शाया है।

जैनधर्म की आराधना करने की इच्छावाले भव्यजीव इस ग्रंथ को पढने-समझने के अधिकारी है तथा अल्प बुद्धिवाले जीवों के लिए बहुत सारे भाष्य चुर्ण्णियाँ आदि ग्रंथों को समझ पाना कठिन है, अत: बालजीवों के बोध के लिए संक्षेप मे नूतनग्रंथ रचने का प्रयोजन है ।

तथा ग्रंथकार का बालजीवों पर उपकार करने की बुद्धिरुप उतम भावना से कर्म निर्जरा, अध्ययन करनेवाले तथा कथनानुसार आचरण करनेवाले को आचार का ज्ञान होने

से, ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा तथा उत्तम आचार के पालन से पुराने पापकर्मों की निर्जरा और इस प्रकार की निर्जरा से परंपरा द्वारा ग्रंथकार को और अध्ययन करनेवाले को मोक्ष मिले,इस प्रकार दोनों का अंतिम परंपरा प्रयोजन है !अर्थात ग्रंथकार परंपरा से मोक्ष प्राप्त करने के हेतु से ग्रंथ की रचना करते है ! और अध्ययन करने वाले का उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है और ऐसे ही उद्देश्य से पढना चाहिए । संबंध की जानकारी के लिए पंचांगी का स्वरूप हमें जानना चाहिए ।

पंचांगी का बोध

सूत्र:-तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान के द्वारा जाने हुए लोकाऽलोक के तीनों ही काल के सर्व द्रव्य क्षेत्र काल और भावका उपदेश देते है और उपदेशरूप में कही हुई बातों को गणधर.भगवंत **सूत्र** रूप में गूंथते (रचना करते) है ये तथा १० वें से १४ वें पूर्व तक के ज्ञाता श्रुतज्ञानी और प्रत्येक बुद्ध महात्मा,प्राणीओं के अनुग्रह के लिए जो ग्रंथ रचना करते है उसे भी सूत्र कहा जाता है । अंग उपांग आदि पवित्र मूल आगम है ।

निर्युक्ति :- सूत्र के साथ में गर्भित तरीके संबंध रखने वाले पदार्थो का नय निक्षेप अनुगम पूर्वक निरुपण कर सूत्र के स्वरुप को समझावे उसे निर्युक्ति कहते है, प्राकृत गाथाबद्ध, प्राय: चौदपूर्वधरकृत निर्युक्ति प्रसिद्ध है ।

भाष्य:-सूत्र और निर्युक्ति में जो महत्व की बात कही गयी हो उसे संक्षेप मे सही स्वरुप मे समझावे उसे भाष्य कहते है ।

चूर्णि :-उपरोक्त तीनो ही ग्रंथ की प्रत्येक हकिकत को स्पष्ट करके समझावे उसे चूर्णि कहते है । और ये लगभग प्राकृत भाषा में होती है, उसमें संस्कृत भाषा का मिश्रण भी देखने में आता है ।

वृत्ति-उपरोक्त चारों ही ग्रंथो को लक्ष्य में रखकर आवश्यकता अनुसार विस्तार से संस्कृत भाषा में रची गयी जैनागमों की टीका, उसे वृत्ति कही जाती है ।

इन्हें जैनागम के पांच अंग कहे जाते है और वर्तमान में बहुत से सूत्रों के पाचों ही अंग विद्यमान है ।

तीर्थंकर परमात्मा का उपदेश-**आत्मागम** ।

गणधर भगवंतो की सूत्र रचना-**अनन्तरागम** और उसके बाद की उसे अनुसरने वाली सुविहित पुरुषों की सर्व रचनाएँ **परंपरागम** कहलाती है ।

तीनों ही प्रकार के आगम प्रमाण मानना, ये सच्चे जैन का लक्षण है । उसमें शंका-संदेह करना ये मिथ्यात्व होने का लक्षण है । समझने के लिए प्रश्न करना उचित है लेकिन पंचांगी में कही गयी बातें सत्य होगी या गलत ? ऐसा संदेह जो सत्य ज्ञान से दूर ले जाने वाला होने से मिथ्यात्व है।

इस ग्रंथ की रचना उपरोक्त दर्शाये हुए पांचो ही अंगो के आधार पर की गयी है इसलिए प्रमाणभूत है । 'सूयाणुसारेण' इस पद को रखकर आचार्य भगवंत ने आगम-परंपरा और गुरु परंपरा के अनुसार इस ग्रंथ की रचना की है ऐसा गर्भिततौर से सूचन किया है।

अन्य विस्तृत ग्रंथ विद्यमान होने पर भी स्वयं का और अन्य बालजीवों का कल्याण हो, इस आशय से संक्षेप में इस ग्रंथ की रचना करना ये प्रयोजन है । मंगलाचरण व विषय,संबंध, प्रयोजन और अधिकारी ये चार अनुबंध, इस प्रकार ये पांच विषय (इस प्रथम गाथा में बताये गये है ।)

चैत्य:- शब्द के बहुत सारे अर्थ है । यहां जिनमंदिर और जिनप्रतिमा जिसका मुख्य अर्थ है। चित्यायां भवम चैत्यम= अर्थात् निर्वाण को प्राप्त तीर्थकरों की चिता के स्थान पर बनाये गये स्तूप और चरण पादुकाएँ या प्रतिमारूप में स्मारक और अन्य भी उसके अनुकरण रूप जितने भी स्मारक हो उसे भी चैत्यमिव चैत्यं = इस अर्थ के आधार से चैत्य कहा जाता है । अर्थात् मंदिर और प्रतिमा के लिए चैत्य शब्द सार्थक है । इस दोनों के निमित्त से परमोपकारी तीर्थकंर परमात्माओं के प्रति परम लोकोत्तर विनय दर्शाना है । उसे दर्शाने के लिए आचार की विधि बतानेवाली और उसमें आनेवाले मूलसूत्रों के विषय में संक्षेप में भावार्थ रूप में विवेचन करने वाली ये गाथाएँ चैत्यवंदन भाष्य की कही जाती है।

चिइवंदणाइ :- शब्द में आदि शब्द से गुरुवंदन और प्रत्याख्यान भाष्य भी समझ लेना चाहिये ।

श्री तीर्थंकर परमात्माओं के चरित्र का वांचन करते उनमें परम श्रेष्ठ चारित्र, तप, वीर्य और अनंतज्ञान है ऐसा हमें ज्ञात होता है तथा प्राणीमात्र के कल्याण के लिए उन्होंने परमार्थ का जो महान उपदेश दिया था जिसकी असर आज भी विश्व में देखने को मिलती है।

स्वयं कृत-कृत्य थे फिर भी,धर्मतीर्थ रूप-जैनशासन की स्थापना करके,जीवों के चारित्र और सदाचार की पवित्रता की सुवास दीर्घ काल तक रहे, इसके लिए श्रेष्ठत्तम साधन की व्यवस्था कर हमें दी है।

जिसके, कारण आज भी अनेक जीव उच्च कोटि के चारित्र के पात्र है, त्यागी है, महात्मा हैं और अनेक जीव इस प्रकार के प्रयास के प्रति सजाग है।

अनेक जीवों को सन्मार्ग का ज्ञान देकर, क्लेश दु;खादि से बचाया जा सकता है। फिर वो मानव हो या अन्य जाति के प्राणी विगेरे हो। आज भी जिनके जीवन में मानवता सच्चारित्र, व आदर्शता के गुण महक रहे है, फिर वो आर्य हो अनार्य जाति के मानव हो तथा आज हमें अनेक प्रकार के सद्‌गुण वारसे में मिले है, हम जंगली अवस्था में नहीं है, इसका सारा श्रेय चारों तरफ से सिर्फ तीर्थंकर परमात्माओं को ही जाता है।

तथा लोक व्यवहार में जो सुव्यवस्था प्रमाणिकता, नियमबद्धता, शांति सदाचार, सद्‌गुण, परोपकार की भावना, श्रेष्ठ-बंधारण, विगेरे जहाँ दिखाई देता है ये सारा प्रताप तीर्थंकर परमात्माओं का है। उसका लाभ आज का मानव समाज व प्राणी मात्र ले रहा है। इसी कारण सभी के जीवन में सहज जो सुव्यवस्था और सुघटनाऐं घटती है, ये सारा उपकार भी तीर्थंकर परमात्मा का ही है।

इसीलिए समझदार मानव प्रतिपल परमात्मा को याद करता है। भक्ति करता है, और परमात्मा को भूलता नहीं है और जब जब अनुकूलता मिले तब तब परमात्मा का लोकोत्तर परम विनय करना नही भूलना चाहिये, इस दुनिया के किसी भी कृतज्ञ मानव को इस कर्तव्य को नही भूलना चाहिये।

परमात्मा के प्रति लोकोत्तर परम विनय करने के अनेक प्रकार है, लेकिन उन सभी में चैत्यवंदन मुख्य होने से उस विषय में विचार करने से लगभग सर्व प्रकार जानने का मार्ग सुगम हो जाता है।

वादीवेताल श्रीशांतिसूरि महाराज का **चिइवंदण महाभास** नामका विस्तृत ग्रंथ विद्यमान होने पर भी, उसी का आधार लेकर बालजीवों के लिए ये ग्रंथ संक्षेप में रचा गया है।

यद्यपि चैत्य के द्वारा तीर्थंकर परमात्मा की ही भक्ति करने का उद्देश्य है, फिर भी बाल जीवों के मन में चैत्य नाम की धर्म संस्था केन्द्रित करने में आती है। बालक स्कूल जाता है वहाँ जाने का मुख्य प्रयोजन तो ज्ञान प्राप्त करने का है, फिर भी "ज्ञान" प्राप्त करने जाता हूं, इसके बजाय

स्कूल जाता हूं, इसप्रकार बोलता है। इसी तरह "चैत्यवंदन" करने जाता हूं अर्थात् भक्ति करने की संस्था जो चैत्य है, उसकी मुख्यता बाल जीवों के मन में स्थिर करने के भाव से चैत्य शब्द का प्रयोग करने में आता है। जिस प्रकार स्कूल ज्ञान प्राप्त करने की संस्था है,वैसे ही परमात्मा की भक्ति एवं सर्वधार्मिक प्रवृति करने की केन्द्रभूत संस्था, चैत्य है और वो संस्था सर्व संस्थाओं मे शिरोमणिरूप संस्था है।

चैत्य को उद्देश्य कर परमात्मा की भक्ति करने के संख्याबंध प्रकार है, इसकी जानकारी इस ग्रंथ से और गुरुगम से प्राप्त करें।

२४ मुख्य द्वार मुख्य भेदों की संख्या सहित

दहतिग अहिगमपणगं दुदिसि तिहुग्गह तिहाउ वंदणया

पणिवाय नमुक्कारा वन्ना सोलसयससीयाला ॥२॥

इगसीइसयंतुपया सगनउई संपया उ पण दण्ड।

बार अहिगारा चउवंदणिज्ज सरणिज्ज चउह जिणा ॥३॥

चउरो थुई निमित्तअट्ठ बार हेउअ सोल आगारा

गुणवीस दोस उसग्गमाणं थुतं च सग वेला ॥४॥

दस आसायण चाओ सव्वे चिइ-वंदणाइठाणाइं

चउवीस-दुवारेहिं दुसहस्सा हुंति चउसयरा॥५॥

शब्दार्थः-**दहतिग**=दशत्रिक, **अहिगमपणगं**=पांच अभिगम, **दुदिसि** = दो दिशाएँ **तिहुग्गह** = तीन प्रकार का अभिग्रह, **तिहा**=तीनप्रकार से, **उ**=और,**वंदणया**=वंदन, **पणिवाय**=प्रणिपात, **नमुक्कारा**=नमस्कार,**वन्ना**=वर्ण-अक्षर,सोलसयसीयाला=सोलह सो सेंतालीस॥२॥

इगसीइसयं=एक सो एक्यासी, पया=पद, सगनउई=सत्तानवें, संपया=संपदाएँ, पण= पांच, दण्ड=दंडक, बार=बारह, अहिगारा= अधिकार, चउवंदणिज्ज=चार वंदन करने योग्य, सरणिज्ज=स्मरण करने योग्य, चउह=चार प्रकार के, जिणा= जिनेश्वर भगवंत ॥३॥

चउरो=चार, थुई=स्तुतियाँ, निमित्त =निमित्त, अट्ठ=आठ, बारहेउ=बारह हेतु,

सोल=सोलह, आगारा=आगार, गुणवीस=उन्नीस, दोस=दोष, उसग्गमाणं = कायोत्सर्ग का प्रमाण, थुतं = स्तवन, सग =सात, वेला= बार (वखत) ॥४॥

दस आसायणचाओ = दस आशातनाओं का त्याग, सव्वे =सर्व, चिइ-णाइ=चैत्यवंदन के, ठाणाइं = स्थानक, चउवीस-दुवारेहिं = चौवीस द्वारों को लेकर, दुसहस्सा = दो हजार, हुंति = होता है, चउसयरा=चुम्मोत्तर ॥५॥

गाथार्थ :- दशत्रिक, पांच अभिगम ,दो दिशाएँ, तीन प्रकार के अवग्रह, तीन प्रकार के वंदन, प्रणिपात, नमस्कार, सोलह सौ सुडतालीश अक्षर ॥२॥

एकसो एक्यासी पद, सत्तानवे संपदाएँ, पांच दंडक, बारह अधिकार, चार वंदन करने योग्य, एक स्मरण करने योग्य, चार प्रकार के जिनेश्वर भगवंत ॥३॥

चार स्तुतियाँ , आठ निमित्त, बारह हेतु, सोलह आगार, उन्नीस दोष, काउस्सग्ग का प्रमाण, स्तवन, सात वार ॥४॥

दस आशातनाओं का त्याग, चौवीस द्वारों को लेकर चैत्यवंदन के सर्व स्थान दो हजार चुम्मोत्तर (२०७४) होते है ॥५॥

विशेषार्थ :- इन चारों गाथाओं में चैत्यवंदन भाष्य में वर्णित मुख्य २४ द्वार और उसके २०७४ पेटा भेदों का वर्णन संक्षेप में किया गया है ! गाथाओं में उ-तु-य-च विगेरे शब्द है। उनका प्रयोग भेंदो को एकत्रित करने के लिए या पादपूर्ति के लिए है, इस प्रकार आगे भी ध्यान में रखना ।

संख्या	द्वार	योग	संख्या	द्वार	योग
१०	त्रिक	३०	१	स्मरणीय	१
५	अभिगम	५	४	जिनेश्वर	४
२	दिशिस्थिति	२	४	स्तुति	४
३	अवग्रह	३	८	निमित्त	८
३	वंदन	३	१२	हेतु	१२
१	प्रणिपात	१	१६	आगार	१६

१	नमस्कार	१	१९	कायोत्सर्ग के दोष	१९
१६४७	अक्षर	१६४७	१	कायोत्सर्ग के प्रमाण	१
१८१	पद	१८१	१	स्तवन	१
१७	संपदा	१७	७	चैत्यवंदन	७
५	दंडक	५	१०	आशातनाओं का त्याग	१०
१२	अधिकार	१२			
४	वंदनीय	४		कुल बोल	२०७४

२०७४ बोलो में से, ३ निसीहि ३ दिशि निरीक्षण, १९ कायोत्सर्ग के दोष और १० आशातनाओं का त्याग ये ३५ बोल त्याग करने योग्य है शेष २०३९ बोल आदरने योग्य है।

२४ मुख्यद्वार और उसके २०७४ पेटा द्वार की विस्तार पूर्वक जानकारी

१ दशत्रिक प्रकरण, दशत्रिकों के नाम

तिन्नि निसीही तिन्नि उ पयाहिणा तिन्नि चेव य पणामा
तिविहा पूया य तहा अवत्थ- तिय-भावणं चेव ॥६॥
ति-दिसि- निरिक्खण-विरई पय-भूमि-पमज्जणं च तिक्खुत्तो
वन्ना-ऽऽ-इतियं मुद्दा-तियं च तिविहं च पणिहाणं ॥ ७॥

(**अन्वय:**-तिन्नि निसीही, तिन्नि पयाहिणा, तिन्नि पणामा, तिविहा पूया, अवत्थतियं,-भावणं, तिदिसी निखिखण विरई, तिक्खुत्तो पय भूमि :-पमज्जणं, वन्नाइतियं मुद्दा-तियं, तिविहं च पणिहाणं, उ-च-य-चेवा:समुच्चयार्था पादपूर्त्यर्थमपि)

शब्दार्थ:- तिन्नि=तीन, निसीहि=निसीहि, पयाहिणा=प्रदक्षिणा, पणामा= प्रणाम, तिविहा=तीन प्रकार से, पूया=पूजा, अवत्थ-तिय-भावणं=तीन अवस्था का चिंतन करना, ति-दिसी-निरिक्खण-विरइ = तीन दिशाओं तरफ नही देखना, तिक्खुत्तो= तीन बार, पयभूमि पमज्जणं=पैर की जमीन की प्रमार्जना करना, वन्नाइ-तियं=वर्णादिक त्रिक, मुद्दा-तियं=तीन मुद्राएँ, तिविहं=तीन प्रकार के, पणिहाणं=प्रणिधान।

गाथार्थ:- तीन निसीहि, तीन प्रदक्षिणा, तीन प्रणाम, तीन प्रकार की पूजा (और) तीन अवस्थाओं का चिंतन करना ॥६॥

तीन तरफ की दिशाओं में देखना नही, तीन बार पैर की जमीन की प्रमार्जना करना,वर्णादिक तीन, तीन मुद्राएँ,और तीन प्रकार के प्रणिधान ॥७॥

विशेषार्थ :-

तीन निसीहि	तीन दिशाओं तरफ देखने का त्याग
तीन प्रदक्षिणा	तीन बार पैर की भूमि की प्रमार्जना
तीन प्रणाम	तीन वर्णादिक का आलंबन
तीन पूजा	तीन मुद्राएँ
तीन अवस्थाओं का चिंतन	तीन प्रणिधान

निसीहि =निषेध, रोकना; प्रदक्षिणा=प्रभु को फिरती प्रदक्षिणा देना , अवस्था=प्रभु के जीवन के मुख्य प्रसंग, त्रिदिशि निरीक्षण=प्रभु के मुख तरफ दृष्टि , शेष तीन दिशाओं तरफ नही देखना । प्रमार्जना=भूमि को साफ करना (जीव जन्तु की रक्षा के लिए) आलंबन=भाव वृद्धि में सहाय रूप , मुद्रा=भाव सूचक आकृत्ति, प्रणिधान= मन, वचन, काया की एकाग्रता ! इन दसोंही त्रिकों का विस्तार अगली गाथा में कहा जायेगा ।

विस्तार पूर्वक दशत्रिक का वर्णन

(१) तीन निसीहि

घर -जिणहर -जिणपूआ-वावार-च्चायओ निसीहि-तिगं ।
अग्ग -द्दारे मज्झे तइया चिइ-वंदणा समए ॥८॥

(**अन्वय** :-अग्गद्दारे मज्झे तइया चिइ-वंदणा समये घर - जिणहर - जिणपूआ - वावार-च्चायओ निसीहि-तिगं ।

शब्दार्थ :-घर-जिनहर-जिण-पूआ-वावार-च्चायओ=घर जिनमंदिर और जिनपूजा की प्रवृति के त्याग को लेकर, निसीहि - तिगं=तीन निसीहि, अग्गद्दारे=मुख्य द्वार पे, मज्झे= मध्यमें, तइया=तिसरी, चिइ - वंदणा-समये=चैत्यवंदन के समय ।

गाथार्थ :- मुख्यद्वारपर ,मध्यमें और तीसरी चैत्यवंदन के समय (अनुक्रम से) घर, जिनमंदिर और जिनपूजा की (द्रव्य) प्रवृत्ति के त्याग को लेकर तीन प्रकार की निसीहि होती है ।

विशेषार्थ :- निसीहि अर्थात् निषेध. जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति के महानकार्य में मग्न होने से पूर्व अन्य प्रवृतिओं में से मन,वचन और काया की प्रवृत्ति को रोक लेनी चाहिए । मन यदि अन्य प्रवृत्ति में चला जाता है तो भक्ति का वास्तविक आंनद नही आ सकता, अत: भक्ति में प्रणिधान करना अर्थात् मन वचन काया की एकाग्रता बनाये रखना । ये तीनो निसीहि जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति में उत्तरोत्तर भाववृद्धि के विकास की सूचक है ।

निसीहि त्रिक :-

(१) जिनमंदिर दीवालवाला हो तो दीवाल के द्धार पर और न होतो जिनमंदिर के प्रवेश द्धार पर प्रथम निसीहि कहना। जिससे प्रभुभक्ति के अलावा घर दुकान व्यापार, सामाजिक, देश विदेश परोपकार अनुकंपा सुपात्रदान विगेरे सभी कार्य में प्रवृत्ति न करने की प्रतिज्ञा होती है। मात्र प्रवेशद्धार तक कार्य की छूट रहती है प्रवेश करते ही सारी ही प्रवृत्तियां बंध हो जाती है, विचार तक नही कर सकते। मात्र मंदिर संबंधि (देख रेख संबंधि) बात कर सकते है, और मुनि महात्माओं को वंदन, व उनके साथ धर्म चर्चा करने की छूट रहती है।

(२) केशर पुष्पादि द्रव्य सामग्री का थाल लेकर मंदिर के मध्य भाग में दूसरी निसीहि कही जाती है। दूसरी निसीहि कहने के बाद जिनमंदिर कार्य संबंधि प्रवृत्ति का भी निषेध हो जाता है। मात्र परमात्मा की द्रव्य पूजा भक्ति करने की छूट होती है।

(३) सभी तरह की द्रव्यपूजा कर लेने के बाद चैत्यवंदन से पूर्व भावपूजा में लीन होने के लिए तिसरी निसीहि कही जाती है। जिसके बाद द्रव्यपूजा का भी निषेध हो जाता है। मात्र भावपूजा की छूट रहती है अर्थात् भाव पूजा में उपयोगी चैत्यवंदन,स्तवन,कायोत्सर्ग स्तुति आदि करने की छूट रहती है।

अथवा तीनो स्थान पर मन वचन काया की प्रवृतिओं का निषेध सूचन करने के लिए तीन तीन बार भी निसीहिं ,निसीहि,निसीहि, कही जाती है, अर्थात् प्रवेशद्धार, मध्यभाग, में व चैत्यवंदन से पूर्व तीन तीन बार निसीहि शब्द का प्रयोग करने पर भी तीन ही निसीहि गिनी जाती है।

मुनिभगवंत व पौषधव्रतधारी श्रावक के पास द्रव्यपूजा सामग्री नही होने से मुख्य प्रवेश द्धार पर ही प्रथम निसीहि एक बार या तीन बार उच्चारण करने की होती है। इस निसीहि-से शेष मुनिचर्या और पोषधचर्या का त्याग हो जाता है। जिनमंदिर संबंधि उपदेश योग्य व्यवस्था का निषेध करने के लिए दूसरी निसीहि रंगमंडप मे प्रवेश करते समय कही जाती है और चैत्यवंदन के प्रारंभ में तीसरी निसीहि कही जाती है।

तीर्थ या जिनमंदिर की देखरेख बराबर न हो, व्यवस्था में खामी हों तो उन्हें दूर करने के लिए मुनिभगवंतों का (सर्व सावद्य के त्यागी होने पर भी) उपदेश देने का अधिकार है , और श्रावकों के गैर जिम्मेदारी वाले रवैये से विनाश हो रहे, तीर्थो को बचाने के लिए शक्ति संपन्न श्रावकों को उपदेश देना चाहिये श्रावको को गलत लगेगा ऐसा सोचकर मुनिभगवंत उपेक्षा करते है, तो वो श्री जिनेन्द्र प्रभु की आज्ञा के आराधक नहीं है.परमात्मा की आज्ञा ये सर्वोपरी धर्म है अत: चैत्य की अव्यवस्था दूर करने के व्यापार का निषेध मुनि को व व्रतीगृही (व्रतधारी) को इस दूसरी निसीहि में हो जाता है।

(२) प्रदक्षिणा त्रिक :- पूजा करने से पहले प्रार्थना करने के बाद प्रभु के दाहिनी ओर से भगवंत के गंभारे के चारों तरफ तीन बार प्रदक्षिणावर्त से भ्रमण करना, उसे दूसरा प्रदक्षिणा त्रिक कहते है। प्रदक्षिणा में तीन बार भ्रमण करने का कारण, ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र की प्राप्ति तथा ये भक्ति बहुमान सूचक है। उस समय समवसरण में विराजमान भाव अरिहंत का चिंतन करना तथा भमती में चारों तरफ भगवंत विराजमान हों तो उन्हें वंदन करते हुए भ्रमण करना चाहिये (प्रव.सा., धर्म सं. भावार्थ) प्रदक्षिणा प्रथम निसीहि कहने के बाद देनी चाहिये। उसके बाद द्रव्यपूजा के लिए रंगमंडप में प्रवेश करते समय निसीहि कही जाती है। (श्राद्धविधि वृत्ति)

(३) तीसरा प्रणाम त्रिक :-

अंञ्जलि-बद्धो अद्धोणओ अ पंचंगओ अ ति-पणामा
सव्वत्थ वा ति -वारं सिराइ- नमणे पणाम-तियं ॥१॥

अन्वय:-अंजलि-बद्धो अद्धोणओ पंचंगओ ति-पणामा वा सव्वत्थ
तिवारं सिराइ-नमणे पणाम तियं ॥१॥

शब्दार्थ :-अंजलि बद्धो=अंजलिपूर्वक, अद्धोणओ=अर्धावनत,पंचंगओ=पांच अंगसे, तिपणामा=तीन प्रणाम, वा=अथवा, सव्वत्थ=सभी स्थानो में(तीन प्रणाम), ति वारं= तीन बार, सिराइ नमणे=मस्तकादि झुकाने से, पणाम तियं= प्रणाम त्रिक होता है।

गाथार्थ :-अंजलि पूर्वक,प्रणाम अर्धावनत प्रणाम और पंचांग प्रणाम ये तीन प्रणाम है अथवा (भूमि आदि सभी स्थानो में) तीन बार मस्तक आदि झुकाने से भी तीन प्रकार के प्रणाम होते है।

विशेषार्थ:-परमात्मा के दर्शन होते ही दोनों हाथ जोडकर दसों अंगुलियों को मिलाकर मस्तक पर स्थापना करना-**अंजलिबद्ध प्रणाम** कहलाता है। खडे होकर किंचित् मस्तक झुकाना, या मस्तक व हाथ के द्वारा भूमिस्पर्श या चरण स्पर्श करना,अर्थात् न्यूनाधिक पांच अंगों में से अंग झुकाकर प्रणाम करना **अर्धावनत प्रणाम** कहलाता है। और दो हाथ,दो घुटने और मस्तक इन पांचो अंग द्वारा भूमिस्पर्श कर प्रणाम करना **पंचांग प्रणाम** कहलाता है। अथवा उपरोक्त तीन प्रकार के प्रणामों में से कोई भी एक प्रणाम करते समय प्रथम मस्तक को झुकाकर मस्तक पर स्थापित अंजलि को दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर से) मंडलाकारे घुमाना, और इसी तरह तीन बार, अंजलि भ्रमण करते हुए तीन बार मस्तक झुकाना, उसे भी दूसरी रीत से तीन प्रकार के प्रणाम कहे जाते है।

विशेष स्त्रीओं के अंजलिबद्ध प्रणाम करते समय हाथ ऊंचे कर मस्तक पर स्थापना नही करना, लेकिन यथास्थान पर ही रखकर के तीन बार अंजलि भ्रमण करते हुए मस्तक झुकाना। **शक्रस्तवादि** में भी प्रत्येक स्थान पर स्त्रीयों के लिए यही विधि है जिसका उन्हें पालन करना चाहिये।

(४) पूजात्रिक - तीन प्रकार की पूजा :-

अंगग्ग- भाव भेया पुफ्फाऽऽहार- त्थुईहिं पूय -तिगं
पंचुवयारा अट्ठो- वयार सव्वोवयारा वा ॥१०॥

शब्दार्थ:-अंगग्ग-भाव-भेया-अंग, अग्र और भाव के भेद से, पुफ्फाऽऽहार-त्थुइहिं =पुष्प नैवेथ, स्तुति के द्वारा, पूय-तिगं=तीन प्रकार की पूजा, पंचुवयारा=पंचोपचारी, अट्ठोवयार= अष्टोपचारी, सव्वोवयारा= सर्वोपचारी, वा= अथवा ॥१०॥

गाथार्थ :-अंग अग्र और भाव के भेद से पुष्प आहार और स्तुति द्वारा तीन प्रकार की पूजा, अथवा पंचोपचारी अष्टोपचारी सर्वोपचारी पूजा ये (तीन पूजा) है ॥१०॥

विशेषार्थ :-

(१)अंगपूजा :- पुष्प शब्द के उपलक्षण से निर्माल्य उतारना , मोरपिंछी से प्रमार्जना करना, पंचामृतसे अभिषेक करना, ३-५ या ७ बार कुसुमांजलि का प्रक्षेप करना, अंगलूछन, विलेपन, नौ अंगपूजा,पुष्पपूजा,अंगरचना करना आंगी चढाना, परमात्मा के हाथ में बीजोरा स्थापन करना, कस्तुरी आदि से परमात्मा के शरीर पर पत्र विगेरे की रचना करना, वस्त्रालंकार पहेनाना इत्यादि अनेक प्रकार अंगपूजा में समावेश होते है।

(२) अग्र पूजा :- आहार शब्द से अग्र पूजा कही गयी है।उपलक्षण से धूप, दीप, अक्षतादि से अष्टमंगल की रचना अशन, पान, खादिम और स्वादिम ये चार प्रकार का नैवेद्य चढाना,उत्तम फल चढाना,गीत- नृत्य सांज-आरती-मंगलदीपक उतारना अर्थात् जो पूजा प्रभु के सन्मुख होकर की जाती है,उसे अग्र पूजा कही जाती है।

(३) भावपूजा :- परमात्मा के सन्मुख बैठकर चैत्यवंदन करना वह भावपूजा कहलाती है। अथवा गंध (चंदनादि से) पुष्प ,वासक्षेप,धूप,और दीप ये पूजा करना कितनेक आचार्यो के मत से पुष्प,अक्षत,गंध धूप और दीप से पांच प्रकार की पूजा गिनी जाती है। पुष्प-अक्षत-गंध-दीप -धूप-नैवेद्य-फल और जल इस प्रकार से आठ प्रकार की पूजा कही है।

पूजा के योग्य सर्व प्रकार के उत्तमद्रव्यों से पूजा करना,पूजा १७ भेदी, २१ भेदी, ६४ प्रकार की,९९प्रकार की इत्यादि अनेक प्रकार की पूजा सर्वोपचारी पूजा कहलाती है।

अथवा अंग-अग्र और भाव तीनों प्रकार की पूजा करना उसे भी सर्वोपचारी पूजा कही गयी है। अंग पूजा का फल विघ्नोपशांति है वह विघ्नोपशमिका कही जाती है। अग्रपूजा का फल आत्म विकास के रूप है अतःअभ्युदयसाधिनी और तीसरी भावपूजा का फल मोक्ष है अतःउसे निवृति कारिणी भावपूजा कही गयी है। इत्यादि तीन प्रकार भी अंगपूजादि के फलरूप गिनी जाती है। यहाँ उपचार शब्द का अर्थ पूजा करने के साधन का प्रकार समझना, पांच द्रव्यों से की जानेवाली पूजा उसे पंचोपचारी पूजा कही है।

(५) अवस्थात्रिक-तीन अवस्थाएँ :

भाविज्ज अवत्थ-तियं पिंडत्थ-पयत्थ-रूव-रहिअत्तं।
छउमत्थ -केवलित्तं सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ।।११।।

शब्दार्थ :-भाविज्ज=चिन्तन करना, अवत्थ-तियं=तीन अवस्था, पिंडत्थ-पयत्य-रूव-रहियत्तं=पिंडस्थ पदस्थ-और रूपरहित अवस्था , छउमत्थ केवलित्तं=छद्मस्थ और केवलि अवस्था, सिध्दत्तं=सिध्द अवस्था , चेव = निश्चय, तस्स =उसका, अत्थो=अर्थ है।

गाथार्थ :-पिंडस्थ,पदस्थऔर रूपरहित अवस्था इन तीन अवस्थाओं का चिन्तन करना। और छद्मस्थ, केवलि और सिद्ध अवस्था उसका(अनुक्रमसे) अर्थ है।

विशेषार्थ :-(१)पिंडस्थावस्था=पिंड अर्थात् तीर्थंकर पदवी प्राप्त होने से पूर्व का छद्मस्थदेह, अर्थात् जहांतक समवसरण की रचना न हुई हो वहां तक की अवस्था पिंडस्थ अवस्था कहलाती हैं।(पिंड=छद्मस्थ भाव में, स्थ=रही हुई अवस्था)ये अवस्था तीन प्रकार की है। (१)जन्म अवस्था (२)राज्य अवस्था (३)श्रमण अवस्था,इन तीनो अवस्थाओं में तीर्थंकर का जीव द्रव्यतीर्थंकर कहलाता है। इन तीनो अवस्थाओं में भगवंत छद्मस्थ असर्वज्ञ-साक्षात् तीर्थंकर पदवी से रहित होते है।

अतः पिंडस्थभाव की अवस्था को छद्मस्थभाव की अवस्था कही गयी है।

(२) पदस्थावस्था :-पद= तीर्थंकर पदवी, परमात्मा को जब कैवल्य की प्राप्ति होती है तब उनको तीर्थंकर की पदवी मिलती है। पवित्र तीर्थंकर नामकर्म के उदय के प्रभाव से देव देवेन्द्र आते है,समवसरण की रचना करते है। परमात्मा उसमे विराजमान होकर देशना देते है। देशना समाप्त होने पर गणधर पदवी के योग्य मुनिओं को त्रिपदी सुनाकर गणधर पद पर स्थापन करते है। परमात्मा की देशना से बोध पाकर संयम ग्रहण करनेवाली साध्वीओं में से किसी एक को मुख्य साध्वी तथा देशविरति के धारक श्रावक, श्राविकाओं में से मुख्य श्रावक, मुख्य श्राविका, पद पर स्थापन करते है। विगेरे अनेक प्रकार से तीर्थ प्रवर्तने प्रभु

तीर्थंकर कहे जाते है। चतुर्विध संघ की स्थापना विगेरे केवल्य प्राप्ति के बाद प्रथम समसरण मे ही होती है इसलिए पदस्थ अवस्था का अर्थ केवलि अवस्था किया गया है। ये अवस्था निर्वाण समय तक रहती है।

(३) रूपातीत अवस्था=प्रभु जब निर्वाण को प्राप्त कर सिद्ध बनते है। तब शरीर रहित होते है। सिर्फ आत्मा ही रहती है। शुद्ध आत्मा के रहने से "रूपातीत अवस्था अर्थात् सिध्धअवस्था" कहलाती है॥११॥

(प्रतिमा में तीन अवस्थाएँ चिंतन करने की रीत)

न्हवणच्चगेहिं छउमत्थ -ऽवत्थ पडिहारगेहिं केवलियं।
पलियंकुस्सग्गेहि अ जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥१२॥

शब्दार्थ :- न्हवणच्चगेहिं=स्नान व पूजा करनेवालों द्वारा, छउमत्थवत्थ =छद्मस्थावस्था **पडिगारेहिं** = प्रातिहार्यो के द्वारा, केवलियं= कैवलिक अवस्था, पलियं कुस्सग्गेहिं= पर्यंकासन और काउस्सग्ग द्वारा, जिणस्स= जिनेश्वर भगवान की , भाविज्ज= चिन्तन करना सिद्धत्तं=सिध्धअवस्था ॥१२॥

गाथार्थ :-जिनेश्वर परमात्मा को स्नान करवाने वालों द्वारा और पूजा करनेवालों द्वारा छद्मस्थावस्था, प्रातिहार्यो द्वारा कैवलिकावस्था तथा पर्यंकासन और काउस्सग्ग द्वारा सिध्ध अवस्था का चिंतन करना ॥१२॥

विशेषार्थ :-परमात्मा के दांयी बांयी ओर, परिकर युक्त प्रतिमाजी पर दृष्टि स्थिर किजीये। दांयी बांयी ओर जो परिकर है उसे सामान्य मानव परिघर कहते है।उस परिकर में ऊपर देखिये गज के ऊपर देव हाथ में कलश लेकर बैठै है। वे स्नान करवाने वाले देव है।तथा हाथ में कितनेक देव पुष्पमाला लेकर आये है। वो अर्चक= पूजीा करनेवाले देव है। ऊपर की ओर कलशों के ऊपर पत्र दिखाई दे रहे है। वो अशोकवृक्ष के है। माला लेकर आनेवाले देवों से पुष्पवृष्टि का सूचन होता है, परमात्मा के दॉयी बॉयी ओर वीणा बांसूरी बजानेवाले देव है जो दिव्यध्वनि है। प्रभु के मस्तक के पीछे वृत्ताकार(गोल) भामंडल है उसमें प्रभुजी के मुख का तेज संहरण होता है जिससे प्रभुजी के मुख का दर्शन आराम से कर सकते है। ये भामंडल अंधेरी रात्रि मे भी प्रकाश करता है। इसी कारण देवताओं द्वारा इसे परमात्मा के पीछे रचा गया है। परमात्मा के मस्तक पर तीन छत्र स्पष्ट नजर आते है ऊपर देव दुंदुभी बजारहे है, दोनों तरफ चामरधारी देव खडे है। सिंहासन ऊपर परमात्मा विराजमान है।

प्रतिमाजी में तो किसी एक मुख्य अवस्था का ही विधान हो सकता है। प्रतिमा में मुख्यतया पर्यंकासन या कार्योत्सर्ग अवस्था का विधान होता है क्योंकि प्रभु की ये प्रधान और मुख्य पूज्यावस्था है।

उसी में ही सर्वावस्थाओं की स्थापन कर भिन्न भिन्न भक्त या एक ही भक्त एक साथ में या क्रमानुसार अलग अलग अवस्थाओं का विविध पूजोपचार से पूजा भक्ति कर सकते हैं। शास्त्रों में इसके स्पष्टीकरण के साथ के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। ग्रंथ विस्तारभय से यहाँ शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिया गया है। अलग अलग अवस्था की अपेक्षा से पूजा के प्रकार संपादन करने वालों का नय निक्षेपों का मानसशास्त्र तथा आध्यात्मिक साधनों की सूक्ष्म रचनाओं के संपादन का ज्ञान अद्‌भूत था ऐसा प्रमाण मिलता है।

प्रश्न : प्रभुजी की वो अवस्था ध्यान में स्थिर करने के बाद उस विषय में हम भावना किस प्रकार से भावें?

उत्तर : श्री प्रवचनसारोद्धार ग्रंथ की वृत्ति में कहा है कि : हस्ति, अश्व, स्त्री आदि महावैभव और सुखवाले साम्राज्य का त्याग कर प्रभु ने श्रमण जीवन (दीक्षा) अंगीकार किया था। ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त जगदीश्वर के दर्शन महापुण्यशाली व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है।

श्रमणवस्था में प्रभु शत्रु मित्र के प्रति समान भाववाले,चार ज्ञानवाले,तृण-मणि तथा सुवर्ण और पत्थर में समान दृष्टिवाले, ऐसे प्रभु निदान रहित विचित्र तपश्चर्याएँ करते हुए निःसंग विहार करते थे। इत्यादि भावार्थ से परमात्मा की छद्मस्थावस्था का चिन्तन करना। केवलि अवस्था के गुणों का विचार कर केवलि अवस्था का चिन्तन करना और सिध्धा परमात्मा के गुणों का विचार कर सिध्धात्व भाव का चिंतन करना।

तथा तीन भुवन में पूज्य परमात्मा के प्रति लोकोत्तर विनय दर्शाने के लिए देव देवेन्द्रों ने स्नात्र महोत्सव किया था। प्रभु ने धर्ममार्ग को निष्कंटक रखने के लिए न्याय प्रणाली वाली राज्यव्यवस्था की स्थापना की। इन सबको छोडकर श्रमण जीवन अंगीकार कर केवली बने। इस प्रकार छद्मस्थावस्था का चिन्तन करना। केवली बनने के बाद धर्मतीर्थ प्रवर्ताने के लिए और अनेक बाल जीवों को भी उसकी उपादेयता समझाकर उसके तरफ प्रेरित किया वैसे वो प्रातिहार्यादि महान विभूति से विभूषित थे। अंत में पद्मासन मुद्रा का

आश्रय लेकर मोक्ष में गये थे। परिकरादि में प्रातिहार्यो को प्रतिबिंबित करने में शास्त्रकारों की व्यवहार,-अध्यात्म-मानसशास्त्र,ज्ञान आदि की दृष्टि से परोपकारी मार्ग की कुशलता, असाधरण दिखाई देती है।

६ त्रिदिशि निरीक्षण त्याग त्रिक और ७ पदभूमि प्रमाजर्न त्रिक

उड्ढा ऽहो-तिरिआणं ति-दिसाण निरिक्खणं चइज्जुहवा।
पच्छिम-दाहिण वामाण जिण-मुह-न्नत्थ-दिट्ठि जुओ ।।१३।।

(**अन्वय:**- जिण मुहन्नत्थ-दिट्ठि-जुओ **उड्ढा**ऽहोऽतिरिआणं अहवा पच्छिम-दाहिण वामाणं ति-दिसाण निरिक्खणं चइज्ज) ।।१३।।

शब्दार्थ :- **उड्ढा**ऽहो तिरियाणं=ऊपर नीचे और आजु बाजु की, तिदिसाणं=तीन दिशाओं में, निरिक्खणं =देखने का, चइज्ज=त्याग करना, अहवा= या, पच्छिम दाहिण-वामाण =पीछे, दाँयी और बाँयी ओर, जिणमुहन्नत्थ दिट्ठि जुओ=जिनेश्वर प्रभु के मुख पर स्थापित दृष्टि वाला ।

गाथार्थ : जिनेश्वर परमात्मा के मुखपर दृष्टि स्थापित करके ऊपर नीचे और आजु बाजु अथवा पीछे, दाँयी और बाँयी इन तीन दिशाओं में देखने का त्याग करना ।

विशेषार्थ : जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा सन्मुख चैत्यवंदन करते समय अपनी दृष्टि सिर्फ प्रतिमाजी पर स्थिर करनी चाहियें। इसके अलावा अन्य दिशाओं में देखना नहीं चाहिये अर्थात् प्रतिमाजी के सन्मुख देखने के अलावा नीचे,ऊपर या आजु , बाजु अथवा पीछे या दाँयी बाँयी ओर नही देखना चाहिये । चक्षु भी स्वाभाविक तौर से मन की तरह चँचल है अतः स्थिर रख पाना संभव नहीं, फिर भी इधर उधर देखे बिना दृष्टि को प्रभु के सामने स्थिर रखने से चैत्यवंदन के समय मन की एकाग्रता स्थिर रहती है।

जिस स्थान पर चैत्यवंदन करना हो,उस स्थान पर त्रसादि जीवों की हिंसा न हो इसलिए सर्वप्रथम वस्त्र से तीन बार भूमि की प्रमार्जना कर भूमि को जीवजन्तु रहित कर फिर चैत्यवंदन करना चाहिये। पौषधव्रत रहित श्रावक को पूजा करते समय अपने उत्तरासंग के पल्ले से तीनबार भूमि प्रमार्जना करनी चाहिये। पौषधधारी श्रावक को चरवले से और मुनिभगवंतो

को ओघे से प्रमार्जना करनी चाहिये। श्री जिनेश्वर अनुयाईओ की मार्गानुसारी सभी धर्म क्रियाएँ जीवों की जयणा पूर्वक ही होती है। जिसमें जयणा नही वह धर्म क्रिया नही। प्रमार्जनात्रिक दशत्रिक में आ गया है अर्थात् क्रमानुसार उसे यहाँ समझ लेना चाहिये। कोई खास विशेषता न कहने के कारण, उसकी खास गाथा नही कही।

८. वर्णादिक आलंबनत्रिक ९. मुद्रात्रिक

वन्न -तियं वन्नऽत्था-लंबणमालंबणं तु पडिमाई
जोग -जिण-मुत्त-सुत्ती-मुद्दा-भेएण मुद्द- तियं ॥१४॥

अन्वय :- वन्नऽत्थाऽऽ लंबंण तु पडिमाइ आलंबणं वन्न - तियं । जोग -जिण-मुत्त-सुत्ती-मुद्दा-भेएण-मुद्द-तियं ॥१४॥

शब्दार्थ :- वन्नतियं = वर्णत्रिक, वन्नऽत्थाऽऽलंबणं=वर्णालंबन अर्थालंबन, पडिमाइ-आलंबणं = प्रतिमादि आलंबन, जोग -जिण-मुत्त-सुत्ती-मुद्दा-भेएणं =योग, जिन और मुक्ताशुक्ति इन मुद्राओं के भेद से, मुद्द-तियं = मुद्रात्रिक होता है ।

विशेषार्थ : चैत्यवंदन सूत्र के अक्षर अतिस्पष्ट, शुद्ध एवं स्वर और व्यंजन के भेद, पदच्छेद, शब्द व संपदाएँ स्पष्ट समझ में आवे इस प्रकार मधुर ध्वनि से बोलना । उसे वर्णालंबन अथवा सूत्रालंबन कहा जाता है।

चैत्यवंदन के सूत्रों के अर्थ भी सूत्र बोलते समय अपने ज्ञान के अनुसार अवश्य चिन्तन करना चाहिए । वह अर्थालंबन है ।

दंडक सूत्रों के अक्षरों में समाये हुए साक्षात् भाव अरिहन्त प्रभु का स्मरण करना तथा जिनकी सामने वंदन करने का प्रारम्भ किया है, वो प्रतिमा भी स्मृति से बाहर नहीं होनी चाहिये। इसलिए ध्यान रहे कि स्थापना प्रतिमादि का भी आलंबन अवश्य लिया जाता है ।

तीन मुद्राओं के स्वरूप का वर्णन अगली गाथा में विस्तारपूर्वक दिया गया है । उसके नाम मात्र यहाँ याद रखना है॥१४॥

१. योग मुद्रा

अन्नुन्नंतरि अंगुलि-कोसा-ऽऽगारेहिं दोहिं हत्थेहिं ।
पिट्टोवरि-कुप्पर-संठिएहिं तह जोग-मुद्दत्ति ॥१५॥

(**अन्वय** :- अन्नुन्नंत्तरि अंगुलि-कोसा ऽऽगारेहिं दोहिं हत्थेहिं पिट्टोवरि-कुप्पर - संठिएहिं तह जोग-मुद्दत्ति) ॥१५॥

शब्दार्थ :- अन्नुन्नंत्तरि अंगुलि-कोसा ऽऽगारेहिं =परस्पर एक दूसरी के आंतरे मे अंगुलिओं को स्थापनकर डोडे के आकार सम की हुई, दोहिं=दो , हत्थेहिं= हाथ द्धारा,पिट्टोवरि -कुप्पर -संठिएहिं =पेट के ऊपर,ढोनों कोणी स्थापनकरे, तह=वह, जोग=योगमुद्रा।

गाथार्थ :-परस्पर के आंतरो मे अंगुलियाँ भराकर कमल के डोडे का आकार बनाकर पेट ऊपर कोणी स्थापनकर दो हाथ द्धारा बनी हुई आकार वाली मुद्रा,वह योग मुद्रा है।

विशेषार्थ :-हथेलियों को कमल के डोडे के आकार के समान मिलाना । बांये हाथ की अंगुलियाँ, दांये हाथ की अंगुलिओं में आजाय, इस प्रकार परस्पर की अंगुलियाँ स्थापित करना । जिससे की बांया अंगुठा दांये अंगुठे के सामने जुडा हुआ रहे। तथा संयुक्त अथवा असंयुक्त दोनो कोणीयों को पेट या नाभी ऊपर स्थापित करना । और हाथों से रचा गया कोशाकार कुछ झुका हुआ मस्तक से कुछ दूर रखना। ये मुद्रा खडे' और बैठकर भी की जाती है। इस मुद्रा का उपयोग १८ वीं गाथा में दिया गया है । यहाँ योग अर्थात् दोनो हाथों का संयोग विशेष,अथवा योग=समाधि,उसके मुख्यतावाली मुद्रा वह योग मुद्रा, ये मुद्रा विघ्नोपशांति में भी समर्थ है ।

जिनमुद्रा

चत्तारि अंगुलाइं पुरओ ऊणाइं जत्थ पच्छिमओ ।
पायाणं उस्सग्गो एसा पुण होइ जिण- मुद्दा ॥१६॥

अन्वय:- जत्थ पायाणं उस्सग्गो पुरओ चत्तारि अंगुलाइं, पच्छिमओ ऊणाइं एसा पुण जिण मुद्दा होइ ॥१६॥

शब्दार्थ :-चत्तारि =चार, अंगुलाइं=अंगुल, पुरओ=आगे, ऊणाइं=न्युनकम, जत्थ=जिसमें, पच्छिमओ=पीछे, पायाणं=दो पैर का, उस्सग्गो= अंतर, एसा= यह, पुण=और,जिण-मुद्दा=जिनमुद्रा ॥१६॥

गाथार्थ :-और जिसमें दो पैर का अंतर आगे चार अंगुल और पीछे कुछ कम हो, वह जिनमुद्रा ॥१६॥

विशेषार्थ :- खडे खडे काउस्सग्ग करते समय भूमि पर दोनों पैर इस प्रकार स्थापन करना की आगे के भाग में चार अंगुल अंतर और पीछे के भाग में,उससे कुछ कम अंतर रहे। इस प्रकार पदविन्यास=दोनों पैर को रखना,उसे जिनमुद्रा कहते है। जिन=काउस्सग्ग मुद्रावाले जिनेश्वर देव की, मुद्राआकृति,उसे जिन मुद्रा कहते है। अर्थात् जिन= विध्नों को जीतनेवाली मुद्रा उसे जिनमुद्रा कहते है ।

७. मुक्ताशुक्ति मुद्रा

मुत्ता - सुत्ती मुद्दा जत्थ समा दोवि गब्भिया हत्था ।
ते पुण निलाड - देसे लग्गा अन्ने "अलग्ग" त्ति ॥१७॥

अन्वय:- जत्थ दोवि समा गब्भिया, पुण ते निलाड देसे लग्गा अन्ने "अलग्ग" त्ति मुत्ता-सुत्ति मुद्दा ॥१७॥

शब्दार्थ:-मुत्ता-सुत्ती = मुक्ताशुक्ति, मुद्दा=मुद्रा, जत्थ=जिसमें , समा= समान, दो वि=दोनो ही, गब्भिया=गर्भित, मध्यमें उन्नत, हत्था=हाथ, ते=वो दोनो, पुण=और निलाड=भाल, देसे=स्थान पर, लग्गा=लगाये हुए, अन्ने=अन्य आचार्य, अलग्ग=स्पर्श किये हुए न हो, त्ति=इस प्रकार,

विशेषार्थ:- मुक्ता=मोती, शुक्ति= उत्पत्ति स्थानरूप छीप, उसके आकारवाली मुद्रा-वह मुक्ताशुक्ति मुद्रा कहलाती है। इस मुद्रा में दोनों हाथ कि अंगुलियाँ परस्पर जोडकर,हथेलियों को गर्भित रखकर (अंदर से पोली बाहर से उपसी हुई) अर्थात् कछुए की पीठ की तरह ऊंची रखना चिपकी हुई न रखना इस तरह रखने से छीप के आकार सदृश्य बनती है,इस मुद्रा में हाथ को भाल पर स्पर्श करना, कितनेक आचार्य कहते है कि "**स्पर्श नही करना**" लेकिन भाल के सन्मुख रखना उसे **मुक्ताशुक्ति मुद्रा** कहते है।

तीन मुद्राओं के उपयोग :

पंचंगो पणिवाओ थयपादो होई जोग -मुद्दाए ।
वंदण जिण-मुद्दाए पणिहाणं मुत्त-सुत्तीए ॥१८॥

(**अन्वय:**-पंचगो पणिवाओ थय पाढो जोग -मुद्दाए वंदण जिण-मुद्दाए मुत्ता-सुत्तीए पणिहाणं होई ॥१८॥

शब्दार्थ :- पंचंगो= पांचो अंग झुकाकर, पणिवाओ = प्रणाम, थय-पाढो = स्तुति-स्तवन पाठ, जोग मुद्राए=योगमुद्रा से, वंदण=वंदन, जिणमुद्दाए =जिन मुद्रा से, पणिहाणं= प्रणिधान, मुत्त-सुत्तीए= मुक्ताशुक्ति मुद्रा से ॥१८॥

विशेषार्थ :- पंचांग प्रणिपात और स्तुति स्तवन पाठ योग मुद्रा से करना,चैत्यवंदन के समय चैत्यवंदन और नमुत्थुणं योगमुद्रा से किये जाते है। जावंति चेइआइं और जावंत केवि साहु तथा जयवीयराय (२ गाथा तक) यद्यपि योगमुद्रा चालु रहती है,फिरभी हाथ को ललाट पर स्थापनकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा द्वारा तीनों ही प्रणिधान किये जाते है। स्तवन के समय योग मुद्रा होती है। फिर खडे होकर अरिहंत चेइआणं कायोत्सर्ग स्तुति विगेरे जिनमुद्रा से करते है। चैत्यवंदन से पूर्व इरियावहिया प्रतिक्रमा जाता है, इसमें भी इरियावहिया से लोग्गस तक के सूत्र जिनमुद्रा में कहे जाते है।

इसके अलावा बैठै बैठै या खडे खडे, जो कोई क्रिया की जाती है, उसमे हर बार हाथ जोडे जाते है। इस प्रकार सामान्य वर्णन मुद्राओं का यहाँ किया गया है अन्य भी उपमुद्राएँ करने मे आती है ,उनका भी समावेश इन तीन मुद्राओं में ही समा जाता है।

तथा चैत्यवंदनादि करते समय और मुख्यत्व चैत्यवंदन में प्रधानसूत्र नमुत्थुणं बोलते समय,बायाँ ढींचण ऊंचा व दायाँ ढींचण जमीनपर स्थापन करने का रिवाज है। कितनेक, दोनों ढींचण से जमीन पर स्पर्श कर उभडक बैठकर सूत्र बोलते है। कितनेक दोनो पैर व ढींचण जमीन पर स्थापन करके सुत्र बोलते है। भिन्न भिन्न शास्त्रों के कथानुसार प्रत्येक रीत विनयरूप और उचित होने के कारण निषेध योग्य नही है।

इस विषय में अनेक प्रश्नोत्तर है। लेकिन विद्यार्थीओं को विचारों के सागर में डुबाने के संभववाले होने से यहाँ उसका विस्तार नही किया गया । मूल गाथा में स्तवपाठ शब्द का प्रयोग है।उसका अर्थ यहाँ पर नमुत्थुणं स्तवपाठ समझना,तथा पंचाग प्रणिपात शब्द का अर्थ भी यहाँपर,नमुत्थुणं सूत्र ही समझना। क्योकिं नमुत्थुणं सूत्र बोलते समय नमुत्थुणं इस प्रकार बोलते ही मस्तक झुकाकर पंचागं प्रणाम करने का विधान है। उसी प्रकार नमो जिणाणं अथवा सव्वे तिविहेण वंदामि,बोलते समय भी पंचागं प्रणिपात का विधान है। याने सूत्र मुख्यतासे तो योगमुद्रा में ही बोला जाता है। फिर भी बीच में जब जब पंचागं प्रणिपात करने में आता है जिससे बीच बीच में पंचांगी मुद्रा भी होती है। वह उपमुद्रा है। इस प्रकार की उपमुद्राएँ अलग अलग करने में आती है , जिससे मुख्यमुद्रा को कोइ नुकसान नही होता है। इसी प्रकार अरिहंत चेइआणं विगेरे भी कायोत्सर्ग का हेतु सूचक है,परन्तु यहाँ कायोत्सर्ग का

हेतु, वीतराग परमात्मा को वंदन करने के द्वारा फल प्राप्ति से है, अतः वो कायोत्सर्ग भी वंदन ही कहा जाता है। उस समय में पाँव से जिनमुद्रा और हाथों से योगमुद्रा की जाती है। मात्र कायोत्सर्ग में पाँव की जिनमुद्रा और हाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में होता है। और प्रणिधानत्रिक मुक्ताशुक्ति मुद्रा से किया जाता है।

मुख्यत्वे तीन मुद्राओं का उपयोग होने पर भी, उपमुद्राओं का उपयोग भी प्रसंगवत् अनेक स्थानो पर होता है । गीतार्थ पुरुषों की परंपरा एवं मर्यादा का पालन करते हुए तथा गुरूगम से विस्तृत ग्रंथो से स्पष्टता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर,विधिपूर्वक वंदन करने के लिए आत्मार्थीजीवों को प्रयत्न करते हुए आगे बढना चाहिये।

८ प्रणिधान त्रिक

पणिहाण-तियं चेइअ - मुणि-वंदण-पत्थणा-सरूवं वा.
मण-वय-काएगत्तं, सेस -तियत्थो य पयडुत्ति ॥११॥

अन्वय :- चेइअ -मुणि-वंदण-पत्थणा -सरुवं वा मण वय-काएगत्तं पणिहाण-तियं, सेस -तियत्थो पयडुत्ति ॥११॥

शब्दार्थ:-पणिहाण-तियं=प्रणिधान त्रिक,चेइअ=चैत्य, मुणि=मुणि, वंदन=वंदन, पत्थणा=प्रार्थना, सरुवं=स्वरुप, वा= अथवा, चेइअ-वंदण-मुणि-पत्थणा-सरुवं=चैत्य और मुनि को वंदन तथा प्रार्थना स्वरूप, सेस तियत्थो=शेष त्रिक का अर्थ, पयडु= सुगम, त्ति=इस प्रकार,

गाथार्थ :-चैत्यवंदन मुनिवंदन और प्रार्थना का स्वरूप अथवा,मन, वचन, काया.की एकाग्रता=ये प्रणिधान त्रिक है। शेष त्रिकों का अर्थ सुगम है। इस प्रकार दसत्रिक पूर्ण हुए ॥११॥

विशेषार्थ :- "जावंति चेइयाइं" सूत्र में तीन लोक के चैत्यों को नमस्कार किया गया है, अतः यह सूत्र चैत्यवंदन सूत्र कहलाता है। "जावंत के वि साहु" सूत्र में ढाई द्वीप में रहे हुए मुनि महात्माओं को नमस्कार करने में आया है अतःमुनिवंदन सूत्र कहलाता है। और जयवीयराय सूत्र में भवसे वैराग्य, मार्गानुसारिता, इष्ट फल की सिद्धि, लोक विरूद्ध का त्याग , गुरूजनों की पूजा, परोपकार भाव, सदगुरू का योग,और भवपर्यन्त सदगुरू के वचन की सेवा, इन नौ वस्तुओं की याचना वीतराग परमात्मा के पास की है.

अतः इसे प्रार्थनासूत्र कहा गया है । और ये तीसरा प्रणिधान,चैत्यवंदन के अंत में अवश्य करना चाहिये। प्रदक्षिणात्रिक और प्रमार्जनात्रिक इन दोनो के अर्थ सुगम है समज में आवे वैसे है। तीन रत्न (दर्शन.ज्ञान चारित्र) की प्राप्ति के लिए परमात्मा के दाहिने हाथ की ओरसे तीन प्रदक्षिणा देना। तथा सतरह संडासे की प्रमार्जना रूप जीवदया के लिए चैत्यवंदन के स्थान पर खेस,चरवले से या मुनिओं को रजोहरण से तीन बार भूमि प्रमार्जना करनी चाहिये.। मूल गाथा मे त्ति याने इति शब्द है, दसत्रिक का विवेचन पूर्ण हो गया है ,इस प्रकार सूचन के लिए त्ति का प्रयोग किया गया है।

२ पांच अभिगम :

सच्चित्त- दव्व मुज्झण -मच्चित्तमणुज्झणं मणेगत्तं।
इग-साडि-उत्तरासंगु अंञ्जली सिरसि जिण दिट्ठे ॥२०॥

(**अन्वय** :-सचित दव्व मुज्झण-मच्चित्तमणुज्झणं मणेगत्तं ,इग-साडी उत्तरासंगु,जिण-दिट्ठे सिरसि अंजली ॥२०॥

शब्दार्थ :-सच्चित्त -दव्वं=सचित्त द्रव्यों का, उज्झणं=त्याग, अच्चित्तं=अचित्त द्रव्य का, अणुज्झणं=त्याग नही, मणेगत्तं=मन की एकाग्रता, इग साडि =एक शाटक, अखंड वस्त्र उत्तरासंगु=उत्तरासंग (खेस), अंजली =हाथ जोडना, सिरसि=मस्तक पर, जिण-दिट्ठे=जिनेश्वर प्रभु को देखते ही ॥२०॥

गाथार्थ :-सचित वस्तुओं का त्याग करना,अचित वस्तु रखना, मन की एकाग्रता,एकशाटक उत्तरासंग, और जिनेश्वर प्रभु के दर्शन होते ही ललाट पर हाथ जोडना ॥२०॥

विशेषार्थ :- पास मे रहे हुए खाद्य पदार्थ,सूंघने के फूल,अथवा पहेनी हुई फूल माला विगेरे सचित द्रव्य का त्याग करके चैत्य में (मंदिर मे) प्रवेश करना। यदि ये वस्तुएँ प्रभु की दुष्टि मे आगयी हो तो उसका उपयोग नही करना चाहिये। ये भी एक प्रकार का परमात्मा का विनय है। ये प्रथम अभिगम है। पहने हुए आभूषण,वस्त्र,रूपये,आदि का त्याग नही करना , दूसरा अभिगम है। मन की एकाग्रता रखना, तीसरा अभिगम है। दोनों किनारों पर लच्छियों वाला अखंड(सलंग)उत्तरासंग (खे स) पहने रहना चौथा अभिगम और परमात्मा के दर्शन होते ही नमो जिणाणं कहकर अंजलिपूर्वक,मस्तक झुकाकर प्रणाम करना पांचवाँ अभिगम है। इन पांचो अभिगमों को परमात्मा के पास जाते समय अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। ये पांच अभिगम अल्प ऋद्दि वाले श्रावक को ध्यान मे रखकर कहे गये है।

स्वयं के उपयोग के लिए खाने पीने या सुंघने की अचित्त वस्तु हो तो उस पे भी परमात्मा की दुष्टि न पडे,वैसे चैत्य के बाहर छोडकर प्रवेश करना चाहिये। यदि परमात्मा की दुष्टि में ये वस्तुएँ आ गयी हो तो उसका उपयोग नही करना चाहिये। इस प्रकार मर्यादा पालन से परमात्मा का लोकोत्तर विनय सचवाता है।

खेस रखने का विधि अंग पूजा तथा उत्कुष्ट चैत्यवंदन करनेवालों के लिए है। फिर भी अन्य पुरूषों को पघडी और खेस सहित प्रभु के जिनालय में प्रवेश करना चाहिये। वर्ना प्रभु का अविनय गिना जाता है। तथा पूजा के समय पुरुषों के दो वस्त्र, और स्त्रियों को जधन्य से तीन वस्त्र का प्रयोग करना चाहिये। स्त्रियों को हाथ जोडकर मस्तक झुकाना चाहिये लेकिन हाथ ऊंचे कर अंजलि को मस्तक पर लगाने की आवश्यकता नही,पूर्व में गाथा नं-९ के अर्थ के प्रसंग मे ये बात कह दी गयी है। स्त्रियाँ वस्त्रावृत अंगवाली ही होनी चाहिये इसलिए स्त्रियों के लिए ४-व ५-वा अभिगम का यथायोग निषेध कहा है।

दूसरी रीत से पाँच अभिगम

इय पंच-विहा-ऽ भिगमो, अहवा मुच्चंति राय-चिण्हाइं।
खग्गं छत्तोवाणह मउडं चमरे अ पंचमए ॥२१॥

अन्वय:- इय पंचविहा-ऽभिगमो, अहवा राय-चिण्हाइं-खग्गं छत्तोवाणह मउडं अ पंचमए चमरे मुच्चंति ॥२१॥

शब्दार्थ :- इय=ये(पूर्व में कहे गये), पंच विहा भिगमो=पाँच प्रकार का अभिगम, अहवा = अथवा, मुच्चंति = रखता है, राय-चिण्हाइं=राजचिण्ह, खग्गं=तलवार, छत्त=छत्र, उवाहण=मोजडी, मउडं=मुगुट, चमरे=चँवर, पंचमए=पांचवा ॥२१॥

गाथार्थ :- ये पांच प्रकार का अभिगम है,अथवा तलवार, छत्र, मोजडी,(जुते) मुगुट और पांचवा चँवर ये राजचिन्ह बाहर रखना है।

विशेषार्थ :- दर्शन करने के लिए आनेवाले महर्द्धिक राजा आदि को पांच प्रकार के राजचिन्हो को बाहर रखकर ही जिनालय में प्रवेश करना चाहिये। कारण की तीर्थंकर परमात्मा तीन लोक के राजा है,उनके सामने "राजा हूं" ऐसा दर्शाना परमात्मा का अविनय है। प्रभु के पास तो सेवकभाव दर्शाना चाहिये।परमात्मा का सेवक भी परम पुण्योदय तो ही बन सकता है।

मुगुट अर्थात् कलंगीवाला ताज राजाओं को उसका भी त्यागकर मंदिर मे प्रवेश करना चाहिये। ऋद्धिवान श्रावकों को शिरोवेष्टन कर (पघडी पहनकर) ही आडंबर पूर्वक परिवार सहित प्रभु को वंदन करने जाना चाहिये। जिससे अनेक जीवों को प्रभु प्रत्ये अहोभाव जागृत हो, और सम्यक्त्वादि प्राप्ति का लाभ उन्हे मिले। ऐसा आडंबर भी धर्म प्राप्ति में निमित्त बनता है। ये बात अनुभव सिद्ध है।

३ पुरूष स्त्री के लिए वंदन मर्यादा (४)तीन प्रकार का अवग्रह

वंदंति जिणे दाहिण-दिसि ट्ठिया पुरूष वाम - दिसि नारी ।
नव-कर जहन्न-सट्ठि-कर जिट्ठ मज्झुग्गहो सेसो ॥२२॥

अन्वय :- दाहिण-दिसि ट्ठिआ पुरूष वाम दिसि नारी जिणे वंदंति। जहन्न नव कर जिट्ठ सट्ठि-कर सेसो मज्झुग्गहो ॥२२॥

शब्दार्थ :- वंदन्ति = वंदन करते है, जिणे = जिनेश्वर भगवंत को, दाहिणि-दिसि=दाहिनी तरफ, ट्ठिआ=खडे हुए, वाम दिसि=बांयी ओर, नव कर = नौ हाथ, सट्ठिकर=साठ हाथ, जिट्ठ=उत्कृष्ट, मज्झ= मध्यम, उग्गहो =अवग्रह ,सेसो= शेष,

गाथार्थ :-दाहिनी ओर खडे हुए पुरूष और बाँयी ओर खडी हुई स्त्रियाँ जिनेश्वर परमात्मा को वंदन करे।

जघन्य-नौ हाथ, उत्कृष्ट ६० हाथ, शेष-मध्यम अवग्रह होता है।

विशेषार्थ :- पुरूष वर्ग को परमात्मा के दाहिनी और तथा स्त्री वर्ग को परमात्मा के बांयी ओर खडे होकर दर्शन,वंदन, पूजनादि कार्य करना चाहिये। (देवगृहेश्वर) जिनालय छोटा है तो अवग्रह नौ हाथ से भी कम रख सकते है। अन्य आचार्यो के मत से अवग्रह(१/२ -१-२-३-६-१०-१५-१७-३०-४०-५०-६०हाथ)१२ प्रकार का कहा गया है।

अर्थात् अपने श्वासोश्वास प्रभु को स्पर्श न हो,और किसी प्रकार की आशातना न हो, वैसा आचरण करें।

५ तीन प्रकार का चैत्यवंदन

नमुक्कारेण जहन्ना, चिइ-वंदण मज्झ दंड-थुइ-जुअला
पण-दंड-थुइ -चउक्कग-थय पणिहाणेहिं उक्कोसा। ।२३॥

अन्वय:- नमुक्कारेण जहन्ना, दंड-थुइ-जुअला मज्झ, पण-दंड-थुइ -चउक्कग-थय पणिहाणेहिं उक्कीसा चिइ -वंदण ॥२३॥

शब्दार्थ :- नमुक्कारेण=नमस्कार द्वारा, जहन्ना=जघन्य, चिइ-वंदण =चैत्यवंदन, मज्झ=मध्य, दंड=दंडक, थुइ=स्तुति के, जुअला =युगल द्वारा, पणदंडा=पांचदंडक, थुइचउक्कग=चार स्तुति, थय=स्तवन, पणिहाणेहिं=प्रणिधान सूत्र द्वारा, उक्कोसा = उत्कृष्ट,॥२३॥

गाथार्थ :-नमस्कार द्वारा जघन्य, दंडक और स्तुति युगल द्वारा मध्यम, पांच दंडक, चारस्तुति, स्तवन और प्रणिधान द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है।

विशेषार्थ :-यहाँ "नमस्कार द्वारा"अर्थात् १-अंजलिबद्ध प्रणाम द्वारा, २-नमो जिणाणं इत्यादि एक पदरूप रूप नमस्कार - द्वारा, ३ एक श्लोक द्वारा १०८ तक, ४-अधिक श्लोंको द्वारा, और ५-एक नमुत्थुणं रूप नमस्कार द्वारा,इस प्रकार पांचो ही तरीके से जघन्य चैत्यवंदना होती है ।

२-मध्यम चैत्यवंदन

दंडक अर्थात् **नमुत्थुणं दंडक** के साथ मुख्यता से **अरिहंत चेइआणं** कि जो पांच दंडक में से एक चैत्यस्तव दंडक है ,उसे और **अन्नत्थ** बोलकर एक नवकार का काउसग्ग पारकर बोली जानेवाली एक स्तुति ,इन दोनो के युगल से मध्यम **चैत्यवंदना** होती है।

अथवा "जुअला " **पद से दंड और स्तुति** , इन दोनो को साथ में जोडने का अर्थ होता है कि "**दो दंडक** और दो स्तुति द्वारा मध्यम चैत्यवंदना होती है" इसमें शक्रस्तव और चैत्यस्तव ये दो दंडक मुख्यता से बोलना और अध्रुव और ध्रुव ये दो प्रकार की स्तुतियाँ जानना। उसमें प्रथम भिन्न भिन्न तीर्थंकरों की या चैत्य विषय की स्तुति अध्रुव स्तुति, और बाद में "लोगस्स उज्जोयगरे" इत्यादि २४ तीर्थंकरों के नाम की स्तवना वाली ध्रुव स्तुति कहलाती है । इस प्रकार दो दण्डक और दो स्तुति द्वारा मध्यम चैत्यवंदना समझना । लेकिन प्रथम स्तुति के बाद मात्र लोगस्स बोलने की प्रथा वर्तमान में प्रचलित नहीं है ।

अथवा **दंड** अर्थात् **नमुत्थुणं अरिहंतचेइआणं, लोगस्स** पुक्खरवरदीवड्ढे और **सिद्धाणं** इन पांचो को एक दंडक तथा सिद्धांत की संज्ञा के आधार से चार स्तुति वाले युगल में दो विभाग होते है। प्रथम तीन स्तुतिओं के समूह की एक वंदना स्तुति कही जाती है। और देवताओं के स्मरण के रूप में चतुर्थ स्तुति अनुशास्ति स्तुति कही जाती है । इस प्रकार

वंदना और अनुशास्ति स्तुति इन दोनों का युगल '**स्तुति युगल**' कहलाता है । इस प्रकार चार स्तुति के एक युगल वाला चैत्यवंदन उसे मध्यम चैत्यवंदन कहा गया है । इस प्रकार मध्यम चैत्यवंदना समझना ।

(३) उत्कृष्ट चैत्यवंदना : जिसमें मुख्यतासे **नमुत्थुणं** आदि पांच दंडक अथवा पांच नमुत्थुणं और स्तुति के चतुष्क द्वारा अर्थात् दो स्तुति युगल =८ स्तुतियों द्वारा स्तवन **जावंति चे. जावंतकेवि.** और **जयवीयराय** इन तीन प्रणिधान सूत्रों द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है । पौषध विगेरे में देववंदन करते समय ये **चैत्यवंदना** होती है ।

इस प्रकार जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट चैत्यवंदना (प्रति चैत्यवंदना) जघन्यादि तीन प्रकार कुल ३X३=९प्रकार की होती है । इसके अलावा भी अन्य बहुत से प्रकार है, उन्हें अन्य ग्रंथों से समझना । वर्तमान काल में तो पूर्वाचार्यों की परंपरा से जहाँ जैसी आचरणा हो वहाँ वैसी चैत्यवंदन विधि आदरने योग्य है ।

अन्य आचार्यों के मत से तीन चैत्यवंदन

अन्ने बिंति 'इगेणं सक्कथएणं जहन्न वंदणया ।

तदुग- तिगेणं मज्झा उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ॥२४॥

(**अन्वय:**- अन्ने बिंति -'इगेणं सक्कथएणं जहन्न, तदुग- तिगेण मज्झा, चउहिं पंचहिं वा उक्कोसा वंदणया) ॥२४॥

शब्दार्थ :-अन्ने =अन्य आचार्य, बिंति=कहते है कि, सक्कत्थएणं = शक्रस्तव द्वारा, इगेणं =एक, जहन्ना=जघन्य, वंदणया=वंदन, तदुगतिगेणं =दो या तीन शक्रस्तव द्वारा, मज्झा=मध्यम, उक्कोसा =उत्कृष्ट, चउहिं =चार, पंचहिं =पाँच, वा=अथवा ॥२४॥

गाथार्थ :-अन्य आचार्य भगवंत कहते है कि एक नमुत्थुणं द्वारा जघन्य, दो या तीन द्वारा मध्यम और चार या पाँच द्वारा उत्कृष्ट (चैत्य) वंदना होती है ।

विशेषार्थ :- अन्य आचार्य भगवंतो का अभिप्राय है कि देव वंदन की जिस विधि में नमुत्थुणं एक बार आता है वह जघन्य, और दो या तीन बार आता है वो मध्यम तथा चार या पाँच बार न्मुत्थुणं आता हो उसे उत्कृष्ट चैत्यवंदन समझना ।

६ प्रणिपात और ७ नमस्कार द्वार

पणिवाओ पंचंगो दो -जाणू कर-दुगुत्तमंगं च ।
सु-महत्थ- नमुक्कारा इग-दुग- तिग जाव अट्ठ-सयं ॥२५॥

अन्वय :- पणिवाओ पंचंगो दो -जाणू कर दुगुत्तमंगं च । इग-दुग-तिगजाव अट्ठ -सयं सु-महत्थ- नमुक्कारा ॥२५॥

शब्दार्थ :- पणिवाओ = प्रणिपात, पंचंगो =पांच अंगवाला, दो जाणू =दो ढींचण, कर -दुग = दो हाथ, उत्तमंगं =उत्तमांग मस्तक, सुमहत्थ= विस्तृत अर्थ वाला, इग दुग- तिग = एक, दो, तीन, जाव= जहाँतक, अट्ठसयं=एक सो आठ ॥२५॥

गाथार्थ :- प्रणिपात पांच अंगवाला है। दो ढीचंण , दो हाथ , और मस्तक, एक, दो, तीन लेकर एक सौ आठ तक विस्तृत अर्थवाला नमस्कार कहना।

विशेषार्थ :- उपरोक्त पांच अंगोद्धारा किये हुए प्रणिपात में,पांचो ही अंग भूमिको स्पर्श करना चाहिये । ये इच्छामिखमासमणो सूत्र बोलते समय किया जाता है।

१ से १०८ तक के नमस्कार रूप श्लोक जिसमें वीतराग प्रभु के गुणों की प्रशंसा हो वैसे गंभीर और प्रशस्त अर्थवाले पूर्वके श्री सिद्धसेन दिवाकर विगेरे महाकविओं द्धारा रचित हो, वैसे बोलना चाहिये । लेकिन श्रृंगार रस विगेरे से गर्भित और अनुचित अर्थवाले नही बोलना चाहिये ।

८ :- १६४७ अक्षर

अड-सट्ठि अट्ठवीसा नव -नउय-सयं च दु-सय सग नऊआ ।
दो-गुण-तीस दु-सट्ठा-दुसोल-अड-नउअ-सय दुवन्न-सयं ॥२६॥

इय नवकार-खमासमण-इरिय-सक्कत्थयाइ-दण्डेसु ।
पणिहाणेसु अ अदुरुत्त-वन्न सोल-सय सीयाला ॥२७॥

शब्दार्थ :-अडसट्ठि =अडसठ, अट्ठवीसा=अट्ठावीस, नव नउय सयं= एकसो निन्यानवे, दु-सय -सग-नउआ=दोसो सित्तानवे, दो-गुण-तीस=दोसो उगणतीस, दु- सट्ठा= दोसो साठ, दु सोल=दोसो सोलह, अडनउअ सयं =एक सौ इकराणु, दुवन्न- सयं=एकसो बावन, इय=इस प्रकार,नवकार खमासमण, और इरियावहिया सूत्र,

सक्कत्थयाऽऽइ दंडे=शक्रस्तवादि पाँच दंडक सूत्र में, पणिहाणेसु=प्रणिधान सूत्रो में, अदुरुत्तवन्न=दूसरी बार उच्चारण नही किये गये अक्षर, सोल-सय-सीयाला= सोलह सौ सेंतालीस, ॥२६॥२७॥

गाथार्थ :-अडसट्ठ, अट्ठावीस एक सौ निन्याणुं, दो सौ सत्ताणुं, दो सौ उगणतीस, दोसो साठ,दोसो सोलह,एक सौ अट्ठाणुं, एक सो बावन,॥२६॥ इस प्रकार, नवकार,खमासमण इरियावहिया,शक्रस्तवादि दंडकों में और प्रणिधान सूत्रों में दूसरी बार उच्चारण नही किये गये सोलह सौ सेंतालीस अक्षर (वर्ण) होते है।

विशेषार्थ :- यहाँ नवकार अर्थात् पंच मंगल महाश्रुतस्कंध सूत्र हवइ मंगलं तक कितनेक गच्छ के आचार्य अनुष्टुप छंद के प्रत्येक पाठ में आठ अक्षर होने चाहिये इस प्रकार मानते है। यहाँ चोथे पाद में नव अक्षर होने से छंद दोष मानकर हवइ के स्थान पर होइ पद स्वीकार करते हुए नवकार के ६७ अक्षर मानते है ।

लेकिन महानिशीीथ सूत्र में नवकार के ६८ अक्षर गिनाये है। तथा मंत्राक्षर तरीके अलग अलग रचनाओं के ध्यान में ६७ अक्षर ले तो एक अक्षर न्युन हो जाता है । तथा अनुष्टुप छंद में ९ अक्षर के पद अनेक बार महाकविओं की रचनाओं में भी देखने में आते है। तो फिर आर्य ऋषि महात्माओं की रचना में हो तो इसमें आश्चर्य क्या ?

खमासमण छोभवंदन सूत्र,इरियावहिया प्रतिक्रमण श्रुत स्कंध-इच्छामिपडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं तक (अन्नत्थ बिना) नमुत्थुणं को शक्रस्तव अथवा प्रणिपात दंडक कहा जाता है। और वो सव्वे तिविहेण वंदामि तक समझना ।

चैत्यस्तव दंडक अरिहंत चेइआणं से अन्नत्थ ऊससिएणं संपूर्ण जानना ।

लोगस्स को नामस्तव और सव्वलोए इन चार अक्षर सहित जानना ।

पुक्खरवर, को श्रुतस्तव और उसे सुअस्स भगवओ इन ७ अक्षर सहित जानना।

सिद्धाणं बुद्धाणं उसे सिद्धस्तव कहा जाता है। और उसके १९८ अक्षर सम्मं दिट्ठी - समाहिगराणं तक गिनना । पाँच दंडक के अद्विरुक्त अक्षर १२०० होते है। तीन प्रणिधान सूत्रों में जावंति चे.- जावंतकेवि और जयवीयराय की आभवमखंडा तक की दो गाथा ही समझना ।

इस प्रकार ९ सूत्रों के वर्ण १६४७ होते है ।

भाष्य की अवचूरि में कहा है कि वारंवार उपयोग में आनेवाले अन्नत्थ० सूत्र के वर्ण सहित २३८४ अथवा "उड्डुएणं" पाठ से २३८९ अक्षर होते है। और इस प्रकार दूसरी बार बोलने पर नमुत्थुणं के २९७ अक्षर जोडने पर २६८१,उड्डुएणं पाठ के आधार से २६८६ अक्षर होते है । शेष स्तुति और स्तोत्रादिक के अक्षरों की नियत संख्या नही होने से उनके वर्ण की गणना नही की ।

१ १८१ पद

नव -बतीस-तित्तीसा ति-चत्त-अडवीस -सोल-वीस पया ।
मंगल- इरिया-सक्क-त्थया ऽऽइसुं एगसीइ-सयं ।।२८।।

अन्वय:- मंगल -इरिया -सक्कत्थयाइसु नव -बत्तीस तित्तीसा -तिचत्त-अडवीस -सोल -वीस पया एगसीइ -सयं ॥२८॥.

शब्दार्थ :- नव -बतीस-तित्तीसा= नौ,बत्तीस और तेंतीस, ति -चत्त-अडवीस-सोल-वीस=तियालीस, अट्ठावीस, सोलह, और बीस, पया= पद, मंगल-इरिया-सक्कत्थया ऽऽइसुं= मंगल नवकार, इरियावहिया और शक्रस्तव आदि में , एग-सीइ-सयं=एक सौ इक्यासी ॥२८॥

गाथार्थ:-मंगल,इरियावहिया,शक्रस्तव आदि में नौ,बत्तीस,तेंतीस तियालीस अट्ठावीस,सोलह, बीस. एक सौ इक्यासी पद है ।

विशेषार्थ :- अक्षरों की गिनती में प्रथम कहे अनुसार ही पदों की गिनती उन उन अक्षरों तक की है इस प्रकार न समजे । लेकिन कितनेक सूत्रो में तो भिन्न तरीके से पदों की गिनती की है । वो इस प्रकार नवकार संपूर्ण,इरियावहिया में "ठामिकाउस्सग्गं" तक नमुत्थुणं में "जीअभयाणं " तक चैत्यस्तव में संपूर्ण अन्नत्थ तक लोगस्स में "दिसन्तु" तक पुक्खरवरदी में संपूर्ण ४ गाथा तक, सिद्धाणं में संपूर्ण ५ गाथा तक, वैयावच्च० आदि विगेरे। इस प्रकार वर्णो की गिनती अलग तरीके से १८१ पदों की गिनती की है । ये भिन्न गिनती संपदाओं को लेकर की है। जिससे संपदाओं और पदों की गिनती एक समान है। और वर्ण की गिनती अलग तरीके से है ।

इस जगह पद एक शब्द का या अधिक शब्दों का भी होता है । कारण कि-विवक्षित अर्थ जहाँ पूर्ण होता है वहाँ एक पद अथवा अनेक शब्दों का वाक्य भी पद गिना जाता है । अथवा गाथाओं के पद को भी पद कहा जाता है ।

तथा सव्वलोए-सुअस्स भगवओ-वेयावच्चगराणं-संतिगराणं सम्मदिट्ठि समाहिगराणं - इन पाँच पदों के वर्ण की गिनती की है लेकिन संपदाएँ नही गिनी। इसलिए पद भी नही गिने। यदि गिनती करें तो १८६ पद होते है । तथा इच्छामि खमा०-तीन प्रणिधान सूत्र और जे अ अइया सिद्धा " के चार पद, इन सारे पदों और संपदाओं मे किसी भी कारण का विचार करके श्री पूर्वाचार्योने नही गिने । इस प्रकार भाष्य की अवचूरि में कहा है॥२८॥

१० १७ संपदाएँ

अट्ठ- ऽट्ठ-नव-ऽट्ठ य अट्ठ-वीस सोलस य वीस वीसामा ।
कमसो मंगल -इरिया-सक्क-त्थया ऽइसु सग नउई ॥२९॥

अन्वय :-कमसो मंगल -इरिया-सक्क-त्थया ऽइसु अट्ठऽट्ठ नवऽट्ठ अट्ठवीस सोलस य वीस वीसामा सग नउइ ॥२९॥

शब्दार्थ :-अट्ठऽट्ठ नवट्ठ =आठ, आठ, नौ, आठ, अट्ठवीस=अट्ठावीस, सोलस=सोलह, वीस=बीस, वीसामा=विश्रामस्थान संपदाएँ, कमसो=क्रमानुसार, मंगल=नवकार मंत्र, इरिया=इरियावहिया, सक्कत्थया-ऽऽइसु=शक्रस्तव विगेरे में, सग-नउई =सित्यानवे,सत्ताणुं, ॥२९॥

गाथार्थ :- क्रमानुसार नवकार, इरियावहिया, शक्रस्तव आदि में आठ, आठ नव, आठ,अट्ठावीस,सोलह और बीस इसप्रकार कुल सत्ताणुं संपदाएँ है ॥२९॥

विशेषार्थ :- इन संपदाओंकी आने महापदोंकी अथवा विश्रामस्थलकी गिनती भी पदों को लेकर की है। जिस जिस के पदों की गिनती नही की, उनकी संपदा भी उसी प्रकार अनुकरण करना । जिससे इच्छामि खमा.सूत्र की "जे अ अइया" की एक गाथा की,और सव्वलोए इत्यादि संपदाएँ भी गिनती नही की।लेकिन यहाँ पर संपदाओं का प्रयोजन उस उस स्थान पर विश्राम करने के लिये है। तथा जहाँ जहाँ ४ पादवली एक गाथा होती है वहाँ (नवकार का चूलिका श्लोक छोडकर) सर्व स्थानपर एक चरण का एक पद और एक संपदा गिनी जाती है । ॥२९॥

प्रत्येक सूत्र के वर्ण, पद और संपदाएँ, नवकारमें

वन्न-ऽट्ठ-सट्ठि नव-पय नवकारे अट्ठ संपया तत्थ ।
सग-संपय पय-तुल्ला, सतरक्खर अट्ठमी दु-पया ॥३०॥
"नवक्खरट्ठमी दुपय छट्ठी" इत्यन्ये

अन्वय :- नवकारे अट्ठ-सट्ठि वन्न,नव पय,अट्ठसंपया, तत्थ-सग-संपय पय-तुल्ला अट्ठमी 'सतरक्खर दु-पया ॥३०॥ अट्ठमी नव-अक्खर छट्ठी दु-पय" इत्यन्ये)

शब्दार्थ :-वन्न=वर्ण, अक्षर,अट्ठ सट्ठी=अडसठ, नव-पय=नौ पद, तत्थ=उसमें, सग संपय=सातसंपदा, पय तुल्ला=पद की तरह, सत्तर ऽक्खर=सतरह अक्षरों की, अट्ठमी=आठवी, दु-पया=दो पदोंकी, ॥३०॥ नवऽक्खर=नौ अक्षर की, अट्ठमी=आठवी, दु-पय=दो पदों की, छट्ठी=छट्ठी, इत्यन्ये= इस प्रकार अन्य आचार्य कहते है ।

गाथार्थ :-नवकार में अडसठ अक्षर नौ पद,और आठ संपदाएँ है। उसमें सात संपदाएँ पद की तरह की है। और आठवीं सतरह अक्षरों की और दो पदों की है। ''नौ अक्षर की आठवी और दो पदवाली छट्ठी (संपदा) इस प्रकार अन्य आचार्य कहते है।

विशेषार्थ :-नवकार में पाँच पदों के ७-५-७-७-९ मिलके ३५ अक्षर है। प्रत्येक पद की एक एक संपदा गिनते पाँच संपदा और चूलिका श्लोक के चार पद तथा ३३ अक्षर है। उसमें अंतिम दो पदों की एक संपदा गिनना। इस प्रकार ९पद और संपदाएँ आठ। नवकार सूत्र की उपधान क्रिया में ८ संपदाओं को पढने के लिए प्रत्येक संपदा का एक एक आयंबिल करके पढ सकते है। ये उत्सर्ग विधि है ॥३०॥

कितनेक आचार्य ''नवक्खरट्ठमी दुपय छट्ठी'' अर्थात् ८ वी संपदा "पढमं हवइ मंगलं" इन ९ अक्षरों की और छट्ठी "एसो पंच० से पावप्पणासणो'' तक की १६ अक्षर की है, इस प्रकार कहते है।

इच्छामि खमासमण और इरियावहिया में

पणिवाय अक्खराइं अट्ठावीसं तहा य इरियाए ।
नव-नउयमक्खरसयं दु-तीस -पय संपया अट्ठ ॥३१॥

(**अन्वय** :- पणिवाय अक्खराइं अट्ठावीसं तहा य इरियाए नव -नउयमक्खरसयं दु-तीस-पय अट्ठ संपया) ॥३१॥

शब्दार्थ :-पणिवाय=प्रणिपात,इच्छामिखमासमण=वंदना सूत्र, अक्खराइं=अक्षर, अट्ठावीसं=अट्ठावीस, इरियाए=इरियावहिया सूत्र में, नव-नउयम्=निन्याणुं, अक्खर सयं=एक सौ अक्षर, दु-तीस -पय = बत्तीस पद , संपया अट्ठ= आठ संपदा।

गाथार्थ : - प्रणिपात सूत्र में अट्ठावीस अक्षर है। और इरियावहिया में एकसो निन्याणु अक्षर बत्तीस पद और आठ संपदाएँ है।

विशेषार्थ :- इरियावहिया सूत्र तस्स उत्तरी सहित गिना जाता है इसलिए इच्छामि पडिक्कमिउं से निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं तक के वर्ण, पद और संपदाएँ गिनना। कितनेक आचार्य तस्स मिच्छामि दुक्कडं तक ही १५० अक्षर गिनते है।

खमासमण- सूत्र की संपदा और पद की गिनती नही देने का २९ वी गाथा के अर्थ में ही बता दी गई है ॥३१॥

इरियावहिया में संपदाओं के पदो की संख्या और आदि (प्रथम) पद

दुग दुग इग चउ इग पण इगार छग इरिय संपदाऽऽइपया
इच्छा इरि गम पाणा जेमे एगिंदि अभि तस्स ॥३२॥

शब्दार्थ :-इरिय-संपयाइ =इरिया वहिया की संपदा के, दुग-दुग-इग-चउ-इग-पण-इगार-छग =दो,दो,एक, चार,एक, पांच,अग्यारह ,और छ पया=पद है। इरिय-संपयाऽऽइ-पया=इरियावहिया की संपदाओं के आदि=प्रारंभ के पद ॥३२॥

गाथार्थ:-इरियावहिया की संपदाओं के दो,दो.एक.चार.एक,पांच,अग्यारह,और छ पद है। इरियावहिया की संपदाओं के प्रारंभ के पद इच्छा० इरि० गम० पाणा० जे मे० एगिंदि० अभि० तस्स० है।

विशेषार्थ :-संपदाओं के प्रारंभ के पदों के मात्र शुरूआत के अक्षर ही कहे है। उसके आधार पर पूर्ण पदों को समझना । जैसे कि इच्छा० "इच्छामि पडिक्कमिउं" विगेरे संपयाइ पया अर्थात् संपदा के पद और संपया -ऽऽइ-पया अर्थात् संपदा के प्रारंभ के पद, इस प्रकार दो तरीके से पदच्छेद किया गया है।

इरियावहिया की आठ संपदाओं के सहेतुक विशेषनाम

अब्भुवगमो निमित्तं ओहेअर-हेउ संगहे पंच
जीव-विराहण-पडिक्कमण-भेयओ तिन्नि चूलाए ॥३३॥

शब्दार्थ:-अब्भुवगमो=स्वीकार, निमित्तं=निमित्त, ओहेयर-हेउ=ओघ-सामान्य हेतु, और इत्तर अर्थात् विशेष हेतु, संगहे=संग्रह, पंच =पांच, जीव-विराहण-पडिक्कमण-भेयओ=जीव विराधना और प्रतिक्रमण के भेदसे, तिन्नि=तीन, चूलाए=चूलिका में ॥३३॥

गाथार्थ :- अभ्युपगम,निमित्त,सामान्य,और विशेष हेतु, संग्रह ये पांच और चूलिका में जीव, विराधना, और प्रतिक्रमण, के भेद से तीन ॥३३॥

विशेषार्थ :- इरियावहिया में-आलोचना और प्रतिक्रमण प्रायश्चित है। अर्थात्

१. **अभ्युपगम संपदा से** -प्रतिक्रमण करने के लिए स्वीकार होता है।
२. **निमित्त संपदासे** -प्रतिक्रमण किसलिए करना ? प्रतिक्रमण में लगनेवाले दोष जिस निमित्त से उत्पन्न हुए हों,उन निमित्तो को दर्शाया है।
३. **सामान्य हेतु संपदा से** -जिस दोष को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण करने में आता है, उस दोष का सामान्य कारण बताया है।
४. **विशेष हेतु संपदा से**- दोष के विशेष कारण गिनाये है।
५. **संग्रह संपदासे** -हिंसा रूप दोष लगने के निमित्त रूप होनेवाली सर्व जीवों की हिंसा का संग्रह बताने में आया है ।

६. **जीव संपदासे**- सर्व जीवों का क्रमानुसार संग्रह हो सके, उस तरीके से संग्रह सूचित करने के लिए जीवों की जातियाँ गिनायी है ।

७. **विराधना संपदा से** -हिंसा विराधना के प्रकार ११ पदों में विस्तार पूर्वक गिनाये है।

८. **प्रतिक्रमण संपदासे**-उन सर्व दोषों के प्रतिक्रमण का अभ्युपगम स्वीकार का निर्वाह करने में आया है।

हमारी समझ के अनुसार तस्स मिच्छामि दुक्कडं, ये पद प्रतिक्रमण रूप और तस्सउत्तरी-के पद प्रतिक्रमण प्रायश्चित अर्थात् उत्तर प्रायश्चित रुप याने कायोत्सर्ग प्रायश्चित रुप ज्ञात होता है। लेकिन पूर्वाचार्यों की व्याख्या में इसी प्रकार है, अतः उसी तरह रखा है। तस्स मिच्छामि संपूर्ण तस्सउत्तरी सूत्र को प्रतिक्रमण प्रायश्चित रूप लें, तो भी अपेक्षा विशेष अडचन नही आती है । लेकिन इस प्रकार करने से विराधना संपदा के १० पद ही रह जाते है। वहाँ पर विरोध आता है । इसलिए अन्य आचार्य भगवतों को तस्सउत्तरी से प्रतिक्रमण प्रायश्चित मान्य है । ऐसा स्पष्ट समझ में आता है । फिर भी विराहिया तक पांचवी, पंचिदिया तक छट्ठी और तस्स मिच्छामि तक ७ वी और काउस्सग्गं तक आठवीं संपदा । इसप्रकार के मन्तान्तर को उल्लेख संघाचार वृत्ति में किया गया है ।

शेष तीन तीन संपदाओं को चूलिका के अंदर की संपदा कही गयी है। इसके आधारसे इर्यापथिकी सूत्र का मुख्य पाठ पंचिंदिया तक का है । इस प्रकार ज्ञात होता है ।

इरियावहिया की संपदाएँ

८ संपदा के नाम	संपदा के प्रथम पद	संपदा के सर्व पद
१. अभ्युपगम	इच्छामि	२
२. निमित्त	इरियावहियाए	२
३. ओघ(सामान्य) हेतु	गमणागमणे	१
४, इत्तर (विशेष) हेतु	पाणक्कमणे	४
५. संग्रह	जे मे जीवा विराहिया	१
६. जीव	एगिंदिया	५
७, विराधना	अभिहया	११
८. प्रतिक्रमण	तस्स उत्तरी	६
कुल		३२

शक्रस्तव के प्रत्येक संपदा के पद की संख्या व आदि पद

दु-ति-चउ-पण-पण-पणं-दु-चउ-ति-पय-सक्क-त्थय संपया ऽऽइ-पया
नमु-आइग-पुरिसो-लोगु-अभय-धम्म-ऽप्प-जिण-सव्वं ॥३४॥

(**अन्वय** :-सक्क-त्थय-संपयाइ- दु-ति-चउ-पण-पण-पण-दु-चउ-ति-पय-सक्क-त्थय संपया ऽऽइ-पया-नमु०-आइग०-पुरिसो०-लोगु०-अभय०-धम्म०-अप्प०-जिण०-सव्वं ॥३४॥

शब्दार्थ:-सक्कत्थय= शक्रस्तव की, संपयाइ=संपदा के आदि, पया=पद, सक्कत्थय-संपयाऽऽइ-पया=शक्रस्तव की संपदाओं के आदि पद, दु ति-चउ-पण-पण-पण-दु-चउ-ति-पया=दो, तीन,चार,पांच,पांच,पांच,दो,चार, तीन, पदो ॥३४॥

गाथार्थ:- दो-तीन-चार-पांच- पांच- पांच-दो-चार-तीन-पदों वाली शक्रस्तव की संपदाएँ है । शक्रस्तव की संपदाओं के आदि पद नमु. आइग. पुरिसो. लोगु. अभय.धम्म.अप्प. जिण.सव्वं.है ॥३४॥

शक्रस्तव की संपदाओं के नाम

थोअव्व-संपया ओह-इयर-हेऊवओग-तद्धेऊ।
स-विसेसुवओग स-रूव-हेऊ निय-सम-फलय मुक्खे ॥३५॥

(**अन्वय** :-थोअव्व ओह इयर हेउ, उवओग तद्धेऊ स विसेसुवओग स रूव-हेउ निय सम-फलय मुक्खे संपया) ॥३५॥

शब्दार्थ:-थोअव्व=स्तुति करने योग्य, संपया=संपदाएँ, ओह=सामान्य, इयर=विशेष, हेतु=हेतु, उवओग=उपयोग, तद्हेऊ=उसका हेतु, सविसेसुवओग=सविशेष उपयोग, स-रूव-हेउ=स्वरूप हेतु , निय-सम-फलय=स्वयं जैसे फल देनेवाला, मुक्खे=मोक्ष

गाथार्थ:-स्तोतव्य ओघ और इत्तर हेतु, उपयोग, तद्धेतु, सविशेष, उपयोग, स्वरूपहेतु, निज सम फलद,मोक्ष संपदा ॥३५॥

विशेषार्थ :-१.स्तोतव्यसंपदा :-इस सूत्र में किसकी स्तुति की गयी है ? याने स्तुति करने योग्य कौन है ? ये बताने के लिए अरिहंताणं भगवंताणं ये दो पद है । अर्थात् अरिहंत परमात्मा इस स्तुति से स्तुति करने योग्य है । इसलिए स्तोतव्यसंपदा कहलाती है।

२.ओघहेतु संपदा:- बादके तीन पदोमें वो ही स्तुति करने योग्य है उसका सामान्य कारण दिया गया है। इसलिए तीन पदों की ओघहेतु संपदा कही गयी है ।

३.विशेष हेतु संपदा:- ओघहेतु का विस्तार बाद के चार पदों में करने में आया है । इसलिए इसे विशेष हेतु संपदा कही जाती है ।

४.उपयोग हेतु संपदा :- जिसकी स्तुति की गयी है , उसकी लोगों को आवश्यकता क्या है ? मात्र दृष्टिराग के कारण स्तुति की गयी है या अरिहंत परमात्मा जगत के लिए उपयोगी है ? इसे समझाने के लिए पांच पदों की उपयोगी हेतु संपदा कहलाती है ।

५. तद्धेतुसंपदा :-स्तुति करने योग्य जगत में उपयोगी है। लेकिन किस तरह से उपयोगी होते है ? उपयोगी होने में क्या क्या कारण है। इसलिए उपयोग के हेतुरूप तद्धेतुसंपदा कही गयी है।

६. सविशेषोपयोग संपदा:- सामान्य उपयोग मात्र से किसी व्यक्ति की परम स्तोतव्यता नही आ सकती। लेकिन मुख्य उपयोग,विशेष उपयोग, या असाधारण उपयोग जिसका हो, वही असाधारण स्तुति का विषय बन सकता है,इसलिए धम्मदयाणं विगेरे पांच पदों से सविशेषोपयोग संपदा कही गयी है ।

७. स्वरूप संपदा :-स्तोत्तव्य अरिहंत परमात्मा का दो पदों से असाधारण व्यक्तित्व वाला स्वरूप दर्शाया गया है । जिससे यह स्वरूप संपदा कहलाती है।

८. निजसम- फलद संपदा या स्वतुल्य.पर.फल.कर्तुत्व संपदा:-यदि स्तुति करने का फल न मीले, तो स्तुति करना व्यर्थ है। स्तुति करना आवश्यक इसलिए है कि स्तोतव्यो स्वयं के समान हमको बना सकते है।ये दर्शाने के लिए निजसम-फलद-संपदा कही गयी है, जिसका दूसरा नाम स्वतुल्य-पर-फल-कर्तुत्व संपदा है ।यदि स्तोतव्यो अपने समान दूसरों को नही बना सकते, फिर तो स्तुति करने का क्या प्रयोजन हो सकता है ।

९. मोक्ष संपदा :-अरिहंत परमात्मा ने क्या फल प्राप्त किया है ?
परमात्मा ने मोक्षरूपी फल प्राप्त किया है, इसलिए परमात्मा मोक्षरूपी फल अर्पण करने में समर्थ है। अर्थात् अरिहंत परमात्माओं के प्रयास का और हमारे प्रयास का भी अंतिम फल तो मोक्ष ही है। दोनों का ध्येय एक ही है। ये दर्शाने के लिए मोक्ष संपदा कही गयी है।

अंतिम दो संपदाएँ प्रथम की संपदाओं के साथ उपसंहार रूपमें कुछ सीधा संबंध भी दर्शाती है।

संपदाओं की इस व्यवस्था से ३३ पदों के नमुत्थुणं रूप महास्तुति रूप सूत्र की असाधारण व्यवस्था दर्शायी है। विशेषण भी कैसे हेतु गर्भित और एक संदर्भरचना में जितने अंग चाहिये, वैसे प्रत्येक अंग के साथ उनमें संकलित हो गये है । अधिक सूक्ष्मता से विचार करने पर संपदा के प्रत्येक पदमें भी सविशेष हेतु रखे गये है ।इसलिए असमस्त पदों को रखकर के अलग अलग विशेषण दीये है । **ललित विस्तरा वृति** में इस को **श्रीहरिभद्रसूरीश्वरजी** महाराज ने खूब उजागर किया है ।

"शक्रस्तव की संपदाएँ"

संपदा का नाम	संपदा का प्रथम पद	सर्वपद
१.स्तोतव्य संपदा	नमुत्थुणं	२
२.ओघहेतु संपदा	आइगराणं	३
३.विशेषहेतु संपदा	पुरिसुत्तमाणं	४
४.उपयोग संपदा	लोगुत्तमाणं	५
५.तद्धेतु संपदा	अभयदयाणं	५
६.सविशेषोपयोग संपदा	धम्मदयाणं	५
७.स्वरूप संपदा	अप्पडिहय वरनाण	२
८.निजसम फलद संपदा (स्वतुल्य पर फल कर्तृत्व संपदा)	जिणाणं	४
९.मोक्ष संपदा	सव्वन्नूणं	३
		३३

नमुत्थुणं और चैत्यस्तव के पद और वर्णो की संख्या

दो-सग-नउया वन्ना नव संपय पय तित्तीस सक्क-थए ।

चेइयथय ऽ ट्ठसंपय तिचत्त-पय वन्न दु-सय-गुण-तीसा ॥३६॥

(**अन्वय:**-सक्क-थए दो-सग-नउया वन्ना, नव संपय, तित्तीस पय, चेइय थय-ऽट्ठ संपयं, ति-चत्त-पय, दु-सय-गुण-तीसा वन्न ॥३६॥

शब्दार्थ:- दो-सग-नउया= दो सौ सत्ताणुं, चेइयथय=चैत्यस्तव (अरिहंत चेइ.), वन्ना=अक्षर, नव=नौ, संपय=संपदा, पय=पद, तित्तीस=तेंत्रीस, सक्क थए=शक्रस्तवमें, अट्ठ= आठ, संपय=संपदा, ति-चत्त-पय= तियालीस पद, वन्न =वर्ण, दु-सय-गुण-तीसा=दो सौ उनतीस ॥३६॥

गाथार्थ:-शक्रस्तव में दो सौ सत्ताणुं अक्षर, नौ संपदा,तेंतीस पद है। चैत्यस्तव में आठ संपदा, तियालीस पद, दो सौ उनत्तीस अक्षर है ।

चैत्यस्तव की संपदाएँ, पदों की संख्या और आदि पद

दु-छ-सग-नव-तिय-छ-च्चउ-छ-प्पय चिइ-संपया पया पढमा।
अरिहं-वंदण-सद्धा-अन्न-सुहुम-एव जा-ताव ॥ ३७ ॥

(**अन्वय** :-दु-छ-सग-नव-तिय-छ-च्चउ-छ-प्पय, चिइ-संपया, अरिहं०-वंदण०-सद्धा०-अन्न०-सुहुम०-एव० जा०-ताव० पढमा पया ॥३७॥

शब्दार्थ :- दु=दो, छ=छ, सग=सात, नव=नौ, तिय=तीन, छ=छ, च्चउ=चार, छप्पय=छ प्रकार, चिइसंपया=चैत्यस्तव की संपदा, पया=पद, पढमा=प्रथम ॥३७॥

गाथार्थ :- दो, छ, सात, नौ, तीन, छ, चार, और छ प्रकार के पदवाली चैत्यस्तव की संपदाएँ है। और अरिहं. वंदण. सद्धा. अन्न. सुहुम. एव. जा. ताव उसके आदि पद है ॥३७॥

चैत्यस्तव की आठ संपदाओं के नाम

अब्भुवगमो निमित्तं हेऊ इग-बहु-वयंत आगारा।
आगंतुग- आगारा उस्सग्गा-ऽवहि स-रूव-ऽट्ठ ॥३८॥

(**अन्वय** :-अब्भुवगमो निमित्तं हेऊ इग-बहु-वयंत आगारा, आगंतुग-आगारा, उस्सग्गा-ऽवहि स-रूव-ऽट्ठ ॥३८॥

शब्दार्थ :- अब्भुवगम=अभ्युपगम, स्वीकार, निमित्तं=निमित्त, हेऊ =हेतु, इग=एक, बहु=बहु, वयंत=वचनांत, आगारा=आगार, इग-बहु-वयंत-आगारा =एक वचनान्त और बहु वचनान्त आगार, आगंतुग=आगंतुग (आ जावे वैसे), आगंतुग-आगारा=आगंतुग आगार, उस्सग्ग=कार्योत्सर्ग, अवहि=अवधि, मर्यादा, सरूव=स्वरूप उसग्गा-ऽवहि-स, रूव =कार्योत्सर्ग की मर्यादा और स्वरूप, अट्ठ=आठ ॥३८॥

गाथार्थ :-अभ्युपगम, निमित्त, हेतु, एक और बहुवचनान्त आगार आगंतुग आगार, कार्योत्सक की अवधि, और स्वरूप इस प्रकार आठ (संपदाएँ) है।

विशेषार्थ :-यहाँ पर अरिहंत चेइआणं सूत्र को अन्नत्थ सहित लीया है। इसलीए अरिहंत चेइआणं की तीन और अन्नत्थ की पांच संपदाएँ है।

आठ संपदाओं का स्वरूप

१,अभ्युपगम संपदा = "अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं" किसी एक चैत्य (जिनालय) में रही हुई प्रतिमाओं को वंदनादि के लिए काउस्सग्ग के लिए स्वीकार किया गया है। अतः प्रथम दो पद की प्रथम अभ्युपगम संपदा है।

२.निमित्त संपदा:- "वंदणवत्तियाए से निरूवसग्गवत्तियाए" तक के छ पदों में कार्योत्सर्ग करने का निमित्त दर्शाया गया है। अतः छ पदवाली निमित्त संपदा है ।

३.हेतु संपदा:-श्रद्धा रहित भाव से किया हुआ कार्योत्सर्ग इष्ट सिद्धि नही दे सकता,इसलिए **सद्धाए से ठामि काउस्सग्गं** तक के सात पदो में कायोत्सर्ग के हेतु-साधन दर्शाये गये है। इसलिए हेतु संपदा कही गयी है। अनिवार्य संयोग में भी कार्योत्सर्ग भंग नहो यह तब ही संभव है कि इसके लिए आवश्यक छूट रखी जाय और कार्योत्सर्ग निर्दोष पूर्ण हो,इसके लिए **आगार** (छूटें) रखे गये है। **अन्नत्थ से हुज्ज में काउस्सग्गो** तक काउस्सग्ग के १२ आगार दर्शाये गये है।

४.एक वचनान्त आगार संपदा =अन्नत्थ से **पित्तमुच्छाए** तक के नौ पद एकवचनान्त प्रयोगवाले शब्दों से सूचित होने के कारण नौ पदों की चौथी एकवचनान्त आगार संपदा कहलाती है ।

५.बहुवचनान्त आगार संपदा = सुहुमेहिं से दिट्ठिसंचालेहिं तक की तीन पदों की पांचवी बहुवचनान्त आगार संपदा कहलाती है।

६.आगंतुग आगार संपदा =अन्नत्थ सूत्र में कहे गये आगारों से तथा **"एवमाइएहिं"**इस पदसे सूचित आगारों से (चै.व.भा.५५) भी कार्योत्सर्ग का भंग न हो इसके लिए हुज्ज मे काउस्सग्गो तक के छ पदों की आगंतुग आगार संपदा कहलाती है ।

७. कायोत्सर्गावधि संपदा=जाव अरिहंताणं से **न पारेमि** तक चार पदों में कायोत्सर्ग की अवधि (मर्यादा) कितने समय तक कायोत्सर्ग करना उसका काल प्रमाण दर्शाया गया होने से सातवी कायोत्सर्गावधि संपदा कहलाती है।

८. कायोत्सर्ग स्वरूप संपदा=ताव कायं से **वोसिरामि** तक के छ पदों में कायोत्सर्ग किस प्रकार करना ? उसका स्वरूप दर्शाया गया है इसलिए चार पदों वाली आठवी कायोत्सर्ग स्वरूप संपदा कहलाती है।

चैत्यस्तव की ८ संपदा के नाम, प्रथम पद और पद संख्या

	८. संपदा के नाम	संपदा के प्रथम पद	सर्व पद
१.	अभ्युपगम संपदा	अरिहंत चेइआणं	२
२.	निमित्त संपदा	वंदण वत्तियाए	६
३.	हेतु संपदा	सद्धाए	७
४.	एक वचनान्त आगार संपदा (१)सहजागार (२)अल्पागंतुक हेतु (३)बहु आगंतुक हेतु	अन्नत्थ ऊससिएणं	९ (२-३-४)
५.	बहु वचनान्त आगार संपदा (नियोगजन्य)	सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं	३
६.	आगंतुक आगार संपदा (बाह्यागंतुक)	एवमाइएहिं	६
७.	कायोत्सर्गाविधि संपदा	जाव अरिहंताणं	४
८.	स्वरूप संपदा	ताव कायं	६
			४३

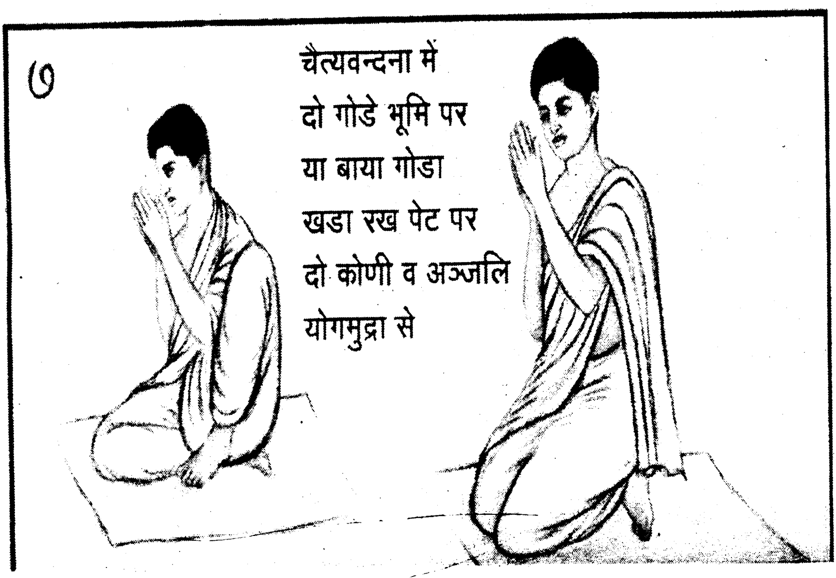

नामस्तवादि ३ सूत्रों की संपदा पद और अक्षर

नाम थयाइसु संपय-पयसम अडवीस सोल वीस कमा
अदुरुत्त वन्न दोसह - दुसयसोलह नउअसयं ॥३९॥

शब्दार्थ :- नामथय - नामस्तव (लोगस्स), पयसम - पद के समान आइसु-विगेरे (३ सूत्रमें), कमा-अनुक्रम से, "अदुरूत्त-पुनरुक्त नही।"

गाथार्थ:- लोगस्स विगेरे (अर्थात) लोगस्स - पुक्खरवर और सिद्धाणं बुद्धाणं इन तीन (सूत्रों) में अनुक्रम से संपदाऐं पद तुल्य (अर्थात्) २८-१६-२० पद और उतनी ही संपदाऐं है। तथा दूसरी बार सूत्रोच्चार के समय नही बोले गये अक्षर २६०, २१६ और १९८ है।

विशेषार्थ :- इन तीन सूत्रों में लोगस्स सूत्र की ७ गाथाऐं हैं, प्रत्येक गाथा के चार चरण (चार पाद-भाग) व उतने ही पद है तथा संपदाऐं हैं - अर्थात् कुल चरण २८ के अनुसार पद २८ व संपदा भी २८ है। इसी तरह पुक्खरवरदी की चार गाथाऐं हैं। उसके १६ चरण के अनुसार १६ पद और संपदाऐं भी १६ है। सिद्धाणं बुद्धाणं की ५ गाथाऐं हैं, अतः उसके २० चरण के अनुसार २० पद और २० संपदाऐं हैं। और अक्षरों की संख्या, गाथा २६ वी में कहे गये अनुसार जानना वहाँ लोगस्स में सव्वलोए, पुक्खरवरदी में "सुअस्स" भगवओ और सिद्धाणं में "वेयावच्चगराणं संतिगराणं, सम्मदिटठि समाहिगराण" इनके अक्षर अधिक गिनने के कारण लोगस्स के २६०, पुक्खरवरदी के २१६, वसिद्धाणं के १९८ अक्षर होते हैं। लेकिन पद और संपदा के अनुसार अक्षरों की संख्या इतनी नही होती है। प्रणिधान सूत्रके अक्षर तथा चैत्यवंदन संबंधि ९ सूत्रों के गुरु अक्षर दर्शाती गाथा, (लघु अक्षर की संख्या स्वतः प्राप्त हो जाते हैं।)

पणिहाणि दुवन्नसयं कमेसु सग-ति चउवीस-तित्तीसा।
गुणतीस-अट्ठवीसा, चउतीसिगतीस बार गुरुवन्ना ॥४०॥

शब्दार्थ :- पणिहाणि - तीन प्रणिधान में, एसु = इन (९) सूत्रोंमें, कमा= अनुक्रमसे, गुरु वन्ना = संयुक्त व्यंजन (अक्षर)

गाथार्थ :- तीन प्रणिधान सूत्रों में (जावंति चेई०, जावंतके वि०, जयवीयराय०) अनुक्रम से ३५, ३८ और ७९ अक्षर-कुल १५२ अक्षर है। तथा संयुक्त व्यंजन नवकार में ७, खमासमण में ३, इरियावहिया में १४, शक्रस्तवमें ३३, चैत्यस्तवमें २९, नामस्तव में २७, श्रुतस्तवमें ३४, सिद्धस्तवमें ३१, और प्रणिधान सूत्रों में १२ संयुक्त व्यंजन हैं। ||४०||

विशेषार्थः- यहाँ गुरु अक्षर याने[1] संयुक्त व्यंजन समजना, लेकिन संयुक्त व्यंजन से पूर्व का अक्षर गुरु (संयुक्त) होता है इस नियम का प्रयोग यहाँ नही करना। संयुक्त व्यंजन कौन कौन से हैं ? जिसका निराकरण हम स्वतः ही कर सकते हैं। लेकिने कितनेक (६ स्थानों पर) स्थानो पर मतान्तर है। मात्र उसकी जानकारी दी गयी है।

१. नवकार में "प्पणासणो" के स्थान पर "पणासणों" कहते हैं जिससे ७ संयुक्त व्यजन के बजाय ६ संयुक्त व्यंजन होते हैं।

२. इरियावहिया में ठाणाओ ठाणं के स्थान पर "ठाणाओट्ठाणं" कहते हैं। जिससे २४ गुरु अक्षर के बजाय २५ गुरु अक्षर होते हैं।

३. नमुत्थुणं में "वियट्ट छउमाणं" के स्थान पर "विअट्टच्छउमाणं" कहते हैं। जिससे संयुक्त व्यंजन २४ के स्थान पर २५ होते हैं।

४. चैत्यस्तव दंडक में "काउस्सग्गं" शब्द तीन बार आता है। उसमें "स्स" के स्थान पर "स" का उच्चारण करने से संयुक्त व्यंजन ३ कम होने से २९ के स्थान पर २६ संयुक्त व्यंजन होते हैं।

५. लोगस्स में "चउवीसंपि" के स्थान पर चउव्वीसंपि कहते हैं। जिससे संयुक्त व्यंजन २८ के स्थानपर २९ होते हैं।

---

१. मागधीभाषामें संयुक्त व्यंजन स्वजाति के तथा स्व वर्ग के द्वित्वरुप समजना। संयुक्त व्यंजन अन्य वर्ण के साथ जुड़कर संयुक्त नहीं बनता। ये मतान्तर भाष्य की अवचूरि के अनुसार दीये गये हैं।

६. पुक्खरवरदी में "देवंनागं" के स्थानपर "देवन्नाग" कहते हैं। जिससे संयुक्त व्यंजन ३४ के स्थान पर ३५ होते हैं। इस प्रकार ६ सूत्रों में संयुक्त व्यंजनों का मतान्तर समजना। और पूर्व में दर्शाये गये संयुक्त अक्षर के सिवाय शेष बचे हुए लघु अक्षर इस प्रकार हैं। लघु अक्षर नवकार में ६१, खमासमण में २५, इरियावहिया में १७५ नमुत्थुणं में २६४, चैत्यस्तवमें २००, लोगस्समें २३२, पुक्खरवर में १८२ सिद्धाणं में १६७ और प्रणिधानत्रिक में १४० हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त ९ सूत्रों के अलावा शेष स्तूति स्तवन और चैत्यवंदन (नमस्कार रुप) विगेरे भी चैत्यवंदन में आते हैं। लेकिन वो नियत नहीं होने के कारण उनके अक्षरों की गणना नहीं हो सकती ॥ इति ८-९-१० वाँ द्वार ॥

८-९ व १० वे द्वार का यंत्र

सूत्र के [1]आदान नाम	सूत्र के गौण नाम	पद संख्या	संपदा	संयुक्त (गुरु)अक्षर	लघु अक्षर	सर्व अक्षर
[2]नवकार	पंच मंगल श्रुत स्कंध	९	८	७	६१	६८
इच्छामि खमासमणो	प्रणिपात या थोभ सूत्र	०	०	३	२५	२८
इरियावहियं तस्सउत्तरी (सहित)	प्रतिक्रमण सूत्र	३२	८	२४	१७५	१९
नमुत्थुणं	शक्रस्तव या प्रणिपात दंडक	३३	९	३३	२६४	१७
अरिहंत चेइआणं अन्नत्थ (सहित)	चैत्यस्तव या कायोत्सर्ग दंडक	४३	८	२९	२००	२२९

१. सूत्र के आदि पदवात्मा नाम वह आदान नाम, और गुण वाचक वह गौण नाम कहलाता है।

२. "नवकार" ये आदान नाम नही है, लेकिन लगता है ये नाम अनादि है।

लोगस्स	नामस्तव	२८	२८	२८	२३२	२६०
पुक्खरवरदी	श्रुतस्तव	१६	१६	३४	१८२	२१६
सिद्धाणं बुद्धाणं	सिद्धस्तव	२०	२०	३१	१६७	१९८
जावंति चेइआई	चैत्यवंदन सूत्र	0	0	३ } १२	३२ } १४०	३५ } १५२
जावंति के विसाहु	मुनिवंदन सूत्र	0	0	१	३७	३८
जयवीयराय (प्रथम २ गाथा)	प्रार्थना सुत्र	0	0	८	७१	७१

५ दंडक व उसमें आनेवाले १२ अधिकार

पण दंडा सक्कत्थय-चेइय-नाम सुअ सिद्धाथय इत्थ ।

दो इग दो दो पंच य अहिगारा बारस कमेण ॥४१॥

शब्दार्थ:-पण=पांच, **इत्थ** = यहाँ (पांच दंडक में) दंडा-दंडक, सक्कल्दत्थय -शक्रस्तव, चेइय-चैत्य, सुअ-श्रुत, सिध्धत्थय-सिध्धस्तव, अहिगारा-अधिकार

गाथार्थ :- शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव, और सिध्धस्तव ये पांच दंडक है । (उनमें) अनुक्रमसे २-१-२-२-५ इस तरह अधिकार हैं। ॥४१॥

भावार्थ :- तीर्थंकर पदवी प्राप्ति से पहले भी (जन्म कल्याणक प्रसंग पर) सौधर्म कल्पका शक्र नामका ईन्द्र नमुत्थुणं सूत्र द्वारा परमात्मा की स्तुति करता है, इसलिए नमुत्थुणं का गौण[1] नाम "शक्रस्तव" है । और नमुत्थुणं आदान नाम है । अरिहंत चेइआणं चैत्य के विषयमें स्तुति और कायोत्सर्ग दर्शाने वाला सूत्र है, अतः उसका गौण नाम "चैत्यस्तव" है ।

(१) श्री अनुयोगद्वार में १० प्रकार के नामो के प्रसंग पर जिस सूत्र का नाम आदि पद से जाना जाता है,उसे आदान नाम व गुणों के आधार से जाना जाने वाला नाम गौण नाम कहा गया है ।

अरिहंत चेइआणं ये आदान नाम है । लोगस्स में वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकरों के नाम की स्तवना की गयी है, अतः इसका गौण नाम "नामस्तव" है और लोगस्स ये आदान नाम है । पुक्खरवरदी श्रुत और सिद्धान्त की स्तुति रुप होने से इसका गौण नाम "श्रुतस्तव" है । और पुक्खरवरदी ये आदान नाम है । सिद्धाणं बुद्धाणं सिद्धभगवान की स्तुति रुप होने से इसका गौण नाम "सिद्धस्तव" है , और आदान नाम सिद्धाणं या सिद्धाणं बुद्धाणं कहलाता है । इस प्रकार ये पांच सूत्र चैत्य वंदन में मुख्य होने के कारण [1]दंडवत् सरल (अन्य सूत्रों की अपेक्षा से दीर्घभी) होने से **दंडक** कहलाते है । इन पांच दंडको में चैत्यवंदन के १२ अधिकार याने १२ विषय कहे गये हैं । उसकी विशेष स्पष्टता आगे की गाथाओं में कही जायेगी।

इति पंचदंडक द्वार कम्

पांच दंडक के विषयमें कहे गये १२ अधिकार के आदि पद

नमु जेय अ अरिहं लोग सव्व पुक्ख तम सिध्ध जो देवा
उज्जि चत्ता वेयावच्चग अहिगार पढम पया ॥४२॥

गाथार्थ :-१. नमुत्थुणं २. जेय (अ) अइया सिध्धा, ३.अरिहंत चेइयाणं ४. लोगस्स उज्जोअगरे ५. सव्वलोए अरिहंत-चेइयाणं ६. पुक्खरवरदीवड्ढे ७. तमतिमिर पडलविद्धं ८. सिद्धाणं बुद्धाणं ९. जो देवाणवि देवो १०. उज्जिंत सेलसिहरे ११.चत्तारिअठ दस दो १२. वेयावच्चगराणं ये बारह अधिकार के १२ प्रथमपद है । ॥४२॥

किस अधिकार में किसकी स्तवना है ? आगे की तीन गाथाओं में इसका वर्णन कहा जायेगा ।

---

१. यथोक्त मुद्राभिरस्खलितं भण्यमानत्वाद् दंडाः इव दंडा : सरला इत्यर्थः (भाष्यावचूरि)

पढमहिगारे वंदे भावजिणे बीयअंमि दव्वजिणे ।
इगचेइयट्ठवण जिणे, तइयचउत्थंमि नामजिणे ॥४३॥

गाथार्थ :- प्रथम अधिकारमें भावजिनको, दूसरे अधिकारमें द्रव्यजिनको, तीसरे अधिकार में एक चैत्य के स्थापना जिनको, और चौथे अधिकार में नाम जिनको वंदना करता हु ॥४३॥

विशेषार्थ :- नमुत्थुणं में नमुत्थुणं से जिअभयाणं तक के पाठ में भावजिन याने तीर्थंकर नामकर्म के विपाकोदय वाले केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा जो कि देशनादि द्वारा भव्यजीवों का उद्धार करते हुए पृथ्वीतल को अपने चरणों से पावन करते हुए विचरते हैं या विचरते थे, उस अवस्था को लक्ष्यमें रखकर वंदना की गयी है "॥ इति प्रथमाधिकारः ॥"

उसके बाद नमुत्थुणं की अंतिम गाथा में (जेअ अइया सिध्धा से सव्वे तिविहेण वंदामि तक में) द्रव्यजिन याने पूर्व के तीसरे भवमें निकाचित तीर्थंकर नामकर्म का बंध- करके, उसके प्रदेशोदयमें रहने वाले ऐसे तीर्थंकर के जीव, जिन्होने अभितक केवलज्ञान प्राप्त कर भाव तीर्थंकर पद को प्राप्त नहीं किया हो, लेकिन भविष्य में प्राप्त करेंगे, उन्हे द्रव्यजिन कहते हैं । तथा भाव तीर्थंकर पद प्राप्त करके जिन्होंने सिध्धिपद को प्राप्त करलिया हो । ऐसी सिद्धावस्थावाले को भी द्रव्यजिन कहलाते हैं । इस तरह उभय पार्श्ववर्ती अवस्थावाले दोनों ही प्रकार के [1]द्रव्यजिन को वंदना की है । "॥इति द्वितीयाधिकारः॥"

---

१. भूयस्स भावीणो वा, भावस्सि कारणं तु जं लोए । तं सव्वं सव्वन्नू, सचेथणाचेयणं बेंति ॥१॥ आवश्यकादि अनेकग्रंथ

इसके बाद अरिहंत चेइआणं से ठामि काउस्सग्गं [२] तक के संपूर्ण सूत्रों में जिस जिस चैत्य में वंदना करनी है, उस चैत्यमें विराजमान सर्व स्थापना जिनको अर्थात् सर्व जिन प्रतिमाओं को वंदना की है। "।। इति तृतीयाधिकारः ।।"

उसके बाद संपूर्ण लोगस्स में वर्तमान अवसर्पिणी कालमें होगये २४ तीर्थंकरों के नामों की स्तवना की गयी होने से नाम जिनेश्वरों को वंदना का अधिकार है । "।। इति चतुर्थाधिकार ।।"

इस तरह इन ४ अधिकारों में श्री जिनेश्वर के नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों को पश्चानुपूर्वी क्रमसे वंदना की है ।

जगत में बीते हुए भाव को अथवा भविष्यकाल में होनेवाले भाव का जो कारण (अवस्था) उसे सर्वज्ञ भगवन्त **द्रव्य** कहते हैं । और वो सचित्त तथा अचित्त दो प्रकार का है। ।।१।। इस तरह भावतीर्थंकरों की बाल्यावस्थादि व पूर्व अवस्था, भावी में कारण रुप द्रव्यजिन है और सिध्ध अवस्था भी भूतकारणरूप द्रव्यजिन है। तथा यहाँ भूतकाल और भविष्य काल के द्रव्यजिन, वे सभी पन्दरह कर्म भूमिक्षेत्र के समजना। लेकिन वर्तमान कालके (भरतादि १० क्षेत्र की अपेक्षा से चल रहे पांचवे आरे में) तो पांच महाविदेह में जन्म ले चुके तद् भवक गृहस्थ तीर्थंकर और शेष १० में अर्वाग तृतीयभविक तीर्थंकर द्रव्यजिन जानना।

(२) इस अधिकार का पर्यन्त भाग अरिहंत चेइ० से अन्नत्थ पर्यन्त १ नवकार का काउस्सग्ग के बाद अधिकृत जिन या चैत्यादि से संबंधित प्रथम स्तुति कही जाती है. उस स्तुति के अन्त तक है । इस प्रकार धर्मसंग्रह की वृत्ति में कहा है । इस तरह आगे के अधिकार जो चूलिका स्तुति वाले हैं, वो सर्व चूलिका स्तुति पर्यन्त समजना। यहाँ पर्यन्तमे कही जाने वाली प्रत्येक स्तुति चुलिका स्तुति है। प्रव० सारो० वृत्तिमें स्पष्ट रुपसे पर्यन्तवर्ती स्तुति तक चारों अधिकार गिने हैं ।

शेष ८ अधिकार वर्णन

तिहुअण ठ्ठवण जिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिण छट्ठे ।
सत्तमए सुयनाणं, अट्ठमए सव्वसिध्धथुई, ॥४४॥

तित्थाहिव वीरथुई, नवमे दसमे य उज्जयंत थुई
अट्ठावयाइ इगदिसि, सुदिट्ठिसुरसमरणा चरिमे ॥४५॥

शब्दार्थ :- **तिहुअण**=तीन भुवन के, **विहरमाण**=विचरण करते, **थुई**=स्तुति, **तित्थाहिव**=तीर्थाधिपति (वर्तमान में तीर्थ के नायक), **उज्जयंत**=गिरनार (अर्थात् श्री नेमिनाथ), **अट्ठावयाई**=अष्टापद विगेरे, **इगदिसि** =अग्यारहवें, **सुदिट्ठि सम्यग्द्रष्टि, चरिमे=अंतिम**

गाथार्थ :- पुनः पांचवें अधिकार में तीन भुवन के स्थापना जिनको वंदना की है । छट्ठे अधिकार में विहरमान जिनेश्वरों को वंदना की है। सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान को वंदना की है । आठवें अधिकार में सर्व सिध्ध भगवन्तों की स्तुति है । नौवें अधिकार में वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री वीरजिनेश्वर की स्तुति है । दसवें अधिकार में गिरनारकी स्तुति है । अग्यारहवें अधिकार में अष्टापद आदि तीर्थों की स्तुति है। और बारहवें अधिकार में सम्यग्द्दष्टि देवों का स्मरण किया गया है । (इनकी स्तुति नही) ॥४४॥ ॥४५॥

विशेषार्थ :- सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं से ठामि काउस्सग्गं पर्यन्त और उसके उपरान्त दूसरी स्तुति तक में भी ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक इन तीन लोक में स्थित (चैत्यो) प्रतिमाजी को वंदना रुप पांचवां अधिकार है ॥इति पंचमाधिकारः॥

छट्ठा अधिकार पुक्खरवरदी की प्रथम गाथा में है, जिसमें ढाई द्वीप में स्थित पांच महाविदेह की १६० विजयों में से २० विजय पैकी प्रत्येक विजय में एक एक

तीर्थंकर वर्तमान कालमें भी अपनी पवित्र देशनासे वहाँ के भव्य प्राणिओं पर उपकार करते हुए विचरण करते हैं । इसलिए वर्तमान कालमें २० विहरमान तीर्थंकर कहे जाते हैं। उनको वंदना की है ।॥ इति षष्टाधिकारः ॥

श्रुतवंदना रुप सातवां अधिकार पुक्खरवर की दूसरी, तीसरी और चौथी गाथामें है । उसके सिवाय "सुअस्स भगवओ अरिहंत चेइयाणं" से लेकर यावत् तीसरी स्तुति कहीजाती है। वहाँ तक सातवें अधिकार में आता है। ॥इति सप्तमाधिकार॥

इसके बाद सिध्धाणं की प्रथम गाथामें सिध्ध भगवन्तो की स्तुति होने से सिध्धस्तुति नामका ८ वां अधिकार कहलाता है। ॥ इति अष्टमाधिकार॥

इसके बाद सिध्धाणंकी दूसरी व तीसरी इन दो गाथाओं में वर्तमान शासन अधिपति और आसन्न उपकारी अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु की स्तुति है । जिससे इन दो गाथाओं में वीरस्तुति नामक नौंवा अधिकार है ।॥ इति नवमाधिकार॥

तत्पश्चात् उज्जिंत सेल सिहरे इस पदवाली सिध्धाणं की ४ थी गाथामें जिनके दीक्षादि तीन कल्याणक गिरनार पर्वत पर हुए हैं ऐसे श्री नेमिनाथ प्रभुकी स्तुति रुप १० वाँ अधिकार है ।॥ इतिदशमोऽधिकारः॥

तत्पश्चात् सिध्धाणंकी अंतिम गाथा में अष्टापद तीर्थकी तथा [1]भिन्न संख्यावाले जिनेश्वरों की स्तुतिरुप ११वाँ अधिकार है ॥इति एका दशमोऽधिकार॥

---

१. यहाँ ११वें अधिकार में भिन्न भिन्न संख्याओं द्धारा जिनेश्वरों के तीर्थादि को की हुई वंदना, संक्षेपमें इस प्रकार है ।

(४+८+१०+२=२४) इस प्रकार २४ तीर्थंकरों के बिंब भरत चक्रीने अष्टापद पर्वत के ऊपर भरवाये हैं, जिससे इस तीर्थ के २४ जिनेश्वरों को वंदना हुई । इस गाथा में मुख्य वंदना अष्टापद तीर्थ को की गयी है ।

इस प्रकार सिध्धाणं बुद्धाणं में (सिध्धास्तव दंडक में) ८-९-१०-११ इन चार अधिकारों की तीन गाथाएँ श्री गणधर [1]कृत है । और प्राचीन काल में चैत्यवंदन के अंतमें स्तुति तरीके इन्हीं ३ [2]गाथाओं को बोलते थे। इसके बाद के दो अधिकारों की दो गाथाएँ गीतार्थ महापुरुषोने चैत्यवंदन के संबंध संयुक्त में की है ।

तथा ४ह्र८=३२ और १०ह्र२=२० अतः ३२+२०=५२, बावन चैत्य वाले नंदीश्वरतीर्थ को वंदना हुई । तथा चत्त= त्याग किया है अरि = अंतरंग शत्रु (कषाय) जिसने ऐसे (८+१०+२)=२० तीर्थंकर सम्मेतशिखरगिरि ऊपर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, सम्मेतशिखर को वंदना हुई । अथवा उत्कृष्ट से समकाल में जन्म लेने वाले २० तीर्थंकरों को वंदना हुई, या वर्तमान काल में विचरण करते २० विहरमान जिन को वंदना हुई । तथा २० को ४ से भाग देने पर पांच आते हैं, उसे अट्ठ दस याने १८ में जोड़ने से १८+५=२३ तीर्थंकर शत्रुंजयगिरि ऊपर समवसरे (पधारे) हुए थे अतः शत्रुंजयगिरि को वंदना हुई । तथा (८ह्र१०=८०ह्र२=१६०) १६० तीर्थंकर (उत्कृष्ट से महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं, उनको वंदना हुई । तथा (८+१०=१८ह्र४=७२) भरत क्षेत्र की तीन चोवीसी और ऐरावत क्षेत्र के तीन चौवीसी के (२४ह्र३=७२) तीर्थंकरों को वंदना हुई । (४+८=१२ह्र१०=१२०ह्र२=२४० तीर्थंकर, इस संख्या द्वारा ५ भरत व ५ ऐरावत क्षेत्र की कुल १० चौवीसी के तीर्थंकरों को वंदना हुई । तथा ८ व १० की संख्या का वर्ग करें (८ह्र८=६४, १०ह्र१०=१०० ६४+१००+४+२=१७० होते हैं, इस संख्या के द्वारा उत्कृष्ट पणे अढीद्वीप में विचरण करने वाले १७० तीर्थंकरों को वंदना हुई । चत्तारि = अनुत्तर ग्रैवेयक कल्प और ज्योतिषी इन ४ देवलोक में, अट्ठ याने ८ व्यंतर की कायके, दस याने १० भवनपतिमें और दोय याने अधोलोक तिर्च्छालोक, इन दो प्रकार के मनुष्य लोक में शाश्वत और अशाश्वत दोनो प्रकार की प्रतिमाओं को अर्थात् तीनों लोक के जिन प्रतिमाओं को वंदना हुई । इस गाथा की वृत्ति में इससे भी विशेष अर्थ कहा गया है । (जिज्ञासु वर्ग वहाँ से जाने)

१. श्री धर्मसंग्रह वृत्ति ।

२. प्रथम दर्शायेगये ९ प्रकार के चैत्यवंदन में छट्ठे भेदके विषय में ये तीन स्तुतियाँ कही जाती हैं ।

इसके बाद वैयावच्चगराणं से लेकर संपूर्ण अन्नत्थ और इसके उपरान्त एक नवकार के काउस्सग्ग के अंतमें कही जानेवाली चोथी स्तुति तक का पाठ सम्यग्दृष्टि देवों के (वंदना के लिए नही) स्मरण के लिए और उनके काउस्सग्ग के विषय में है। ये सभी बारहवें अधिकार में आता है । इति ।। द्वादशमोऽधिकार।।

१. अर्थात् ये ९ अधिकार सूत्र सम्मत है, इसलिये चैत्यवंदना के ९ अधिकार वाले नमुत्थुणं आदि चैत्यवंदन सूत्रों की वृत्ति श्री हरिभद्रसूरि ने रची है। उस चैत्यवंदन वृत्तिका नाम ललित विस्तरा है । वहाँ सिध्धाणं की प्रथम तीन गाथा की वृत्ति के अन्तमें **"एताः तिस्र स्तुतयो नियमेनोच्यन्ते, केचित्तु, अन्या अपि पठन्ति न च तत्र नियम इति न तद्व्याख्यान क्रिया"** (सिद्धाणं की तीन स्तुतियाँ - तीन गाथाएँ) नियम के आधार से अवश्य कही जाती है, इसलिए उनकी व्याख्या की है, और कितनेक आचार्य तो इन ३ के उपरान्त दूसरी (दो) स्तुतियाँ (उज्जितादि) कहते हैं । लेकिन इन दो स्तुतिओं को कहना ही चाहिये ऐसा नियम नही है । (इसलिए इनकी व्याख्या यहाँ पर नही की है) इस प्रकार कहा गया है, जिससे समज मे आजाता है कि ललित विस्तरा में व्याख्या कीये गये ९ अधिकार भी अवश्य पढ़ने योग्य हैं । वर्ना ऐसी व्याख्या नही करते ।

तथा शासन देवी-देवीकी चौथी स्तुति का १२ वां अधिकार भी वैयावच्च गराणं आदि सूत्रसे व्याख्या कीया गया होने से चौथी स्तुति भी अवश्य बोलने योग्य हुई । जिससे "तीन स्तुतिकी चैत्यवंदना कहना और ४ स्तुति अर्वाचीन - नयी है।" इस प्रकार श्री पंचाशकजी की वृत्तिमें श्री अभयदेव सूरिजी ने अन्थ आचार्यो के मतान्तर से ये बात कही है, उसका आलंबन लेकर चौथी स्तुति चैत्यवंदना में नही कहना इस प्रकार की प्ररुपणा करना उत्सूत्र प्ररुपणा है ।

नव अहिगारा इह ललियवित्थरावित्तिमाइ अणुसारा ।
तिन्नि सुअपरंपरया बीओ दसमो इगारसमो ॥ ४६ ॥

गाथार्थ :- यहाँ ९ अधिकार श्री ललित विस्तारा नामकी वृत्ति के अनुसार हैं। और दूसरा, दसवाँ और अग्यारवामें ये तीन अधिकार श्रुतपरंपरा से चले आरहे हैं ।

विशेषार्थ :- नमुत्थुणं में 'जेअ अइया सिध्धा' वाली एक गाथारुप दूसरा अधिकार और सिध्धाणं की चौथी व पाँचवी गाथारूप १० वाँ व ११वाँ ये तीन अधिकार श्रुत परंपरा अर्थात् गीतार्थ पूर्वाचार्यो के संप्रदाय से हैं । अथवा श्रुत सूत्र से तथा उस सूत्रकी निर्युक्ति उसके भाण्य व चूर्णि से इस प्रकार श्रुत की परंपरा से (सुत्रादि पंचागी की परंपरा से) कहेजाते हैं। जैसे कि सूत्र में चैत्यवंदना पुक्खरवरदी तक कही गयी है । और नियुक्ति में पुक्खरवरदी उपरान्त एक सिध्धस्तुति (सिध्धाणं की एक गाथा) तक कही गयी है, और चूर्णि में चैत्यवंदना सिध्धाणं की ३ गीथा (महावीर प्रभु की स्तुति) तक कही गयी है । और शेष उज्जयंतादि अधिकार यथेच्छासे कहने योग्य है । ये बात आगे की गाथा में कही जायेगी । शेष ९ अधिकार सूत्र को 'आधार मानकर कहे गये है । कारण कि ललित विस्तार वृत्ति में ९ अधिकार अवश्य - पढने योग्य कहे गये हैं।

और शेष तीन अधिकार नियमसे पढ़ने योग्य न होने से इन ३ अधिकारों की व्याख्या नही करते हैं, इस प्रकार कहा है, लेकिन ये तीन अधिकार पूर्वाचार्यकृत निर्युक्ति और चूर्णि में कहे गये हैं । अतः श्रुत परंपरा से कहे जाते हैं ।

अवतरण :- ९ अधिकार सिवाय के तीन अधिकार (जहेच्छाए) वंदन करनेवाले की इच्छाके अनुसार कहे हैं, ये बात शास्त्र विरुद्ध नही है लेकिन शास्त्रकी सम्मतिपूर्वक ही है । इस प्रकार दर्शाने के लिए भाष्यकर्ता उन तीन अधिकारों के विषय में शास्त्र का पूरावा दर्शाते है ।

आवस्सय चुण्णीए, जं भणियं सेसया जहिच्छाए ।
तेणं उज्जिताइवि, अहिगारा सुअमया चेव ॥४७॥

अन्वयः-आवस्सय चुन्नीए जं भणियं - सेसया जहिच्छाए तेणं -उज्जिताइवि अहिगारा सुय - मया चेव ॥४७॥

शब्दार्थ :- आवस्सय =आवश्यक, चुण्णी=चूर्णि में प्राकृत भाषामय - प्राचीन टीका, आवस्सय चुण्णीए = आवश्यक चूर्णि में, जं = जो, भणियं = कहा है, सेसया = शेष, जहिच्छाए = ईच्छापूर्वक, सुयमया=शास्त्रमय, शास्त्रआज्ञा के अनुसार

गाथार्थ :- आवश्यक सूत्र की चूर्णिमें कहा है कि "शेष अधिकारों को स्वेच्छापूर्वक करने के लिए समजना" जिससे "उज्जित सेल" - विगेरे अधिकार भी श्रुत सम्मत हैं । ॥४७॥

विशेषार्थ :- श्रुतमय = आज्ञासिद्ध, शास्त्रसम्मत

बीओ सुयत्थया - ऽऽई, अत्थओ वन्निओ तहिं चेव ।
सक्क - थयंते पढिओ दव्वा -ऽरिह ऽवसरि पयडत्थो ॥४८॥

(**अन्वयः** - बीओ तहिं चेव सुयत्थयाइ अत्थओ वण्णिओ दव्वा - रिह - ऽ वसरि सक्कत्थयंते पयडत्थो पढिओ ॥४८॥

शब्दार्थ :- बीओ = दूसरा, सुयत्थया ऽऽइ = श्रुतस्तव की आदि में, अत्थओ = अर्थसे, वण्णिओ = वर्णन किया है , तहिं = उसमें, चेव = पर, सक्क थयंते = शक्रस्तव के अंतमें, पढिओ = कहा है , दव्वाऽरिहवसरि = द्रव्य अरिहंतके प्रसंग पर, पयडत्यो = साक्षात् शब्दों से, प्रगट अर्थसे

गाथार्थ :- दूसरों भी वहीं (आवश्यक चूर्णिमें) पर श्रुतस्तव के प्रारंभमें अर्थसे कहा है । शक्रस्तव के बादमें द्रव्य अरिहंत की स्तवना प्रसंग पर साक्षात् शब्दों से है । उच्चारा है (बोला है) ॥४८॥

विशेषार्थ :- नमुत्थुणं में भाव अरिहंतों का अधिकार है, उसके बाद जे अ अईया में द्रव्य अरिहंतो का अधिकार है, जिससे वो वहाँ योग्य स्थान पर ही हैं । मात्र स्थान बदलता है वस्तु नही, इसलिए वह भी श्रुतसम्मत ही है ।

निर्दोष पुरुषों द्वारा आचरण में लायी हुई निर्दोष आचरणा के प्रमाण

"अ-सढा-ऽऽ इण्ण-ऽणवज्जं गीय-ऽ त्थ-अ वारयं" ति मज्झत्था।
"आयरणावि हु आणं त्ति वयणओ सु-बहु मण्णंति ॥ ४९॥"

(**अन्वयः** असढा ऽऽ इण्ण णवज्जं गीयत्थ अ-वारयंति । "आयरणा विहु आणं" त्ति वयणओ मज्झत्था सु-बहु मण्णंति ॥ ४९॥

शब्दार्थः- अ-सढ = कपट रहित, निर्दोष मनवाले, सरल आइण्ण = अपनाया हुआ, असढाऽऽ इण्ण = निर्दोष, सरल, मनवालों ने अपनाया हुआ, अवद्य = खराब, दोषित, अनवद्य = निर्दोष, गीअ = गीत तीर्थंकर गणधरादि महापुरुषो ने गाया हुआ है । अत्थ=हकीकत, गीअ=ऽत्थ=जिनेश्वरों द्वारा प्ररुपित अर्थ के मर्म को समजनेवाले, (गणधरादि) अ-वारयं, निषेध = न किया हो, ति= इति, मज्झत्था=मध्यस्थ (पक्षपात आवेशया आग्रह विना के) आयरणा = अपनाया हुआ वि = भी, हु = खलु, नक्की, आणा = आज्ञा, त्ति = इस प्रकार की, वयणओ = वचनसे, सु= अच्छी तरह, बहु = खूब, मण्णंति = मानते हैं, मान देते हैं ।

गाथार्थ :- निर्दोष पुरुषों द्वारा आचरित आचरण वह निर्दोष है । ऐसे आचरण का मध्यस्थ गीतार्थ पुरुष निषेध नही करते, लेकिन "ऐसा आचरण भी प्रभुकी आज्ञा ही है ।" इस वचन से मध्यस्थ पुरुष, सम्मान देते हैं ।

विशेषार्थ :- सरल मन वाले आचार्यों के तरफ से छल कपट संभव नही। आचरण अर्थात् शास्त्रमर्यादा, शासनशैली को अनुसरते हुए द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, लोगों की योग्यता, भद्र परणिाम आदि का उचित मूल्यांकन कर अपनाया हुआ या स्वीकार किया गया हो, ऐसे अशठ आचार्यो का आचरण मान्य होना चाहिये । इससे, स्पष्ट होता है कि सरल मनवाले आचार्यो का आचरण भी शास्त्रशैली का अनुसरण करने वाला ही होना चाहिये । वही स्वीकार्य है अन्य नही ।

तथा आचरण निर्दोष होना चाहिये, इसके लिए अनवद्य शब्द का प्रयोग किया है। और कभी कभार किसी कारण से दोषवाले आचरण को अपनाना पड़ा हो, लेकिन ऐसी आचरणा सदैव के लिये अपनायी नहीं जाती, अतः स्पष्ट है आचरण निर्दोष होना चाहिये। मोक्ष मार्ग के अनुकुल होना चाहिये। अनवध विशेषण का प्रयोग भी इसीलिए किया गया है।

तथा शासनशैली को व शास्त्र के मर्म को प्रभु आज्ञारुप स्वीकार करने वाले उस उस काल के गीतार्थ पुरुषोंने जिसका विरोध न किया हो, ऐसे निर्दोष अशठ आचरण को, निष्पक्षपाती और दुराग्रह नही करने वाले मध्यस्थ पुरुष सम्मान देते हैं।

अर्थात् यदि कोई स्वमताग्रही सम्मान नही दे, या अगीतार्थ पुरुषों ने विरोध किया हो, इस कारण से निर्दोष पुरुषों का आचरण अमान्य नही हो जाता। अतः मध्यस्थ शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि ङ्गआचरण हैङ्ग वहाँ तक जैन शासन विद्यमान रहेगा। वहाँ तक इस प्रकार का परंपरागत निर्दोष आचरण भी जीत व्यवहार रूप परमात्मा की आज्ञा ही है। और जीत व्यवहार शासन के अंत तक चल सकता है।

इस आधार से ङ्गमूल आगम में और, श्रुतमें = शास्त्रों में जो दर्शाया गया है वही मान्य है अन्य नहीङ्ग इस सिध्धांत को हर जगह अपनाने वाले अप्रामाणिक लगते हैं। इसी प्रकार शास्त्राज्ञा विरुद्ध और शासनशैली से विरुद्ध ऐसे किसी भी आचरण को द्रव्य क्षेत्र - काल - भाव तथा भावना के विषय में स्वीकार करते हैं, वे भी दूसरी रीत से भूल कर रहे हैं। क्योंकि जिस प्रकार शास्त्र आज्ञा मान्य है वैसे ही परंपरा भी मान्य है। इस प्रकार सकलसंघ व गीतार्थो को मान्य श्रीसंघ का आचरण रूप प्रस्ताव भी शास्त्राज्ञा ही है। पूर्वाचार्यो द्वारा वनाये गये श्रीसंघ के आज्ञाप्रधान नियम और उस समय के श्रीसंघ के प्रस्ताव, सभी मीलकर सुव्यवस्थित शासन बनता है। इस प्रकार का परंपरागत संग्रह भी श्वेताम्बर मू. जैन संघ की परंपरा में संगृहीत है। और शास्त्रों की मूल परंपरा भी उनके पास है। अर्थात् शासन की अविच्छिन परंपरा का संपूर्ण इतिहास उनके पास है, ऐसा साबित होता है।

इसलिए शास्त्र की आज्ञा और पूर्वपरंपरा का आचरण प्रस्ताव विगेरेसे निरपेक्ष होकर, जैन संघ संचालन या आचरण नही कर सकता ङ्गबहुमत से लोग किसी एक विचार के प्रति आकर्षित हुए होंङ्ग, उसे बहुमत प्रधान मानकर संघ के आगेवान, शास्त्राज्ञा या पूर्व के आचरण से विरुद्ध चलें जाथे तो वे संघ व शासन के संचालन को बड़ा नुकसान पहुँचा सकते हैं, इन्ही बातों को ध्यान में रखकर जैन संघ के नियम और संचालन का तरीका गीतार्थ पुरुषों ने दर्शाया है, गीतार्थ पुरुषों के पास में भी आज तक के आचरण और प्रस्तावों का संग्रह होना चाहिये । इसके लिए कल्पसूत्र और निर्युक्ति बिगेरे में पुष्कल प्रमाण हैं ।

संचालन करने वाले उत्तराधिकारी का कर्तव्य है कि, उसे अपना वहीवट पूर्व परंपरा से चले आरहे वहीवट को बिना कारण बदलना नही चाहिये । संचालन कर्ता के मस्तक पर शासन के त्रैकालिक संचालन की जवाबदारी है । गीतार्थ महापुरुषही शासन के मुख्य संचालन करने वाले संचालक थे । आज भी गीतार्थ आचार्य ही शासन के, मुख्य संचालन करनेवाले संचालक होने चाहिये । श्रावक हिसाब किताब अवश्य संभालें लेकिन शासन का संपूर्ण संचालन गीतार्थ आचार्य भगवन्तो के हाथ में होना चाहिये । इसमें श्रावकों के बहुमत का आधार नही चलेगा । बहुमती एकमती, सर्वमती या सत्यमती, सभी जिनेश्वर प्रभु की आज्ञा का पालन करने वाले शास्त्रोक्त, परंपरागत गीतार्थ पुरुषों की आज्ञा तुल्य, आज्ञामत के अनुसार होना चाहिये । व्यक्ति को अपने निजि कारण के अलावा व्यक्तिगत मत देने का अधिकार नही हैं । यदि संस्था के संचालन तरीके मत देना हो तो संस्था के प्रति वफादार और उसके हित व पुष्ट करने की जवाबदारी समजकर उसके अनुरुप मत देने का अधिकार है। अन्यथा नही ।

किसी मुख्य कारण से किसी कार्य प्रसंग को लेकर गीतार्थ पुरुष कोई आचरण करते हैं कि जिसमें हानि कम और लाभ अधिक हो, तो ऐसा आचरण सर्व को मान्य होना चाहिये । जिसमें लाभ का अंशमात्र न हो ऐसे आचरण का पालन नही करना चाहिये । उसकी बराबर परीक्षा करनी चाहिये ।

संविज्ञ :- विधि में रसिक, गीतार्थ, श्रेष्ठ पूर्व सूरिवर (आचार्य भगवन्त) सूत्र विरुद्ध समाचारी की प्ररुपणा नही करते हैं ।

तथा किसी समय कोई वस्तु बहुत प्रचलित हो गई हो, लेकिन उस विषय का शास्त्र में कही उल्लेख नही मिला हो, तथा उसका निषेध भी न किया हो । ऐसी स्थितिमें गीतार्थ मौन रहते हैं ।

लेकिन कितनिक नयी बातें ऐसी भी होती है कि जिसका साक्षात् शब्द से विधान न हो, और नही निषेध हो, फिरभी शैली, तत्त्व और हित, मर्यादा के विरुद्ध हो, वैसी ख्याति प्राप्त वस्तु का भी गीतार्थ निषेध कर सकते हैं ।

ये विषय अति गहन है, समजने के लायक है, क्योंकि आजकल नयी नयी संस्थाएँ और नये नये विचारों के आंदोलक, संघ जैसी पवित्र मूल संस्था को और आज्ञा को दबाने का भरचक प्रयत्न कर रहे हैं । ऐसी संस्थाओं को और विचारकों को, पूर्वापर के नियम मानने वाले, तथा शास्त्र की आज्ञा को शिरसावंद्य माननेवाले भी बहुत सी बार गुमराह होकर उसे सहारा दे देते हैं । अतः इस विषय में विशेष मन्थन करने की आवश्यकता है ।

१३ : वंदन करने योग्य १४ : स्मरण करने योग्य
१५ : चार प्रकार के जिनेश्वर

चउ वंदणिज्ज जिण-मुणि-सुय-सिध्धा,इह सुरा य सरणिज्जा ।
चउह जिणा नाम - ठवण - दव्व - भाव - जिणभेएणं ॥५०॥

(**अन्वय :-** जिण-मुणि - सुय - सिध्धा चउ वंदणिज्ज, इह सुरा सरणिज्जा नाम, ठवण, दव्व - भाव - जिण - भेएण चउह जिणा ॥५०॥

शब्दार्थ :- चउ=चार, वंदणिज्ज=वंदन करने योग्य, जिण-मुणि-सुय- सिध्धा = जिनेश्वर, मुनि, श्रुत और सिध्ध भगवन्त, इह = यहाँ, चैत्यवंदनमें, सुरा = देव, सरणिज्जा = स्मरण करने योग्य, चउह = चार प्रकार के, जिणा = जिनेश्वर, नाम = नाम, ठवण = स्थापना, दव्व = द्रव्य, भाव = भाव, जिणभेएणं = जिनेश्वरों के भेदोंको लेकर।

गाथार्थ :- जिन,मुनि,श्रुत और सिद्ध ये चार वंदन करने योग्य हैं । और यहाँ पर देव स्मरण करने योग्य हैं ।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये जिनेश्वरों के भेंदो को लेकर चार प्रकार के जिनेश्वर हैं ।

विशेषार्थ :- नाम - स्थापनादि चारों प्रकार के जिनेश्वर वंदनीय है। फिर भी श्रुतस्तव में श्रुतज्ञान को, सिद्धाणं में सिद्ध भगवन्तो को, जावंत के वि साहू में श्रमण मुनिओं को वंदना होती है । याने चैत्यवंदना में वंदन योग्य सर्वको वंदना की गयी है । इस तरह करने से एक रीत से अरिहंत परमात्मा की वंदना पूर्ण होती है ।

तथा सम्यग् दृष्टि देवताओं का यद्यपि चौथा गुणस्थानक है और देशविरतिधरका पाँचवा, सर्वविरतिधरों का छट्ठा व सातवाँ गुणस्थानक है फिरभी शासन भक्ति करनेवाले सम्यग् दृष्टि देव देशविरतिघर और सर्वविरति धरों को स्मरणादि करने योग्य है । कारण कि शासन मे उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को वो दूर करते हैं । चैत्यवंदनादि से प्राप्त होनेवाली इष्ट सिध्धि में आनेवाले विघ्नो को दूर करते हैं । शासन के प्रभावक कार्य करवाने के लिए भी उनका स्मरण रुप कायोत्सर्ग करने में आता है । ऐसा कोई कार्य न भी हो, फिर भी प्रतिक्रमण आदि क्रिया प्रसंग में, चैत्यवंदना में चौथी स्तुति द्धारा विरतिवंत उनका स्मरण करते हैं । ये बात अर्थ शून्य नही है, कारण कि प्रतिक्रमणादि प्रसंग पर प्रतिदिन शासन सेवा के रसिक देवताओं को याद करने से उनका सत्कार होता है ।

सम्यग् दृष्टि देव क्वचित् स्व स्मरण को ध्यान मे न लें, फिर भी मंत्रा-क्षरतुल्य वेयावच्चगराणं - सूत्र के अक्षरों से विघ्नोपशान्ति आदि इष्ट फल सिध्धि कही है । तथा शासन के सेवक होने के कारण उनका सम्यग् दर्शन गुणरुप भी गुण -गुणी के अभेद से बनता है । जिससे उनके स्मरण में दर्शन पद की आराधना सर्वविरतिवंत को भी बाधक नही है । तथा प्रतिक्रमणादि क्रिया सकलसंघ की जाहेर क्रिया है। जिससे श्रीसकल संघ जाहेर प्रसंगों पर अपने अंगभूत तत्वोंको स्मरण में रखता है । इस विषय पर विशेष चिन्तन करने योग्य है ।

***

* परंपरा से शासनदेवकी स्तुति, तुष्टि, पुष्टि तथा स्मरणादिक का हेतु मात्र शासन सेवा ही है । जिससे परंपरासे शासन की ही भक्ति याने रत्नत्रयी की आराधना है।

रत्नत्रयी की आराधना सापेक्ष शासन भक्ति है और शासन के सेवकों की भक्ति स्मरणादिक शासन की आराधना से निरपेक्ष नही होनी चाहिये। यदि शासन से निरपेक्ष अविरत्यदिक की शांति, तुष्टि हो तो वह दोष कारक है अन्यथा लाभकारक है। तथा अधिकारी व्यक्ति से भी अधिकार सभी को पूज्य है। सामान्य केवली, गणधर भगवन्त छद्मस्थ होते हैं फिरभी उनकी आज्ञामें रहते हैं। क्योंकि गणधर भगवन्त तीर्थंकरों की तरह शासन के अधिकार के ऊपर पदस्थ हैं। अर्थात् व्यवित के स्थानपर अधिकार को सम्मान देना है। इसी तरह शासन के अधिष्ठायक देव और देवियाँ इन्द्रादिक देव, नृपति, व संघकी देखरेख करनेवाले, विगेरे पद से विभूषित (अधिकारवाला पद) हों तो उनका औचित्य करना शासन का ही औचित्य है। और आचार्य भगवन्त और मुनिओं जिस तरह अपने त्याग के लिये पूज्य हैं, इसके अलावा शासनका अधिकार भोगनेवाले हैं, इस तरीके से भी वे पूज्य हैं। याने शासनहित साधक तथा प्रकार के द्रव्य क्षेत्र काल भाव के संयोगानुसार अविरति सम्यग्द्रष्टि या मिथ्याद्रष्टि हो और शासन के हितमें उपयोगी हों, तो उनका औचित्य करने के लिए शास्त्राज्ञा अनेक स्थानोपर दिखाई देती है। भूलसे शासन को उपयोगी मान लिया हो या अनौचित्य को उचित समज लिया हो, या अल्पबुद्धि के कारण जिसका औचित्य करने की आवश्यकता न हो और किया हो। या जरूरत से कम - ज्यादा औचित्य किया हो, इस प्रकार की भूलें व्यक्ति द्धारा संभव है। लेकिन ये सारीबातें एकरीत से शासन शैली के आधारसे वास्तविक स्वरूप में जैन शास्त्र सम्मत ज्ञात होता है। इसके लिए अनेक उदाहरण प्राचीनकाल से मिलते आये हैं। अतः सर्व शासन सेवकों के उपलक्षण रूप सुरस्मरण का बारहवाँ अधिकार और उनके लिए की चौथी स्तुति शास्त्राज्ञा सम्मत है। सुरस्मरण के उपलक्षण रूप इसी आधार से कहते हैं कि वेयावच्चगराणं सूत्र में देव-देवी जैसा शब्द नही है, लेकिन सामान्य रीत से ङ्कवैयावृत्य करनेवाले, शांति करनेवाले सम्यग्-दृष्टिको समाधि करनेवाले,ङ्क ऐसे सामान्य शब्दों का प्रयोग है। शासन प्रेमी से भी शासन का वैयावृत्य

यहाँ मुनि विना ३ वंदनीय और १ स्मरणीय ये ४, बारहवें अधिकार में अंतर्गत हो जाते हैं। यथा

१-६-९-१०-११ वां इन पांच अधिकारों में भाव जिनको, ३-५-इन दो अधिकारों में स्थापना जिनको, सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान को, आठवें अधिकार में सिध्ध को, दूसरा में द्रव्य जिन को, और चौथे में नाम जिनको वंदना की गयी है। तथा बारहवें अधिकार में शासन देवताओं का स्मरण किया गया है। इस प्रकार श्री प्रवचन सारोद्धार में कहा है। जिससे १-२-३-४-५-६-९-१०-११ इन ९ अधिकारों में जिनवंदना, सातवें में श्रुतवंदन ८ वें में सिध्धवंदना और १२ वें में देवो का स्मरण है। मुनिवंदन १२ अधिकारों में नही है। जिससे ये १२ अधिकार सम्यग्दर्शन गुण प्रधान ज्ञातव्य होते हैं। लेकिन प्रत्येक चैत्यवंदना में या देववंदन में जावंत केवि होता ही है। प्रतिक्रमणादि में भगवानहं और अड्ढाइज्जेसु भी होता है। याने मुनिवंदन तो जुड़ा हुआ ही है।

करनेवाले की यहाँ प्रधानता है। जिस तरह स्तंभन करने लायक व्यक्ति को मालुम नही होता है, फिरभी स्तंभन विद्या के मंत्रोच्चार से उसका स्तंभन होता है। वैसे ही शासन सेवकों के लिए अज्ञात भावसे भी कायोत्सर्ग किया जाता है, तो भी उसमें शासनसेवा की जागृति उत्पन्न होती है। इस बात का स्पष्टिकरण दर्शाति चूर्णि में निम्न गाथा दी है।

तेसिम-विन्नाणे विहु तव्विस उसग्गओ होइ।
विग्घ-जय-पुन्न-बंधा-ऽऽ इ कारणं मंत-नाएण ॥२॥

अर्थ :- उनको ज्ञात न हो, फिर भी उनसे संबंधित कायोत्सर्ग से फल मिलता है। विघ्नों पर जय, पुण्यबंध विगेरे का कारण मंत्र के द्रष्टांत से जानना।

ललित विस्तारावृत्ति में भी कहा है :- तदपरिक्षानेऽप्यस्माच्छु ये सिध्धया विध्धमेव वचनं क्षापकम्

अर्थ:- उनके मालुम न हो, फिर भी इस (कायोत्सर्ग) से शुभ की सिध्धि में ये (वेयावच्चगराणं) वचन ही ज्ञापक है।

नाम जिणा जिण नामा ठवणजिणा पुण जिणिंदपडिमाओ ।
दव्व-जिणा जिण जीवा भाव-जिणा समवसरणत्था ॥११॥

(**अन्वय :-** नाम-जिणा जिण-नामा, ठवण-जिणा जिणिंद-पडिमाओ दव्व-जिणा जिण जीवा, पुण भाव-जिणा समवसण-त्था)

शब्दार्थ :- नाम- नाम, जिणा - जिनेश्वरो, नाम-जिणा = नाम से जिनेश्वर, ठवण-जिणा = स्थापनासे जिनेश्वर, जिणिंद = जिनेन्द्र, पडिमाओ = प्रतिमा, जिणिंद पडिमाओ = जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ, दव्व = द्रव्य, दव्व-जिणा-द्रव्यसे जिनेश्वर, जिण-जीवा = जिनेश्वर परमात्मा के जीव, भाव-जिणा = भावसे, जिनेश्वर समवसरणत्था = समवसरणमें विराजमान ।

गाथार्थ :- जिनेश्वर प्रभु के नाम, नाम जिनेश्वर, जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा स्थापना जिनेश्वर, जिनेश्वर परमात्मा के जीव द्रव्य जिनेश्वर और समवसरण में विराजमान भाव जिनेश्वर ॥११॥

विशेषार्थ :- श्री जिनेश्वर परमात्मा के नाम भी एक प्रकार के जिनेश्वर ही है, और जिनेश्वर के नाम "नाम-जिन" कहलाते हैं । इसी प्रकार जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमाएँ भी एक प्रकार के जिनेश्वर ही हैं, इन्हें स्थापना - जिन कहते हैं । केवल ज्ञान प्राप्त कर समवसरण में बिराजमान होकर देशना देते हैं, उस समय से तीर्थंकर नामकर्म का रसोदय प्रारंभ होता है, (अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होते ही तीर्थंकर नामकर्म का रसोदय प्रारंभ होता है) वह रसोदय मोक्ष प्राप्ति तक रहता है । उन्हे भाव जिनेश्वर कहा जाता है ।

सारे ही केवलज्ञानी तीर्थंकर नही होते इसलिए समवसरणस्थ विशेषण तीर्थंकरों के लिए दिया गया है । जिनके समवसरण की रचना देवगण करते हैं । तथा जो तीर्थंकर नामकर्म के योग्य बाह्य ऋद्धि अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रतिहार्यो से संपन्न हो ऐसे केवलज्ञानी भगवंतो को भाव जिनेश्वर कहा जाता है ।

भाव जिनेश्वरों की पूर्व अवस्था और भाव जिनेश्वर बाद की सिध्धावस्था में रहेहुए तीर्थंकर भगवन्तो के जीव वे भी एक प्रकार के जिनेश्वर है, और उन्हे द्रव्य-जिन कहा जाता है ।

अर्थात् निकाचित जिननाम कर्म का बंध करने के बाद जहाँ तक केवलज्ञान की प्राप्ति नही होती है, वहाँ तक वो आत्मा द्रव्य तीर्थंकर कहलाती है । तथा भावजिनेश्वर की अवस्था पूर्णहोने के बाद सिध्ध अवस्था में भी वे द्रव्य तीर्थंकर कहलाते हैं । उस समय वो भाव सिध्ध हैं, लेकिन तीर्थंकर तरीके तो वो द्रव्य तीर्थंकर ही है। अर्थात् भाव तीर्थंकर के पूर्व की और बादकी अवस्था उसे द्रव्य कहलाता है ।

जगत् के सर्व पदार्थो को लागु पड़ने वाला इन चार निक्षेपों का तात्विक स्वरूप विस्तार से समजने जैसा है ।

१६. चूलिका रूप चार स्तुतियाँ

अहिगय जिण-पढम-थुई बीया सव्वाण, तइय नाणस्स ।
वैयावच्च-गराणं उवओगत्थं चउत्थ-थुइ ॥५२ ॥

(**अन्वय** :- अहिगय - जिण - पढम थुई, सव्वाण बीया, नाणस्स तइया वैयावच्चगराणं, उवओगत्थं चउत्थ - थुई ॥५२॥

शब्दार्थ : अहिगय अधिकृत, मुख्य एक-मूलनायक, पढम थुई-प्रथम स्तुति, बिया -दूसरी सव्वाण-सर्व जिनो का, तइय नाणस्स-तीसरी ज्ञानकी, वैयावच्चगराणं - वैयावच्च करनेवाले, उवओगत्थं-उपयोग के लिए, जागृति के लिए, चउत्थ चोथी, थुई-स्तुति

गाथार्थ :-अधिकृत जिनकी प्रथम, सर्व जिनेश्वरों की दूसरी, ज्ञान की तिसरी तथा वेयावच्च करने वाले देवों के उपयोग के लिए (तथा स्मरणार्थे) चोथी स्तुति है ।

विशेषार्थ :- देववंदन में कितनीक बार ४ स्तुतियाँ और कितनीक बार ८ स्तुतियाँ बोली जाती है । चार स्तुति से देववंदन करते हैं तब एक स्तुति जोड़ा और आठ स्तुति से करते हैं तब दो स्तुति जोड़े कहे जाते हैं। चार स्तुतियों में प्रथम की

तीन स्तुतियों को वंदना स्तुति कहा जाता है । अंतिम चोथी स्तुति को अनुशास्ति स्तुति कही जाती है। उन दो का युगल मिलके चार स्तुति होती है । आठ स्तुति में ऐसे दो युगल (जोड़े) होते हैं ।

स्तुति युगल में प्रथम स्तुति मुख्य तीर्थंकर प्रभुकी, तीर्थ या ज्ञानादिगुण के प्रधानता वाली होती है । और दूसरी स्तुति में सर्व तीर्थंकरों की प्रधानता होती है । तीसरी स्तुति में ज्ञानकी प्रधानता होती है और चौथी स्तुति शासन देव को जागृत करने की होती है ।

अब नमुत्थुणं लोगस्स पुक्खरवरदी वेयावच्चगराणंमें स्तुति और काउस्सग्गसे चारोंही स्तुतियाँ होती है । फिरभी अंतमें काव्यमय वाणी से उन सभीकी स्तुति कर ली जाती है। इसलिए उनका नाम चूलिका परिशिष्ट रूप स्तुति कहाजाता है ।

प्रथम स्तुति नमुत्थुणं के बाद अरिहंत चेइआणं के काउस्सग्ग के बाद बोली जाती है। दूसरी स्तुति **सव्वलोए अरिहंत चेइआणं** के बाद, तीसरी स्तुति, **सुअस्स भगवओ अरिहंत चेइआणं** के बाद और चौथी स्तुति **वेयावच्चगराणं अन्नत्थ** के बाद काउस्सग्ग पारकर बोली जाती है । अर्थात् उस उस अधिकारकी चूलिका रूप है । **कल्लाणकंद** में पांच जिनेश्वरों और **संसारदावा** में श्री महावीरस्वामी मुख्य है । इन द्रष्टान्तों को समज लेना चाहिये । **श्री जगच्चंद्रसूरीश्वरजी** महाराज के मुख्य शिष्य **श्री देवेन्द्र सूरि** विगेरे, तपागच्छ के मुख्य आचार्यो इन चारों ही स्तुतिओं को मान्य की है । इस प्रकार उनके ग्रंथ ओरसे इस बात की पुष्टि होती है।

काव्यमय स्तुति - छोटे-बड़े वृद्धादि सभी को ग्राह्य होती है । सूत्रात्मक स्तुति तो जैनशास्त्रज्ञ और शासन के मर्म को समजने वाले को ही ग्राह्य होती है । कायोत्सर्गरुप स्तुति तो भावस्तुति होने के कारण मानसिक और योगशास्त्रज्ञ गम्य है । जबकि काव्यमय चूलिका स्तुति सर्वमान्य और सम्यग् दर्शन प्रभावना रूप तथा व्यक्तिगत - स्तुति करनेवाले के मनोगत भाव को व्यक्त करनेवाली स्वतंत्र स्तुति है। अन्य दर्शन वाले भी इस स्तुति से संक्षिप्त स्तोतव्यका स्वरुप समज सकते

हैं। तथा व्यक्तिगत स्तुति होने से संपूर्ण चैत्यवंदना स्तुति करनेवाले की व्यक्तिगत होती है । लेकिन एक व्यक्ति चैत्यवंदन करता हो तो उसकी और सामुहिक चैत्यवंदना करते हों तो उनकी बन जाती है ।

इसलिए ये चारों ही स्तुतियाँ शासन प्रभावना रूप भी है । किसी भी एक तीर्थंकर की स्तुति के ऊपर से परमात्मा के गुण प्रगट होते हैं । सर्व तीर्थंकरों की स्तुतिसे ङ्घशासन चौवीसों ही तीर्थंकरों का चला आ रहा हैं ।ङ्घ इस प्रकार ज्ञात होता है ।

तीसरी स्तुतिमें जैन प्रवचन की महीमा प्रगट होती है । और चौथी में ङ्घइन्द्रादिक देव शासन के सेवक हैं,ङ्घ और उनके प्रभाव से शासन प्रभावशाली है, ऐसा ज्ञात होता है ।

तथा व्यक्तिगत स्वरचना की स्तुतियाँ भी बोलीजाती है जिसमें स्व उमंग भी प्रगट किया जा सकता है । लेकिन सर्वजीव शैली के ज्ञाता न होने के कारण पूर्वाचार्यादि विशिष्ट ज्ञानीओं के द्धारा रची हुई स्तुतियाँ बोलना ही योग्य लगता है। स्तवनादि की तरह स्तुतियों भी अनेक गीतार्थ आचार्यों द्धारा रची हुई पुष्कल प्रमाण में प्राप्त हो सकती है । अतः स्तुति युगल ये जाहेर में शासन प्रभावक अंग तरीके चैत्यवंदन में समाया हुआ है । स्तुतियों भी अनेक काव्य चमत्कार शब्दालंकार अर्थालंकार चित्र, काव्य विगेरे से परिपूर्ण और सर्वग्राही रूप में होती है । इस तरह चैत्यवंदना एक जाहेर और प्रसिद्ध सर्व सामान्य और मान्य जैन संघका विधान है।

१७ आठ निमित्त

पाव-खवण-त्थ इरिया-SSइ वंदणव्वत्तिया-SSइ छ निमित्ता।

पवयण-सुर-सरण-Sत्थं, उस्सग्गो इय निमित्त-Sट्ठ ॥५३॥

(**अन्वय** -पावखवणत्थ इरियाइ, वंदण-वत्तिया-SSइ छ निमित्ता ।

पवयण - सुर सरणत्थं, उस्सग्गो इय निमित्त - Sट्ठ ॥५३॥

शब्दार्थ :- पाव - खवणत्थ = पापों का क्षय करने के लिए, इरियाइ =इरिया वहियाका, वंदन - वत्तियाइ - छ - निमित्ता = वंदण वत्तिया विगेरे छ निमित्तों का, पवयण - सुर सरणत्थं = प्रवचन सुर - शासन देवों के स्मरण के लिए, उस्सग्गो-कायोत्सर्ग करना, इय=इस तरह, निमित्त=निमित्त, अट्ठा = आठ

गाथार्थ :-पापों का क्षय करने के लिए इरियावहिया प्रतिक्रमणका, वंदन - वत्तिया विगेर छ निमित्तों का, और शासन देव के स्मरणं के लिए काउस्सग्ग करना, इस प्रकार आठ निमित्त हैं ।

विशेषार्थ:-चैत्यवंदना से पूर्व इरियावहिया प्रतिक्रमना होता है, तथा एक **लोगस्स** का कायोत्सर्ग किया जाता है। जिसका कारण चैत्यवंदना से पूर्व मन, वचन, काया की शुद्धि की जाती है। **'पावाणं कम्माणं निग्घायण-ट्ठाए'** इससे पाप कर्मोके क्षयके लिए कायोत्सर्ग होता है, तथा **वंदण वत्तिआए से निरुवसग्गवत्तिआए** तक के छ निमित्तों से उसके बाद का कायोत्सर्ग होता है। याने कि द्रव्यपूजा से मिलने वाला फल कायोत्सर्ग आदि अभ्यंतर तपसे भी प्राप्त हो सकता है। उसी तरह कितनीक बार अभ्यंतर तपसे प्राप्त होने वाला फल बाह्य तपसे या द्रव्य चारित्र से भी प्राप्त हो सकता है । मात्र गौण मुख्य भाव कारण रुप होते हैं। द्रव्य भाव सहित आदरणीय है। और भाव द्रव्य सहित आदरणीय है। अध्यवसाय और मन वचन, कायाके योगकी विचित्र- विचित्र योजना तथा तीनरत्न की आराधना से संबंधित विविध योग प्रक्रियाओं के स्वरूप की जानकारी से ये विषय अति स्पष्ट हो सकता.हैं।

याने कि कायोत्सर्ग द्वारा भी छ प्रवृतियों का फल मिलता है। तथा कायोत्सर्ग के ध्यान बल से शासन के अधिष्ठायक देवों में भी जागृति आ जाती है। क्योंकि मानसिक और आत्मिक अनुष्ठानों का बल अधिक होता है।

वंदन:- स्मरण - स्तुति - और नमस्कार द्वारा मन वचन और कायकी शुभ प्रवृत्ति उसे वंदन कहते हैं ।

पूजन:- पुष्पादिक द्वारा पूजा - उसे पूजन कहते हैं।

सत्कार:- वस्त्रादिक द्वारा बहुमान वह सत्कार ।

सन्मानः- मनकी प्रीत से विनयोपचार वह सन्मान ।

बोधिलाभः- मुत्यु के बादमें जैन धर्म की प्राप्ति हो - वैसी भावसाधना उसे बोधिलाभ कहते हैं ।

निरुपसर्गः- निर्वाण की प्राप्ति वह निरुपसर्ग ।

इस प्रकार तथा प्रकार की द्रव्य सामग्री के त्यागी मुनि भगवन्तों को मुख्यता से भाव पूजा होती है। फिरभी कायोत्सर्गादि के द्धारा द्रव्यपूजा के फल की प्राप्ति की क्रिया मुनिभाव से विरुद्ध नही है। उनके पास द्रव्य का अभाव है, इसलिए वे गृहस्थों की तरह द्रव्यपूजा नही कर सकते । उस प्रकार करने से उनके त्याग में अनेक बाधाएँ आती है , फिरभी जिनालय जाना, वंदन, नमस्कार, स्तुति, द्रव्यपूजा का उपदेश, प्रभु के स्नात्रादि महोत्सव में जाना प्रभुका वरघोड़ा, पूजा पढाना, प्रतिष्ठा विगेरे में वासक्षेप से पूजा करना आदि अनेक रूप में द्रव्य पूजा का समावेश होता है। मात्र प्रकार भेद है ।

यदि मुनि भगवंतो को मात्र भाव पूजा का ही अधिकार होता तो उपाश्रय में बैठ ध्यानद्धारा भावपूजा करते, लेकिन उपरोक्त विधानों में वो भाग नही लेते । जिस प्रकार गुरुका - द्रव्य व भाव दोनों प्रकार का विनय किया जाता है। अंतरंग भक्तिद्धारा भाव विनय और सेवा - सुश्रुषा व आहारादिक और वैयावृत्थ द्धारा द्रव्य विनय होता है। उसी तरह तीर्थंकर परमात्मा का द्रव्य विनय मुनि भगवंतों के द्धारा मर्यादा के अनुसार किया जाना शास्त्र सम्मत ज्ञात होता है। वे द्रव्य पूजा का उपदेश दे सकते हैं। प्रेरणा दे सकते हैं । उसमें जोड़ सकते हैं। उसका विधान कर सकते हैं । पूजा परत्वे (द्रव्य पूजा परत्वे) विधिविधान समजा सकते हैं। इसलिए अनुमति भी द्रव्य पूजा है । द्रव्य पूजा के उपकरण रहित द्रव्य पूजा मुनिभगवन्तों को भी होती है । इस प्रकार सूक्ष्मद्रष्टि से समजना । उचित मर्यादा के अनुसार करनी हो और न करे तो प्रायश्चित लेने पड़ते हैं। मुनिओं को भी देव आत्मोत्कर्ष में प्रबल और मुख्य निमित्त होते हैं। देव के बिना धर्म या शासन नही हैं । शासन देवों को उत्साहित करने के लिए कायोत्सर्ग एक मुख्य निमित्त है। और चैत्यवंदन करनेवाला

प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार जागृति रखा करे तो संघ का कल्याण होता है व संघ का बल बढ़ता है। और प्रत्येक व्यक्ति ने शासन के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति व्यक्त की ऐसा कहा जा सकता है। जिससे देवों का स्मरण और जिन शासन की आराधना होती है।

१८ कायोत्सर्ग करने के हेतु कारण-साधन

चउ "तस्स उत्तरीकरण" पमुह "सद्धा-ऽऽ इया" य पण हेउ।
"वेयावच्चगरत्ता-ऽऽइ" तिन्नि, इय हेउ-बारसगं ॥५४॥

(**अन्वयः**-तस्स उत्तरीकरण पमुह **चउ** सद्धाइ इया पण वेयावच्चगरत्ता-ऽऽइ तिन्नि, हेऊ इय हेउ-बारसगं ॥५४॥)

शब्दार्थः-पमुह=विगेरे, **पण**=पांच, **हेऊ**=प्रयोजन, वेयावच्चगरत्ता ऽऽइ = वेयावच्च करना विगेरे, **इअ** = ये, इस तरह, **बारसगं** = बारह का समूह, **हेउ बारस** = बारह हेतु

गाथार्थः- "तस्स उत्तरी करण" विगेरे चार "श्रद्धा" विगेरे पांच और वेयावच्च करना विगेरे तीन, इस प्रकार बारह कारण-साधन हैं।

विशेषार्थः- आठ निमित्तों में कायोत्सर्ग के आठ प्रयोजन (उद्देश्य) दर्शाये हैं और इन बारह हेतुओं में बारह कारण दर्शाये हैं। कार्य करने का उद्देश प्रयोजन दर्शाता है और कार्य उत्पन्न होने में सहायक साधन, उसे हेतु - कारण विगेरे कहा जाता है।

कार में बैठकर शिघ्र पुष्प लेने के लिए जाता है। "पुष्प के लिए शिघ्र जाना" ये जाने का उद्देश्य है और "कार" ये जाने का साधन है।

इसी तरह **इरियावहिया** प्रतिक्रमण के काउस्सग्ग का उद्देश्य पापों का क्षय करना है, लेकिन किस तरीके की सामग्री से इरियावहिया प्रतिक्रमा जाय तो पापों का क्षय हो सकता है ? ये मुख्य बात है।

इरियावहियं के बाद मिच्छामिदुक्कडं देकर आलोचना प्रतिक्रमण करने के बाद.........

१. उसकी उत्तर (बादकी) क्रियारुप - काउस्सग्ग प्रायश्चित करने के द्वारा याने कायोत्सर्ग ये प्रतिक्रमण की उत्तर क्रिया है (१० प्रायश्चित्तो में कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त की बादकी याने उत्तर क्रिया में है)

२. ये उत्तर क्रिया भी जैसे वैसे करने की नही है, लेकिन प्रायश्चित पापकी शुद्धि के लिए करना है, इसलिए प्रायश्चित करने की भावना होनी चाहिये।

३. प्रायश्चित्त करने का हेतु आत्म-शुध्धि है। यदि शुध्धि न हो तो प्रायश्चित्त करने से क्या लाभ?

४. और शुध्धि भी माया, मिथ्यात्व और निदान, इन तीन शल्यों से आत्माको रहित करने के लिए है। यदि ये तीनों नही जाते हैं तो आत्म - विशुध्धि संभव नही।

ये चार हेतुओं तथा वंदनादिक फल प्राप्त करने के उद्देश्य से कायोत्सर्ग करने में आवे, लेकिन वह कायोत्सर्ग यथायोग्य साधन सामग्री के अभाव में किया जाय तो क्या उद्देश्य की सिध्धि किस तरह से हो सकती है ? इसके लिए श्रध्धा विगेरे पांच साधन साथमें अपनाना चाहियें।

५. श्रध्धा-दूसरों की प्रेरणा के विना बढ़ती हुई सम्यग् - दर्शनकी शुध्धि द्वारा

६. और उसके द्वारा बढ़ती हुई मेधा, अर्थात् देखा देखी या मूढता के विना हेयोपादेय बुध्धि, अथवा परमात्मा की आज्ञानुसार मर्यादावाली बुध्धि से

७. और इस प्रकार की बुध्धि से बढ़ती हुई धृति (धैर्यता) से अर्थात् रागादिसे आकुलव्याकुल हुए बिना मनकी एकाग्रता वाली प्रीति पूर्वक के धैर्यता से।

८. और धैर्य द्धारा बढ़ती हुई धारणा से अर्थात् शुन्य मनसे नही अपितु अरिहंतादिक के गुणों का स्मरणपूर्वक की धारणा से ।

९. और धारणा द्धारा बढ़ती हुई अनुप्रेक्षा से अर्थात् जहाँ तहाँ जैसा वैसा कार्य कर देने ऐसी उपेक्षा बुद्धि से नही, अपितु अर्थ और परमार्थ के अनुचिंतन पूर्वक किया गया कायोत्सर्ग ही वंदनादिक के उद्देश्य को सिद्ध कर सकता हैं।

और शासन सेवक देवीदेवताओं का कायोत्सर्ग करने का उद्देश्य स्मरणादिक द्धारा उन्हे जागृत-व प्रोत्साहित करना है। लेकिन १० वैयावृत्य करने वाले हों, ११. शांति के करनेवाले हों और १२ सम्यग्दष्टि को समाधि करने वाले हों उनका स्मरण करना है। अर्थात् उनमें वैयावच्चकरत्व शांतिकरत्व और समाधिकरत्व रूप कारण हों तो ये कायोत्सर्ग हो सकता है। और ऐसे देवों से ही कायोत्सर्ग का उद्देश्य पूर्ण होता है।

११. बारह या सोलह आगार

अन्नत्थ - आइ बारस आगारा, एवमाइया चउरो।
अगणी पणिंदि-छिंदण-बोही-खोभाइऽइ डक्को अ ॥५५॥

(**अन्वयः-** अन्नत्थयाइ बारस एवमाइया चउरो आगारा । अगणी - पणिंदि - छिंदण - बोही खोभाइऽइ डक्कोय ॥५५॥)

शब्दार्थः- अन्नत्थ - अन्यत्र, आइ - विगेरे, अन्नत्थयाइ = अन्नत्थ बाद में, विगेरे , बारस = बारह, आगारा = आगार, छुट या अपवाद, एवमाइ = एवं से लेकर, चउरो = चार, अगणी = अग्नि, पंणिंदि = पंचेन्द्रिय, छिंदण = छेदन, भेदन, बोहीखोभाइ = सम्यक्त्व की हानि, डक्को = डंख ॥५५॥

गाथार्थः- अन्नत्थ इत्यादि बारह और अग्नि पंचेन्द्रिय छेदन, सम्यक्त्व की हानि, और डंख एवमाइ यहाँ से ये चार, इस तरह सोलह आगार है।

विशेषार्थ:-अन्नत्थ =उससिएणं से लेकर दिट्ठी संचालेहिं पर्यन्त के बारह आगार होते हैं। वो इस प्रकार हैं ......

१. श्वास लेना २. श्वास छोड़ना ३. खाँसी आना

४. छींक आना ५. जम्हाई (बगासा)आना ६. डकार आना

७. अपानवायु सरना ८. चक्कर आनाफ ९. पित्त विकार से मूर्च्छा आना

१०.सूक्ष्म अंगों का चलना ११.सूक्ष्म कफ का संचार १२.सूक्ष्म द्रष्टि संचार

ये बारह आगार अर्थात् काउस्सग्ग में रुकावट न आये उसके लिए रखीगयी छुट या अपवाद - जिससे काउस्सग्ग का भंग नही होता है। यदि इन आगारों को छुट तरीके न रखा गया होता और काउस्सग्ग करते तो स्वाभाविक रीत से होनेवाली इन बारह क्रियाओं से सर्वथा निष्क्रियता से कियाजाने वाले काउस्सग्ग का भंग ही गिना जाता। ये बारह आगार तो एक स्थान पर काउस्सग्ग में खड़े रहने संबंधी है। लेकिन काउस्सग्ग के नियतस्थान से हटकर अन्य स्थान पर जाने पर भी काउस्सग्ग अखंड गिना जाय वैसे भी अन्य चार आगार है।

१. बीजली दीपक विगेरे का प्रकाश तथा जिसमें अग्निकाय के जीव होते हैं। उनका शरीर से स्पर्श होने पर नाश होता है। उस नाश को रोकने के लिए चालु काउस्सग्ग में अन्य स्थान पर (प्रकाश रहित स्थान पर) जाना पड़े या वस्त्र से शरीर ढकना पड़े, या अग्नि का प्रकोप हो गया हो तो अन्य स्थान पर जाना पड़े, फिरभी काउस्सग्ग का भंग नही होता है।

२. स्थापनाजी और हमारे बीच में चूहा बिल्ली विगेरे पंचेन्द्रिय जीव आड़े उतरते हो तो उस छिंदन (आड़) का निवारण करने के लिए अन्यत्र जाने पर काउस्सग्ग का भंग नही होता है।

३. या पंचेन्द्रिय जीवों का कोई वध करता हो ऐसे समय में अन्यत्र जाने पर पणिंदि छिदण आगार के कारण काउस्सग्ग का भंग नही होता है।

बौधिक याने चोर तथा खोभाई में कहे गये आदिशब्द से राजा आदि से क्षोभ (संभ्रम भय, उपद्रव) तथा दीवाल विगेरे के गिरने के भय से अन्यत्र जाना पड़े फिरभी अपूर्ण काउस्सग्ग का भंग नही होता है। उसे बोधिक्षोभ आगार समजना। अर्थात् सम्यक्त्व को नुकसान पहुँचे ऐसे प्रसंग पर अन्यत्र जाना पड़े फिरभी काउस्सग्ग अखंड रहे उसे बोधिक्षोभ आगार कहा गया है।

४. स्वयं को या अन्य को (मुनिओं को) दीह=दीर्घ अर्थात् सर्पादिक द्वारा डक्को = दंश दिया गया हो, या दंश का भय हो तो अपूर्ण काउस्सग्ग को पारने पर फिर भी काउस्सग्ग का भंग नही होता है। उसे दीर्घडंक आगार कहागया है।

२० कायोत्सर्ग के १९ दोष

घोड़ग - लय- खंभाई, मालुद्धी निअल सबरि-खलिण-वहू ।
लंबुत्तर थण-संजइ, भमुहंगुलि- वायस कविट्ठो ॥५६॥

सिर-कंप - मूअवारु - णि, पेहत्ति चइज्ज दोष उस्सग्गे ।
लंबुत्तर-थण-संजई, न दोष समणीण, स-बहु सड्ढीणं ॥५७॥

अन्वय :- घोड़ग - लय- खंभाई, मालुद्धी निअल सबरि - खलिण-वहू ।
लंबुत्तर थण-संजइ, भमुहंगुलि- वायस कविट्ठो ॥५६॥
सिर-कंप - मूअ वारुणि, पेह-त्ति उस्सग्गे चइज्ज दोस।
समणीण लंबुत्तर थण संजइ, सड्ढीणं स-वहु न दोस ॥५७॥

शब्दार्थ :- घोड़ग = अश्व, लय = लता, बेल, खंभाई = स्थंभादिक, माल= मंजिल, उद्धी = उद्ध (गाडाकी), निअल = बेड़ी, सबरि = भीलडी, शबरी, खलिण = लगाम, वहु=बहु, वधू, लंबुत्तर = लंबा उत्तरीय, थण = स्तन, संजइ = संयती, साध्वी, भमूहं = भ्रमर, पांपण, अंगुलि=अंगुलि, वायस=कौआ, कविट्ठो = कोठे का फल, ॥५६॥

सिरकंप = मस्तक हिलाना, मूअ = मूक, मुंगा, (गुंगा) वारुणि = मदिरा, पेह = प्रेक्ष्य, बंदर की माफक देखना, स्ति = इस प्रकार, चइज्ज = त्यजना, दोस = दोष, उस्सग्गें = कायोत्सग में, समणीण = साध्वीजी को, स-वहु-वधु = वधू सहित, सड्ढीण = श्रविकाओं को ॥५७॥

गाथार्थ :-अश्व, लता, स्तंभादिक, मंजिल, उद्ध, गाडाकी बेड़ी भीलडी, लगाम, वधू, लंबावस्त्र, स्तन, साध्वीजी, अंगुलियाँ तथा भवाँ घुमाना कौआ, कोठे के फल ॥५६॥

मस्तक हिलाना, मूक (गुंगा), मदिरा, बन्दर (कपि) इन दोषो का कायोत्सर्ग में त्याग करना चाहिये । साध्वीजी को लंबुत्तर स्तन और संयती और श्राविकाओं को वधू सहित (चार) दोष नही लगते। ॥५७॥

विशेषार्थ : कायोत्सर्ग में **लगने वाले दोष**

१. **अश्वः**-अश्व की तरह पाँव मुड़ा के या ऊँचे रखकर **कायोत्सर्ग करना** ।

२. **लता** :-लता (बेल) के समान शरीर ध्रुजातेहुए कायोत्सर्ग करना।

३. **खंभाई** :- स्तंभ या दीवाल विगेरे का सहारा लेकर **कायोत्सर्ग करना** ।

४. **माल** :- मंजलि या मेडिको मस्तक लगाकर कायोत्सर्ग करना ।

५. **उद्धि** :- कायोत्सर्ग में बैलगाड़ी की उघ के माफक दोनों पाँव पास में रखकर खड़े रहना ।

६. **निगड़**:- कायोत्सर्ग में बेड़ी में पाँव झकड़े हों इस प्रकार दूर दूर पाँव रखकर खड़े रहना ।

७. **शबरी** :- कायोत्सर्ग में भीलडी की माफक दोनों हाथ गुह्य अंग पर रखकर खड़े रहना ।

८. **खलिनः**-कायोत्सर्ग में अश्व की लगाम की तरह ओघा या चरवला पकड़ना अथवा डंडी पीछे और गुच्छा आगे रख के खड़े रहना ।

९. **वधूः**-कायोत्सर्ग में वधू के माफक मस्तक नीचे झुकाकर काउस्सग्ग करना।

१०. **लंबुत्तरः**- कायोत्सर्ग में धोती या चोलपट्टा नाभि से चार अंगुल नीचे और घुटने से चार अंगुल ऊंचे रखने के बदले लंबा रखना ।

११. **थणः**- स्त्री के माफक सीने पर वस्त्र ओढकर काउस्सग्ग करना ।

१२. **संयतीः**- साध्वीजी की तरह मस्तक के विना संपूर्ण शरीर ढककर काउस्सग्ग करना ।

१३. **भ्रमितांगुलीः**- कायोत्सर्ग में नवकारादि गिनने के लिए अंगुलि घुमाना या नेत्र के भवे इधर उधर फिराना ।

१४. **कौआः**- कायोत्सर्ग में कौए की तरह इधर उधर देखना ।

१५. **कोठे का फलः**-वस्त्र को मलीन होने के भय से (प्र.व. सारो०) या षट्पदिका विगेरे के भय से धोती की पटली को कोठे के फल की तरह (गेंद की तरह) गोल इकट्ठी करके पांव के बीच दबाना ।

१६. **शिरकंपः**- कायोत्सर्ग में मस्तक को हिलाते रहना ।

१७. **मूकः**- कायोत्सर्ग में गूंगे की तरह हूं, इं करते रहना ।

१८. **मदिराः**- मदिरा परिपक्व होती है तब उसमें बुड़ बुड़ शब्द का आवाज आता है, वैसे ही काउस्सग्ग करते समय बड़बड़ाते रहना।

१९. **प्रेक्षादोषः**- कायोत्सर्ग में बन्दर की तरह ऊँचे - नीचे गर्दन झुकाते हुए देखते रहना ।

धर्मरत्न प्रकरण ग्रंथमें दीवाल का सहारा लेकर काउस्सग्ग करने का अलग दोष कहा है। और **चैत्यवंदन महाभाष्य में** भमूह याने भृकुटी (भवां) और अंगुलि दोष अलग गिनाया है। इसतरह २० या २१ दोष भी होते हैं।

लंबुत्तर, स्तन और संयती ये तीन दोष साध्वीजी को नही लगते हैं। क्योंकि उनका सर्वांग ढका हुआ होना चाहिये। मात्र प्रतिक्रमणादि क्रिया के समय मस्तक खुल्ला रखना चाहिये।

उपरोक्त तीन दोष और वधु दोष सहित कुल चार दोष श्राविकाओं को नही लगते हैं। कारण कि श्राविकाओं को मस्तक ढक के रखना चाहिये, और द्रष्टि नीच रखने की आज्ञा है। क्योंकि लज्जा स्त्री का श्रृंगार है। और उसका आचरण करना चाहिये।

कायोत्सर्ग करने की विधि

कायोत्सर्ग में पाँवो के बीच का अंतर आगे के भाग में चार अंगुल पीछे की ओर कुछ कम, द्रष्टि को नासिका के ऊपर स्थापन करके, दोनों हाथों को (सीधे) लंबे रखकर, ऊपर वाले दांत नीचे वाले दांत को स्पर्श न हो इस प्रकार मानसिक जापद्धारा नवकारादि गिने।, शुद्ध और शांत चित्त से कंपायमान हुए बिना, इधर ऊधर देखे बिना, आगार में जो छुट हो उसके अलावा सर्व क्रियाओं का त्याग कर, मौन व ध्यानस्थ अवस्था में स्थिर होकर परम विशुद्ध भावसे कायोत्सर्ग करना चाहिये।

२१. काउस्सग्ग का समय पमाण २२. स्तवन

इरि-उस्सग्ग-पमाणं, पण-वीसुस्सास अट्ठ सेसेसु।
गंभीर-महुर-सद्दं, महत्थ-जुत्तं हवइ थुत्तं ॥५८॥

अन्वयः- इरि उस्सग्ग पमाणं - पणवीसुस्सास, सेसेसु अट्ठ।
गंभीर-महुर-सद्दं, महत्थ-जुत्तं-थुत्तं-हवइ ॥५८॥

शब्दार्थः- इरि - इरिवहियाके, उस्सग्ग = कायोत्सर्ग का, पमाण = प्रमाण, इरि - उस्सग्ग-पमाणं = इरियावहिया के कायोत्सर्ग का प्रमाण, पणवीस = पच्चीस, उस्सास =श्वासो च्छवास, पण=वीसुस्सास = पच्चीस श्वासो च्छवास, सेसेसु = बाकी के (कायोत्सर्ग का प्रमाण), अट्ठ = आठ, महुर = मधुर, सद्द = शब्द, महुरसद्द =मधुर शब्द वाला, महत्थ = महा गंभीर अर्थ, जुत्तं=युक्त, महऽत्थ=जुत्तं=महान अर्थ युक्त, थुतं=स्तवन ॥५८॥

विशेषार्थः- चैत्यवंदन में इरियावहिया के कायोत्सर्ग का प्रमाण २५ श्वासोच्छवास के समय जितना है। कारण कि ये काउस्सग्ग ‍‍ॠचंदेसु निम्मलयराॠ तक के २५ चरणपाद जितना है। ॠपायसमा उस्सासाॠ इस वचन से १ पाद के उच्चार बराबर १ श्वासोच्छवास का काल है। लेकिन नासिका द्धारा लियाजाने वाला श्वासोच्छ्वास यहाँ प्रमाणभूत नही है। तथा बाकीके **अरिहंत चे.** के तीन काउस्सग्ग एवं **वेयावच्चगराणं** का एक काउस्सग्ग- ये ४ काउस्सग्ग १-१ नवकार के होते हैं। एक नवकार की आठ संपदाएँ हैं, एक एक संपदा एकैक पादतुल्य है, इसलिए चारों काउस्सग्ग आठ आठ श्वासोंच्छ्वास प्रमाण के समजना।

तथा **जावंति चे**. और **जावंत केवि साहू** के बादमें जो स्तवन बोला जाता है, वह गंभीर अर्थयुक्त और मधुरध्वनि पूर्वक गाना चाहिये। (गंभीर अर्थ याने भक्ति ज्ञान और बैराग्य को उत्पन्न करे वैसा, तथा अल्प अक्षर वृंद से अधिक अर्थ निकले वैसा होना चाहिये) विशेषतः पूर्वाचार्यों द्धारा रचित स्तवन बोलना चाहिये। तथा स्तवन की रचनाएँ भिन्न आचार्यों द्धारा की गयी होती है, इसलिए यही स्तवन बोलना चाहिये ऐसा नियत नही है,अतः चैत्यवंदन भाष्यादि में स्तवन को सूत्रों के साथ नही गिना है।

२. स्तवन व्यक्तिगत भावना को बाहर लाने का एक माध्यम है। और जिनमंदिर में दर्शन पूजा विगेरे शास्त्रोक्त समयानुसार नही कर सकें, फिरभी अनुकुलता के अनुसार जबभी जिनालय आवें, तब आनेवाला व्यक्ति अपने हृदयोद्‌गार मधुर ध्वनि में प्रगट कर सकता है। ऐसी सर्व प्रकार की भक्ति को जैनो के सार्वजनिक भक्तिस्थानों में स्थान होना ही चाहिये। इसलिए स्तवनादिक मन्में बोलना चाहिये, ऐसे बोर्ड कितनेक स्थानोपर लगे हुए होते हैं। वो उचित नही है।

२३. सात चैत्यवंदन

पडिक्कमणे चेइय-जिमण-चरम-पडिक्कमण-सुअण-पडिबोहे।
चिइ-वंदण इय जइणो सत्त ३ वेला अहोरत्ते ॥५९॥

अन्वयः- जइणो अहोरत्ते पडिक्कमणे, जिमण चरम पडिक्कमण।
सुअण पडिबोहे इय सत्त उ वेला चिइ-वंदण ॥५९॥

शब्दार्थः- पडिक्कमणे-प्रतिक्रमण में, चेइय = चैत्य में, प्रभुदर्शन के समय में, जिमण = गोचरी के समय में, चरमे=संध्या को पच्चकरवाण के समय में, सुअण = सोने से पूर्व, पडिबोहे = प्रातः काल मे, इय = इस प्रकार, जइणो = मुनिको, अहोरत्ते = रात और दिन में (अहोरात्रि में)

गाथार्थः-मुनिओं को रात्रि और दिन में, [1]प्रतिक्रमण में [2]दर्शन, [3]गोचरी, [4]संध्या, [5]प्रतिक्रमण, तथा [6]सोने व [7]जागने के समय, इस प्रकार सातबार चैत्यवंदन करने का विधान है।

विशेषार्थः-(१) प्रातः काल के प्रतिक्रमण में **विशाल लोचन** का (२) चैत्यमें मंदिर में प्रभु दर्शन के समय (३) गोचरी (आहार-पानी) करने से पूर्व पच्चक्रवाण पारने के समय (४) संध्या प्रतिक्रमण के समय,गोचरी करने के बाद, (५) संध्या प्रतिक्रमण में **नमोऽस्तु वर्धमानाय** का,(६) सोने से पूर्व संथारा पोरिसि पढाते समय **चउक्कसाय का,** (७)और प्रातः जागते समय **कुसुमिण दुसुमिण** का कायोत्सर्ग करने के बाद **जगचिन्तामणि** का, इस प्रकार यति को एक अहोरात्रि में (७) बार चैत्यवंदन अवश्य करना चाहिये। और अष्टमी आदि पर्वतिथिओंमें तो सर्व चैत्यवंदनार्थे सात से अधिक बार चैत्यवंदन करना चाहिये।

कहा है किः- अट्ठमि चउद्दसीए सव्वाइं चेइयाइं सव्वेहिं साहुहिं वंदेयव्वाइ इति वचनात "आठम चौदस को सर्व मुनिओं को, सर्व चैत्यों को वंदना करना।"

ये सात चैत्यवंदन भिन्न भिन्न विधि से होते हैं। वो चालुविधि गुरुगम से जानना।

श्रावक को करने के चैत्यवंदन

पडिकमओ गिहिणो विहु सग-वेला पंच वेल इयरस्स।
पूआसु ति-संझासु अ होइ ति-वेला जहन्नेणं ॥६०॥

अन्वयः- पडिकमओ गिहिणो विहु सगवेला
इयरस्स पंचवेल,जहन्नेणं ति संझासु पूआसु तिवेला होई ॥६०॥

शब्दार्थः- पडिकमओ = प्रतिक्रमण करनेवाले, गिहिणो = गृहस्थको विहु-निश्चय से, सग-वेला = सातबार, पंचवेल = पांचबार, इयरस्स =इतर गृहस्थ को (प्रतिक्रमण नहि करने वाले को) पूआसु = पूजामें, ति-संझासु=तीन संध्याओं की, ति-वेला=तीन बार, जहन्नेणं=जघन्य से ॥६०॥

गाथार्थः- प्रतिक्रमण करने वाले गृहस्थ को भी सातबार या पांचबार और प्रतिक्रमण नहि करने वाले गृहस्थको प्रतिदिन तीन संध्याकाल की पूजा में जघन्य से तीन बार चैत्यवंदन करना ।

विशेषार्थः- प्रातःकाल के प्रतिक्रमण में दो बार (निद्रात्याग व प्रतिक्रमण का), त्रिकाल देववंदन के ३, संध्याकाल के प्रतिक्रमण का १, और रात्रि में शयन करने पूर्व मुनि भगवन्तों से संथारापोरिसी सुनने का इस प्रकार राई देवसि प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक को ७ बार चैत्यवंदन होते हैं।

प्रातः काल एक बार प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक को ६ बार (अर्थात् रात्रि सोने के समय प्रतिक्रमण न करे उसको)

प्रातः काल का प्रतिक्रमण न करने वाले श्रावक को पांचबार, क्योंकि **प्रातः** काल के प्रतिक्रमण में दो चैत्यवंदन एक तो शयनत्याग का और दूसरा प्रतिक्रमण का होता है, वह नही करने पर पांच बार। क्योंकि ये दोनों चैत्यवंदन प्रातःकाल के प्रतिक्रमण के अंतर्गत है। इस प्रकार ५ चैत्यवंदन ज्ञात होते है , अन्यथा एक प्रतिक्रमण नहि करने वाले को ६ चैत्यवंदन होते है ।

"एकावश्यक करणे तु षट्, स्वापादिसमये तदकरणे पश्चादयोऽपि"-इति धर्मसंग्रहवृत्तिः

जिस श्रावक ने पौषध न किया हो उसे संथारा पोरिसि स्वयं को भणे बिना, गुरुभगवन्त या पौषध धारी श्रावक पोरिसि भणावे वो सुनना चाहिये ऐसी विधि है।

२४. दस मुख्य आशातनाएँ

तंबोल पाण भोयणुवाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं ।
मुत्तुच्चारं जूअं, वज्जे जिण-नाह-जगईए ॥६१॥

अन्वयः- जिण-नाह-जगइए, तंबोल-पाण-भोयण ।
उवाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं मुत्तुच्चारं जूअं वज्जे ॥६१॥

शब्दार्थः-तंबोल - पान सुपारी, पाण = पानी, पेय, पीने के पदार्थ, भोयण=भोजन, खाने की वस्तु, उवाणह = उपानह, चप्पल, बूटादि, मेहुन्न =मैथुन, सुअण = निद्रालेना, निट्ठवणं = थूंकना विगेरे, मुत्त = पेशाब, उच्चार = वड़ीनीति, झाड़ेजाना, टट्टीजाना, जूअं =जूआ खेलना, वज्जे = निषेध, जिणनाह = जिननाथ की जगईए = जगतीमें, परिसर में, ॥६१॥

गाथार्थः-श्री जिनेश्वर परमात्मा के मंदिर के परिसर में [१]तंबोल [२]पेयपदार्थ पीना [३]खाना, [४]पाँव में चप्पल मोजड़ी आदि पहनकर आना, [५]मैथुन करना, [६]निद्रालेना, [७]थूंकना, [८]पेशाब करना, [९]वड़ीनीति (टट्टी), [१०]जुआ खेलना निषेध है अर्थात् दस आशातनाएँ नही करनी चाहिये ।

विशेषार्थः- ये दस आशातनाएं मुख्यतः जधन्य से कही गयी है, मध्यम आशातनाएँ ४२ हैं, उत्कृष्ट आशातनाएँ ८४ है, उनका स्वरूप अन्य ग्रन्थों से समझना।

आ + शातना = जो अविनय वाले आचरण से विनयमर्यादा का उल्लंघन हो, उसे आंच लगे, या खंडित हो, वैसे आचरण का नाम आशातना है। जगती की व्याख्या शिल्पशास्त्र के अनुसार समझना।

देववंदन विधि

इरि-नमुकार-नमुत्थुण-रिहंत-थुइ-लोग-सव्व-थुइ-पुक्ख ।
थुइ-सिद्धा-वेया-थुइ-नमुत्थु-जावंति-थय-जयवी ॥६२॥

अन्वयः- इरि-नमुकार-नमुत्थुण-रिहंत-थुइ-लोग-सव्व -थुइ
पुक्ख। थुइ-सिद्धा-वेया-थुइ-नमुत्थु-जावंति-थय - जयवी

गाथार्थः- इरियावहियं - नमस्कार - नमुत्थुणं - अरिहंत चे० - स्तुति - लोगस्स सव्वलोए -स्तुति - पुक्खरवरदी - स्तुति - सिद्धाणं - वेयावच्चगराणं - स्तुति - नमुत्थुणं - जावंति चेइ० दो, स्तवन और जयवीयराय ॥६२॥

विशेषार्थः- इरियावहियं याने एक **खमासमण** देकर, आदेश पूर्वक **इरियावहियं, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ०** कहके एक लोगस्स का २५ श्वासोच्छ्वास प्रमाण, **चंदेसु निम्मलयरा** तक कायोत्सर्ग करके पारकर **लोगस्स** कहना, उसे इरियावहिया कहा जाता है।

बादमें तीन **खमासमण** देकर **चैत्यवंदन** का आदेश लेकर नमुक्कार अर्थात् जघन्य से तीन गाथावाला और उत्कृष्ट से १०८ गाथाओं वाला देशी भाषा संस्कृत या प्राकृत भाषा में रचा हुआ चैत्यवंदन बोलने में आता है। उसे तीन या एकसो आठ नमस्कार वाला चैत्यवंदन कहा जाता है। और बादमे जंकिंचि सूत्र भी कहना। वह चैत्यवंदन के अंतर्गत सर्व सामान्य चैत्यवंदना है। परंपरा से बोला जाता है। भाष्यत्रय में नही दर्शाया है।

बादमें मस्तकद्धारा तीनबार भूमि को स्पर्श करके नमुत्थुणं कहना फिर **अरिहंत चेइ० अन्नत्थ** कह कर ८ उच्छवास प्रमाण एक नवकार का काउस्सग्ग करना। काउस्सग्ग पारकर अधिकृत एक चैत्य या जिन संबंधी स्तुति बोलना। समुदाय में वडील ने जिसको आदेश दिया हो, वो व्यक्ति स्तुति बोले और अन्य सभी सुनें। पुरुष द्धारा बोली गयी स्तुति चतुर्विध संघ को सुनना कल्पता है। और नारी ने बोली हुई स्तुति साध्वी व श्राविका को सुनना कल्पता है। (इस प्रकार देववंदन में भी समजना) (संधाचार गाथा ५०० वी)

फिर **लोगस्स०** संपूर्ण कहना, **सव्वलोए, अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं वंदण वत्तिआए०** इत्यादि पदोंसे **अरिहंत चेइयाणं सूत्र** संपूर्ण कहना और अन्नत्थ कहकर **एक नवकार का कायोत्सर्ग** पारकर सर्व जिन संबंधी दूसरी स्तुति बोलना, बादमें **पुक्खरवरदी सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण वत्तियाए०** इत्यादि, **अन्नत्थ** संपूर्ण कहना एक नवकार का कायोत्सर्ग पारकर सिद्धांत संबंधी तीसरी स्तुती बोलना।

बादमें **सिद्धाणं०** और **वैयावच्चगराणं० अन्नत्थ०** कहकर एक **नवकार का काउस्सग्ग** पार कर **शासनदेवी देवता के स्मरणवाली** चौथी स्तुति बोलना

बादमें **नमुत्थुणं जावंति चेइ० खमासमण० जावंत केवि० नमोऽर्हत्** बोलकर, पूर्वाचार्यो द्वारा रचित गंभीर अर्थवाला संस्कृत प्राकृत या देशी भाषात्मक स्तवन कम से कम (जघन्यसे) पांच गाथा वाला बोलना। फिर **जयवीयराय०** कहना । इस प्रकार एक स्तुति जोड़े वाला चैत्यवंदन पूर्ण करना हो तो जयवीयराय संपूर्ण बोलना । यदि उत्कृष्ट चैत्यवंदन करने के भाव हों तो जयवीयराय दो गाथा तक बोलना।

गाथा में दर्शाये गये ४ स्तुतिवाले । उत्कृष्ट चैत्यवंदन १ भेदके अनुसार तो जघन्योत्कृष्ट चैत्यवंदन समजना और उत्कृष्टोत्कृष्ट चैत्यवंदन तो ८ स्तुतिवाला प्रणिधानत्रिक सहित होता है।

उत्कृष्टोत्कृष्ट चैत्यवंदन करना हो तो ऊपर कहे अनुसार बारहवाँ अधिकार (शासनदेवी-देवता की स्तुतिवाला) पूर्ण होता है, उसके बाद पुनः**नमुत्थुणं** कहकर **अरिहंत चेइआणं०** इत्यादि ४ दंडकपूर्वक पूर्वोक्त क्रमानुसार करते हुएदूसरीबार चार स्तुति बोलना । फिर **नमुत्थुणं० जावंति चेइआई० खमा० जावंतकेवि० नमोऽर्हत्त्० स्तवन कहना तथा संपूर्ण जयवीयराय बोलना** । इस प्रकार की विधि से शास्त्रोक्त द्विगुण चैत्यवंदना होती है। और यही उत्कष्टोत्कृष्ट चैत्यवंदन कहा जाता है। वर्तमान में भी ये द्विगुण चैत्यवंदन करनेकी विधि उत्कृष्ट देववंदना तरीके प्रसिद्ध है। पौषध विगेरे में इसी तरह देववंदन किया जाता है । इसके अलावा ज्ञानपंचमी, मौन एकादशी, चौमासी, चैत्रीपूनम विगेरे पर्वदिनों में उत्कृष्ट देववंदना होती है।

उपसंहार कर्ताका नाम, और अंत्य मंगल

सव्वोवाहि - विसुध्धं एवं जो वंदए सया देवे ।
देविंद-विंद-महिअं-परम-पयं पावइ लहुसो ॥६३॥

अन्वय :- एवं जो सया देवे वंदए सो सव्वोवाहिविसध्धं
देविंद-विंदमहिअं परम-पयं लहु पावइ ॥६३॥

शब्दार्थ:- सव्व = सर्व, उवाहि = उपाधि धर्मचिंता, विसुद्धं = शुद्ध, जो = जो मानव, सया = सदा प्रतिदिन, देविंद = देवके इंद्र, अथवा देवेन्द्रसूरि, विंद = समूह, विंद = विचार, ज्ञानवाला, महिअं = पूजित, अहि =अधिक, अं=कं=ज्ञानवाला, परम-पयं=परमपद, मोक्ष, पावइ= प्राप्त करे, लहु=लघु, शीघ्र, सो= वो मनुष्य ॥६३॥

गाथार्थ:-इस तरह जो मानव देवको प्रतिदिन वंदना करे, वो मानव देवेन्द्रो के स्मुह द्धारा पूजित सर्व उपाधियों से शुद्ध बना हुआ शिघ्र मोक्षप्रद प्राप्त करे ! ॥६३॥

विशेषार्थ:- दूसरा अर्थ:- सर्व धर्म चिंतनद्धारा विशुद्ध तथा **देविंद**=श्री देवेन्द्र सूरि द्धारा **विंद**=दर्शाये गये विचारवाला (याने जिसका विधिस्वरूप दर्शाने वाले श्री देवेन्द्रसूरि हैं ऐसा और अं=कं= ज्ञान से अहि = अधिक, याने श्री देवेन्द्रसूरि ने अपने बोध के अनुसार जिस तरह जाना वैसे दर्शाया है) ऐसा जो देववंदन (चैत्यवंदन भाव्य) एवं = उसमें कही गयी विधि मर्यादानुसार जो मनुष्य प्रतिदिन देव को वंदना करता है, वह शिघ्रमोक्ष पद को प्राप्त करता है ।

ये दूसरा अर्थ **अवचूरि** के आधार से दिया है ॥६३॥

॥ इति प्रथम भाष्य ॥

***

॥ श्री जिनेन्द्राय नमः ॥

श्री गुरूवंदन भाष्य (भावार्थ सहित)

गुरूवंदन के तीन प्रकार

गुरूवंदणमह तिविहं तं फिट्टा छोभ बारसावत्तं ।

सिर नमणाइसु पढ्मं, पुन्नखमासमण दुगि बीअं ॥१॥

शब्दार्थ : गुरू वंदणं = गुरू वंदन, अह = अथ (देव वंदन के बाद), तिविहं = तीन प्रकार, तं = वह, फिट्टा = फेटा वंदन, छोभ = छोभ वंदन, बारसवत्तं = द्वादशावर्त वंदन, सिर = मस्तक, नमणाइसु = झुकाने आदि से, पढ्मं = प्रथम (फेटा वंदन), पुन्न = पूर्ण, संपूर्ण; खमासमण=खमासमण, दुगि =दो देने, के द्वारा, बीअं = दूसरा (छोभवंदन)

गाथार्थ :- अब देव वंदन कहने के बाद गुरूवंदन कहा जाता है, वह फेटा वंदन, छोभ वंदन और द्वादशावर्त्त वंदन (आदि) तीन प्रकार का है । उसमें मस्तक झुकाने आदि से प्रथम फेटा वंदन होता है । गुरू को दो खमासमणे संपूर्ण देने से छोभवंदन होता है ॥१॥

विशेषार्थ :भावार्थ गाथार्थ के अनुसार अर्थ समझना सुगम है, लेकिन विशेषता यह है कि सिरनमणाइसु में प्रयोगरत आदि शब्द से, दो हाथ को परस्पर जोड़ने से तथा अंजलि करने से प्रथम फेटावंदन होता है, इस प्रकार समझना । तथा यहाँ पर पुन्न (खमासमण दुगि)[1] शब्द से दो खमासमण संपूर्ण देने के लिए कहा है । अर्थात् संपूर्ण[2] पाँचों अंगों को झुकाने से दूसरा वंदन होता है । इस प्रकार सूचित किया है ।

(गुरूवंदन भाष्य की पीठिका)

अवतरण :- पूर्व गाथा में दो प्रकार के गुरूवंदन का अर्थ कहने के बाद अब तीसरे प्रकार के गुरूवंदन का अर्थ कहा जा रहा है, लेकिन दूसरे प्रकार वाले गुरूवंदन में और कहे जाने वाले तीसरे प्रकार के गुरूवंदन में भी दो-दो बार वंदन करने के लिए कहा है। उसका क्या कारण? इसका उत्तर दर्शाती गाथा ।

---

१. गाथा में सप्तमी विभक्ति है, प्राकृत के नियम से तृतीया के अर्थ में प्रयोग हुआ है, अतः दोनो स्थानों के अर्थ में तृतीया विभक्ति समझना ।

२. एक अंगादि ४ प्रकार के प्रणाम चैत्यवंदन भाष्य में कहे गये हैं, वैसे प्रणाम यहाँ गुरूवंदन के विषय में फिटावंदन तरीके गिना जाता है कारण कि खमासमणा तो पंचांग प्रणिपात रूप में ही देना चाहिये । लेकिन एकांगादि प्रणामरूप नहीं ।

'जह दुओ रायाणं, नमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा ।
विसज्जिओ वि वंदिय, गच्छइ एमेव इत्थ दुगं ॥२॥

शब्दार्थ : जह = जैसे, दूओ = दूत (राजसेवक), रायाणं =राजा को, नमिउं = नमस्कार करके, कज्जं = कार्य, निवेइउं= निवेदन करके, पच्छा =उसके बाद, विसज्जिओ = विसर्जन करने पर , (अ) वि = भी, वंदिय = नमस्कार करके, गच्छइ = जाता है, एमेव = इसी प्रकार, इत्थ = यहाँ (गुरू वंदन में), दुगं =दो बार वंदन होता है ।

गाथार्थ : जैसे दूत प्रथम राजा को नमस्कार करके कार्य का निवेदन करता है और उसके बाद राजा द्वारा विसर्जन करने पर भी (राजा द्वारा जाने की आज्ञा मिलने पर भी) पुन: (दूसरी बार) नमस्कार करके जाता है । इसी प्रकार गुरूवंदन में भी दो बार वंदना की जाती है (अर्थात् इसी कारण से गुरू को खमासमणे भी दो दिये जाते है और द्वादशावर्त्त वंदन भी दो बार किया जाता है ।) ॥२॥

***

अवतरण : (पुन: प्रसंगवत्) वंदन का अर्थ और वह कैसे किया जाता है ? उक्त दोनों बात (तीसरे प्रकार के गुरूवंदन का जिक्र करना बाकी है, फिर भी उसके पहले) कही जा रही है ।

आयारस्स उ मूलं, विणओ सो गुणवओ य पडिवत्ती ।
सा य विहि वंदणाओ, विही इमो बारसावत्ते ॥३॥

(गुरूवंदन भाष्य)

शब्दार्थ :- आयारस्स = आचार का, धर्म का; उ=(तु)= तथा, मूलं = मूल, विणओ = विनय, सो = वह, गुणवओ =गुणवंत की, पडिवत्ती = प्रतिपत्ति, भक्ति, सा=वह (गुणवंत की भक्ति). विहि = विधिपूर्वक, वंदणओ=वंदन करने से (होती है), विहि = (और वह) वंदनादि विधि, इमो = यह, आगे कहने में आयेगी वह (विधि), बारसावत्ते = द्वादशावर्त्त वंदन में है ।

(१) ये गाथा आवश्यक निर्युक्ति की है ।

गाथार्थ : आचारका मूल (धर्म का मूल) विनय है, और वह विनय गुरू की भक्ति रूप है, और वह (गुणवंत गुरू की) भक्ति विधिपूर्वक वंदन करने से होती है, और वह विधि यह (आगे कहने में आयेगा वैसा) है, अर्थात वह विधि द्वादशावर्त्त वंदन में कही जायेगी ||३||

भावार्थ : विनय धर्म का, ज्ञान का और आचार का मूल है । यदि जीवन में (देव गुरू के प्रति विनय भक्ति और नम्रता) न हो, तो धर्म फल की प्राप्ति नहीं होती है । इसी कारण से ही मुनि भगवंतों के आचार विचार को दर्शाने वाला और आचारांग सूत्र से पूर्व ही योगवहन (तप विशेष) करके अध्ययन करने के योग्य श्री उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययनों में सर्वप्रथम विनय नाम के अध्ययन का वर्णन किया है । श्री आवश्यक निर्युक्ति में भी कहा है कि...

विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।
विणयाउ विप्पमुक्कस्स,कओ धम्मो कओ तवो ||१२१६||

जम्हा विणयइ कम्मं, अट्ठविहं चाउरंत मुक्खाए ।
तम्हा उ वयंति विऊ, विणउत्ति विलीनसंसारा ||१२१७||

अर्थ : द्वादशांग श्रुतज्ञानरूपी श्री जिनेन्द्रशासन का मूल विनय है , उसी कारण से जो विनयवंत होता है वही संयत - साधु होता है । लेकिन जो विनय रहित होता है वैसे साधु का धर्म कहाँ ? और तप भी कहाँ ? ||१२१६|| (अब "विनय" शब्द का अर्थ कहते है) जिस कारण से चार गति रूप संसार का(मोक्ष) विनाश करने के लिए (जो आचार क्रिया) आठ प्रकार के कर्मों को विनयति =विशेषत: नाश करते हैं । इसी कारण से विनष्ट संसार वाले विद्वान उसे (सर्वज्ञ परमात्मा वैसे आचार को) "विनय" कहते हैं ।

(तीन प्रकार की गुरूवंदना का स्वरूप)

अवतरण : तीसरी प्रकार की गुरूवंदना का अर्थ, और तीनों प्रकार की वंदना किसको करनी चाहिये ? इन दो बातों का स्पष्टीकरण इस गाथा में किया गया है ।

तइयं तु छंदण दुगे, तत्थ मिहो आइमं सयल संघे ।
बीयं तु दंसणीण य, पयट्ठियाणं च तइयं तु ||४||

शब्दार्थ : तइयं = तीसरा वंदन, छंदण = वंदनक में, वांदणा में, दुगे = दो बार के, तत्थ = वहाँ, ३ प्रकार के वंदन में, मिहो = मिथ, परस्पर, आइमं = प्रथम (फिट्टा) वंदन, सयल = समस्त, सर्व; संघे = संघ में, संघ को; बीयं = दूसरा (छोभ) वंदन दंसणीण = दर्शनी को, मुनि को; पय = पदवी में, ट्ठियाणं = रहे हुए मुनि को, तइयं =तीसरा (द्वादशा०) वंदन

गाथार्थ : तीसरा द्वादशावर्त वंदन दो वंदनक द्वारा (दो वांदणे देने के द्वारा) किया जाता है । तथा इन तीन वंदन में प्रथम फिट्टावंदन संघ में संघ को परस्पर किया जाता है । दूसरा छोभ वंदन (खमासमण वंदन) साधु-साध्वी को ही किया जाता है । और तीसरा द्वादशावर्त्त वंदन आचार्य आदि पदवीधर मुनिओं को किया जाता है ॥४॥

विशेषार्थ : प्रथम गाथा में दो प्रकार के वंदन का विश्लेषण करने के बाद इस चौथी गाथा में तीसरे प्रकार के वंदन के बारे में कहा गया है तीनों ही प्रकार के वंदन क्रमश: इस प्रकार है .....

तीन प्रकार की गुरूवंदना किस प्रकार की जाती है ?

(१) फिट्टा वंदन - शीर्ष झुकाने से, हाथ जोड़ने से, अंजलि रचने से अथवा पाँच अंगों में यथायोग्य १-२-३ या ४+अंग द्वारा नमस्कार करने से फिट्टावंदन होता है ।

(२) छोभ वंदन - पाँचों अंगों को झुकाते हुए खमासमण देने से छोभ वंदन (पंचांग वंदन) होता है ।

(३) द्वादशावर्त वंदन - 'अहो कायं काय' इस प्रसिद्ध पद वाले वंदनक सूत्र से (आगे कही जाने वाली विधि की तरह) ये तीसरा वंदन होता है । इस गुरूवंदन भाष्य में मुख्य अधिकार द्वादशावर्त वंदन विधि का ही कहा जायेगा । इस प्रकार तीनों ही प्रकार के गुरूवंदन का सामान्य विधि कहने के बाद, कौनसा वंदन किसे किया जाता है ? वह दर्शाया जा रहा है ।...

"३ प्रकार के गुरूवंदन किस को करना ?"

१) फिट्टा वंदन - ये वंदन संघ में संघ को परस्पर किया जाता है, अर्थात् साधु साधु को, साध्वी साध्वी को, श्रावक श्रावको और श्राविका श्राविका को परस्पर फिट्टा वंदन करे। अथवा श्रावक साधु विगेरे चार को, और श्राविका भी साधु विगेरे चार को, साध्वी साधु व साध्वी को तथा साधु मात्र साधु को ही फिट्टा वंदन करे ।

+ इन चार प्रकार के नमस्कारों का वर्णन चैत्यवंदन भाष्य के अर्थ प्रसंग में किया गया है, वहाँ से जानकारी प्राप्त करें ।

(२) छोभ वंदन - ये वंदन साधु अधिक दीक्षा पर्याय वाले साधु को । साध्वी अधिक दीक्षा पर्यायवाले साधु व साध्वी को तथा लघुपर्याय वाले साधु[1] को वंदन करे । श्रावक साधु को और श्राविका साधु व साध्वी को पंचांग प्रणिपात वंदन करे । इस प्रकार खमासमणपूर्वक गुरूवंदन [2] साधु -साध्वी को ही किया जाता है । लेकिन श्रावक चाहे कितना भी भाव से चारित्र की इच्छा वाला तथा उत्कृष्ट क्रिया पात्र क्यों न हो, फिर भी ऐसे श्रावक को [3]खमासमणे द्वारा वंदन नहीं किया जाता है, और यदि कोई वैसा आचरण करे तो उसे जिनेन्द्र आज्ञा का महाघातक कहा गया है ।

३) द्वादशावर्त्त वंदनः- ये वंदन साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका पदवीधर आचार्यादि को ही किया जाता है। और समान पदवीधर अधिक दीक्षा पर्याय वाले (रत्नाधिक) को वंदन करते है, उसका विशेष स्वरुप गाथा नं. ३ में दर्शाया गया है।

(आव० निर्युक्ति में दर्शाये गये (९ द्वार)

अवतरणः- अब ग्रंथ कर्त्ता (स्व रचित गाथाओं द्वारा नहि लेकिन) सिद्धांत के प्रति अपनी भक्ति द्वारा श्री आवश्यक निर्युक्ति में कही गयी दो गाथाओं द्वारा द्वादशावर्त्त वंदन की विधि को दर्शाने वाले ९ द्वारों के नाम कहते हैं ।

वंदण-चिइ-किइकम्मं, पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।
कायव्वं कस्स व केण वावि काहे व कइखुत्तो ॥५॥

कइ ओणयं कइ सिरं, 'कइहिं व आवस्सएहिं परिसुद्धं ।
कइ दोस विप्पमुक्कं, किइकम्मं कीस कीरइवा ॥६॥

---

(१) ज्ञानादि गुण में अधिक हो, या सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी हो, फिर भी एक दिन के दीक्षित साधु को भी ऐसी साध्वी, खमासमण पूर्वक वंदन करे, इस प्रकार के धर्म में पुरुष की प्रधानता मुख्य है, ऐसी श्री जिनेन्द्र सिद्धान्त की मर्यादा है ।

(२) (कोई अवश्य) कारण से गुणरहित वेषधारी साधु को भी वंदन किया जा सकता है।

(३) वर्तमान समय में कितनेक श्रावक अपने "आत्मज्ञान" का ढोंग रचाकर स्वयं को भाव साधु मानकर अपने भक्त श्रावक श्राविकाओं से खमासमण द्वारा वंदन करवाते हैं, अथवा भक्त भक्ति के कारण खमासमण देते है । फिर भी उन्हे मना नहीं करते हैं, इस प्रकार सुना जाता है, यदि ये दोनों बातें सत्य है तो दोनों ही परमात्मा की आज्ञा के विराधक है ।

कइ विह (=कितने) ऐसा पाठ भी है ।

शब्दार्थ :- कायव्वं=करना, करस=किसको, व=अथवा, केण=किसे, वा=अथवा, कइ ओणयं=कितने अवनत, विप्पमुक्कं=रहित, (अ)=वि=भी, काहे=कब करना, कइ=कितनी, खुत्तो=बार, कीस=किस लिए ?क्या कारण ?, कीरइ=कियाजाता है

गाथार्थ:- वंदनकर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म (ये पांच गुरुवंदन के नाम है) वह किसको करना ? किसे करना ? कब करना? कितनीबार करना ?तथा वंदन में अवनत (शिष्य के प्रणाम) कितने? शीर्षनमन कितने ? और ये गुरुवंदन कितने आवश्यकों द्धारा विशुद्ध किया जाता है? कितने दोषों से रहित किया जाता है ? तथा कृति कर्म (वंदनक) (वांदणा) किसलिए किया जाता है? ये ९ द्धार इस वंदन विधि में कहे जायेंगे ||५||६||

भावार्थ :- गाथार्थ की तरह सुगम है, लेकिन इतना विशेष कि-इस भाष्य में जो बाते कही जायेगी, वो इन ९ द्धारों के माध्यम से नहि अपितु

(भाष्य कर्ता द्धारा कथित २२ द्धार)

आगे दूसरी तरह कहे जाने वाले २२ द्धारों के मुताबिक कही जायेगी। ये ९ द्धार भी २२ द्धारों के [1] अंतर्गत कह दिये जायेंगे। जिससे ये दो गाथाएँ तो आवश्यक सूत्रमें वर्णन किये गये तीसरे वंदन आवश्यक के (निर्युक्ति में) प्रारंभ की मुख्य होने से, और इस प्रकरण के संबंधवाली होने से सिद्धांत की भक्ति निमित्त कही गयी है।

९ द्धारों का संबंध-२२ द्धारों मे इस प्रकार है।

प्रथम (१) द्धार का समावेश ४ थे द्धार में	५, ६, ७ वें द्धार का समावेश १० वें द्धार में
दूसरे (२) द्धार का समावेश ५-६-द्धार में	८ वें द्धार का समावेश १३ वें द्धार में
तीसरे (३) द्धार का समावेश ७-८-द्धार में	९ वें द्धार का समावेश १४ वें द्धार में
चोथे (४) द्धार का समावेश ९-द्धार में	(इति:- आवश्यक निर्युक्ति अनुसार)

अवतरण:- पूर्व की गाथाओं में जो (आवश्यक निर्युक्ति में कहे गये) ९ द्धार कहे गये उन्ही ९ द्धारों का विशेष स्वरुप समजाने के लिए, दूसरे तरीके से २२द्धार ग्रंथकार (स्व रचित)३ गाथाओं द्धारा कह रहे है। वो इस प्रकार है ।

पण नाम पणाहरणा, अजुग्गपण जुग्गपण चउ अदाया ।
चउदाय पण निसेहा, चउ अणिसेह-हुकारणया ॥७॥
आवस्सय मुहणंतय, तणुपेह पणीस दोस बत्तीसा ।
छगुण गुरु ठवण दुग्गह, दु छवीसक्खर गुरुपणीसा ॥ ८॥
पय अडवन्न छठाणा, छग्गुरुवयणा ऽ सायणतित्तीसं ।
दुविही दुवीस दारेहिं, चउसया बाणउइ ठाणा ॥९॥

शब्दार्थ ७ वीं गाथा के :-

पण=पांच, आहरणा=उदाहरण,दृष्टान्त, अजुग्ग=(वंदन के) अयोग्य, जुग्ग=(वंदन के) योग्य, अदाया=(वंदन) नहि करे, निषेहा=निषेध स्थान, अणिसेह=अनिषेध स्थान, (अ) हु=आठ, कारणया=कारण

शब्दार्थ ८ वीं गाथा के:-

मुहणंतय= मुहपत्ति मुखानंतक, गुरुठवण=गुरु की स्थापना, तणुपेह=शरीर की प्रतिलेखना, दुग्गह=दो अवग्रह, पणीस=पच्चीस, दुछवीसक्खर=दोसौ छब्बीस अक्षर

शब्दार्थ ९ वीं गाथा के :-

अडवन्न=अट्ठावन, असायण=आशातना (गुरु की), दुवीस=बावीस,

गाथार्थ:- गुरु वंदन के पांच नाम, पांच द्रष्टान्त, वंदन के अयोग्य पांच प्रकार के साधु, वंदन के योग्य पांच प्रकार के साधु, चार प्रकार के साधु वंदन न करे, (अर्थात् चार प्रकार के साधुओ के पास वंदन नहि करवाना चाहिये) चार प्रकार के साधु को वंदन करे, वंदन के पांच निषेधस्थान, और चार अनिषेध स्थान, तथा वंदन के आठ कारण कहे जायेंगे ॥७॥

तथा २५ आवश्यक का वर्णन, मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना का वर्णन, शरीर की २५ प्रति लेखना का वर्णन, वंदन के समय टालने योग्य ३२ दोषों का वर्णन, वंदन के छ गुणों का वर्णन, गुरु स्थापना वर्णन, दो प्रकार का अवग्रह,(गुरु से दूर खड़े रहने की मर्यादा), वंदन का सूत्र के २२६ अक्षर, और उस में २५ गुरु अक्षर (जोड़ाक्षर) का वर्णन, इस प्रकार, ॥८॥

तथा वंदन का सूत्र में ५८ पद हैं उन्हे दर्शाया जायेगा, वंदन के ६ स्थान (६ अधिकार-शिष्य के प्रश्न रुप में) कहेंगे, वंदन के समय गुरु को बोलने योग्य ६ वचन (प्रश्नों के उत्तर रुप में) कहेंगे, गुरु की ३३ आशातनाओं का वर्णन, और वंदन की विधि (रात्रि व दिन संबंधि) कहेंगे, (इसगाथा में पांच द्वार) इस प्रकार २२ मुख्य द्वारों के ४९२ स्थान (द्वार के उत्तर भेद ४९२) होते है।

भाष्य कर्ता द्वारा कथित २२ द्वार
॥ मुल द्वार के ४९२ 'उत्तर भेदों का कोष्टक ॥

	भेद			भेद
१. वंदन के नाम	५	१३	दोष	३२
२. द्रष्टान्त	५	१४	गुण	६
३. वंदन अयोग्य	५	१५	गुरुस्थापना	१
४. वंदन योग्य	५	१६	अवग्रह	२
५. वंदन अदाता	४	१७	वंदन सूत्र के, क्षरों की संख्या	२२६
६. वंदन दाता	४	१८	पदसंख्या	५८
७. निषेध स्थान	५	१९	स्थान (शिष्य के प्रश्न)	६
८. अनिषेधस्थान	४	२०	गुरुवचन	६
९. वंदन के कारण	८	२१	गुरु आशातना	३३
१०. आवश्यक	२५	२२	विधि-	२
११. मुहपत्ति पडिलेहणा	२५			
१२. शरीर प्रतिलेखना	२५		कुल	४९२

'शास्त्रो में द्वादशावर्त्त वंदन के १९८ भेद कहे है, उसमें २२६ अक्षर, ५८ पद, ४ वंदनदाता, ४ वंदन अदाता ४ अनिषेधस्थान, २ विधि, १ गुरुस्थापना, ये २९९ भेद व

अवतरण :- गुरु वंदन के पांच नाम (प्रथम द्वार)

वंदणयं चिइकम्मं, किइकम्मं विणयकम्मं पूअकम्मं।
गुरुवंदण पणनामा, दव्वे भावे दुहोहेण (दुहा हरणा)॥१०॥

शब्दार्थ:- पणनाम=पांच नाम, दुहा=दो प्रकार, ओहेण=ओघसे, सामान्य से, आहरण=उदाहरण, द्रष्टान्त

गाथार्थ:- वंदनकर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, विनयकर्म, और पूजाकर्म इस प्रकार गुरुवंदन के पांच नाम है। पूनः प्रत्येक नाम ओघसे (सामान्यतः) द्रव्य से और भावसे, दो प्रकार से द्रष्टांत जानना ॥१०॥

विशेषार्थ :- घट के जिस प्रकार घट कुंभ-कलश इत्यादि अलग अलग नाम है, लेकिन घट वस्तु एक ही है, वैसे ही वंदन कर्म, चितिकर्म आदि भी गुरुवंदन के पर्यायवाची नाम है। फिर भी व्युत्पत्ति कें भेदसे यत् किंचित् भिन्नता है, वो इस प्रकार है।

॥ गुरु वंदन के पांच नामो के अर्थ ॥

(१). प्रशस्त मन, वचन, काया के द्वारा (वंदना)स्तवना करना, उसे वंदनकर्म कहा जाता है।

(२). रजोहरण (ओघा) आदि उपधि सहित शुभ कर्म का चिति=संचयन करना उसे चितिकर्म कहाजाता है।

(३). मोक्ष के लिए नमस्कार, नमन आदि विशिष्ट क्रियाएँ करना उसै कृतिकर्म कहाजाता है।

(४). मन, वचन और काया के द्वारा प्रशस्त व्यापार उसे पूजाकर्म कहाजाता है।

(५). जिसके द्वारा कर्मोका विनाश हो वैसी (गुरु के प्रति अनुकुल प्रवृत्ति) उसे विनयकर्म कहा जाता है। (आवश्यकवृत्तिः)

अवग्रह २ के स्थान पर एक ही गिनाया है, अर्थात् कुल ३०० भेद नही गिनाये है । और मान[1] अविनय[2], निंदा[3] (रिंवसा), नीचगोत्र[4] बंध,-अबोधि[5],-तथा भववृद्धि[6]-आदि ६ दोष वंदन नही करने वाले को विशेष गिनाये हैं-अतः (४१२-३००=११२+६)=११८ बोल गिने है।

(धर्म० सं० वृत्तिः)

पांच गुरुवंदन द्रव्य से और भाव से

यहाँ पर द्रव्य शब्द अप्राधान्य वाचक, और भाव शब्द प्रधान्य वाचक (उत्तम-श्रेष्ठ अर्थवाला) रामजना । जो वंदनादि क्रियाएँ सम्यक् प्रकार के फल को न दे सके, उसे द्रव्य गुरु वंदना-समजना ।

सम्यक् प्रकार के फल को दे सके वैसी वंदनादि क्रिया भाव वंदना समजना। अर्थात् मिथ्याद्रष्टि जीव की गुरुस्तवना, तथा उपयोग रहित सम्यगद्रष्टि की गुरुस्तवना वह द्रव्य वंदन कर्म है। और उपयोग पूर्वक सम्यगद्रष्टि द्वारा की गयी गुरुस्तवना भाव वंदन कर्म है।

तथा तापस विगेरे मिथ्याद्रष्टि जीवोंकि तापसादि योग्य उपधि उपकरण पूर्वक कुशल क्रिया, अर्थात् तापसादि के उपकरणों का संचय (ग्रहण) और उसके द्वारा तापसादि क्रिया,और सम्यगद्रष्टि जीवों की उपयोग रहित रजोहरणादि उपधि पूर्वक कुशल क्रिया उसे द्रव्य चिति कर्म समजना। और उपयोग पूर्वक सम्यग् द्रष्टि की रजोहरणादि उपकरण पूर्वक की क्रिया भावचिति कर्म है।

तथा निह्न व विगेरे (मिथ्याद्रष्टि) की और उपयोग रहित सम्यगं द्रष्टि की नमस्कार-क्रिया द्रव्य कृति कर्म है और उपयोग पूर्वक सम्यग् द्रष्टि की नमस्कार (नमन) क्रिया वह भाव कृति कर्म है।

तथा मिथ्याद्रष्टिओं की और उपयोग रहित सम्यगद्रष्टिओं की मन-वचन-काया के विषय की क्रिया द्रव्य पूजा कर्म है, और उपयोग पूर्वक सम्यग् द्रष्टि जीवों की प्रशस्त, मन-वचन-काया संबंधि क्रिया भावपूजा कर्म है।

तथा मिथ्याद्रष्टिओं का और उपयोग रहित सम्यग् द्रष्टि जीवों का गुरुविनय द्रव्य विनय कर्म है, और उपयोग पूर्वक सम्यग् द्रष्टि द्वारा किया गया गुरुवंदन भाव विनय कर्म कहलाता है।

(इति आव० वृत्ति० तथा प्रवचन सारोद्धार वृत्ति के अनुसार) इन पाँच में से इस भाष्य में मुख्य विषय तीसरे कृतिकर्म के विषय में है, इस प्रकार समजना।

यह पांच वंदन में से इस भाष्यमें मुख्य विषय तीसरा कृति कर्म संबधीत है ऐसा जाणना

***

(दूसरा द्वार पाँच वंदन के पांच द्दष्टान्त)

अवतरण :- दूसरे उदाहरण द्वार में द्रव्य व भावसे वंदन किसने किया ? उसके द्रष्टान्त दर्शाये गये है।

सीयलय खुड्डए वीरकन्ह सेवगदु पालए संबे ।
पंचे ए दिहुंता, किइकम्मे [1]दव्व भावे हिं ॥११।

शब्दार्थ :- शीयलय=शीतलाचार्य, खुड्डए=क्षुल्लकाचार्य,वीर=वीरक शालवी, कन्ह=कृष्ण, सेवग=दो राजसेवक, पालए=पालक, संबे=शाम्बकुमार, पंचे ए=ये प्रांच, दिहुंता=दृष्टान्त

गाथार्थ :- द्रव्य कृति कर्म व भाव कृति कर्म (अर्थात् पांच द्रव्य और पांच भाव गुरु वंदन) के विषय में अनुक्रम से शीतलाचार्य, क्षुल्लकाचार्य, वीरकशालवी और कृष्ण, दो सेवक व पालक और शाम्बकुमार का ये पांच दृष्टान्त है।

विशेषार्थ:- पूर्व गाथा में गुरु वंदन के द्रव्य व भाव से पांच नाम कहे है, उन्हें पांच दृष्टान्तो के द्धारा समजाया गया है। जिस में प्रथम दृष्टान्त में और दूसरे दृष्टान्त में एक ही मुनि ने अलग समय में प्रथम द्रव्य वंदन किया, और बाद में भाव वंदन किया, तथा शेष तीन दृष्टान्तो में एक ने द्रव्य वंदन किया दूसरे ने भाव वंदन किया-वह दर्शाया गया है।

(वंदन कर्म के विषय में शीतलाचार्य का द्रष्टान्त)

(१)[2]श्रीपुर नगर के राजवी शीतल ने श्री धर्मघोषसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की, गुरुने योग्य जानकर आचार्य पद दीया । जिससे शीतलाचार्य तरीके प्रसिद्ध हुए । शीतलराजा की बहेन शृंगार मंजरी के चार पुत्र थे, उन चारों ही पुत्रों को शृंगार मंजरी कहा करती थी कि तुम्हारे मामा ने संसार को छोड़कर आत्म कल्याण का मार्ग स्वीकार किया है, और संसार वस्तु तः असार है, इस प्रकार माँ की उपदेश मयी वाणी सुनकर चारों ही पुत्रों को वैराग्य उत्पन्न हुआ। चारों ने स्थविर भगवंत के पास दीक्षा ग्रहण की, और गीतार्थ बने ।

एकबार गुरु से अनुज्ञालेकर चारों ही विहार करते हुए जिस नगर में अपने मामा शीतलाचार्य विराजमान थे वहाँ पर आये । लेकिन संध्या समय हो जाने के कारण नगर के बाहर ही रहे, और किसी श्रावक के द्धारा समाचार भिजवाये कि "आपके भाणेज मुनि आपको को वंदन करने के लिए आये है", यहाँ पर रात्रि के समय ध्यानस्थ चारों ही मुनिओंको केवलज्ञान हो गया। शीतलाचार्य को इस बात का पता नही चला।

(१) इस गाथा में (कृति कर्म (किईकम्म) शब्द पांच वंदन मे से मात्र तीसरे वंदन के अर्थ वाला ही नही है, अपितु सामान्य से 'गुरुवंदन' ऐसे अर्थ वाला है।

(२) श्री ज्ञान विमलसूरि कृत बालाव बोध में हस्तिनापुर पुर इत्यादि नामो का उल्लेख है, लेकिन अन्य किसी ग्रंथ में नही दिखाई देने से यहाँ पर नही कहे हैं।

सुबह में इन्तजार करने पर भी भाणेज मुनि वंदन करने के लिए नही आये, तब स्वयं शीतला चार्य भाणेज मुनिओं के पास आये। भाणेज मुनि केवली थे अतः उन्होने आचार्य का योग्य सत्कार नहीं किया। जिससे शीतला चार्य ने रोष सहित उन्हे अविनयी और दुष्ट शिष्य जानकर स्वयं ने उनको वंदन किया। (यह द्रव्य वंदन कर्म समजना) तब केवलि मुनिओने कहा कि 'ये तो द्रव्य वंदना हुई, अब भाव वंदना करो।' शीतलाचार्य

ने पूछा 'आपने कैसे जाना ?' केवली ने कहा ज्ञान से, शीतलाचार्य ने पूछा किस ज्ञान से ? केवली ने कहा अप्रतिपाति ज्ञान से,। इस प्रकार सुनते ही शीतलाचार्य का क्रोध शान्त हो गया। और केवलि मुनिओ के चरणों में मस्तक झुकाकर अपराध की क्षमा मांगने लगे। शीतलाचार्य शुभभावों पर आरुढ हुए, और केवलज्ञान प्राप्त किया ये उनका भाव वंदन कर्म है (प्रव० सारो० वृत्ति) ॥ इति प्रथम दृष्टान्त ॥

॥ २ चितिकर्म में क्षुल्लकाचार्य का दृष्टान्त ॥

श्री गुणसुंदरसूरि नाम के आचार्य ने एक क्षुल्लक मुनि (लघुवय वाले मुनि को) को संघकी अनुमति से आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। और कालधर्म को प्राप्त हुए। सभी गच्छवासी मुनि क्षुल्लकाचार्य की आज्ञा का पालन करने लगे। क्षुल्लकाचार्य भी गीतार्थ मुनिओं के पास श्रुत अभ्यास करते है। एक बार क्षुल्लकाचार्य को मोहनीय कर्म के उदयसे चारित्र छोड़ने की ईच्छा हुई। एक मुनि को साथ लेकर देहचिंता का बहाना बनाकर जंगल में गये। साथ में आये मुनि वृक्ष की ओट मे खड़े रहे। क्षुल्लकाचार्य आगे चलते ही गये चलते एक सुन्दर वन में पहुचे, वहाँ अनेक उत्तम वृक्ष थे, फिरभी एक चबुतरे वाले खेजड़े के वृक्ष की लोग पूजा कर रहे थे। वो विचार करते है इस वृक्ष की पूजनीयता में इसका चबुतरा (पीठिका) ही मुख्य कारण है। वर्ना ये दूसरे वृक्षों को भी पूजते। लोगो को पूछने पर भी जवाब मिला कि हमारे पूर्वज इसे पूजते आये है, इसलिए हमभी इस खेजड़े को पूज रहे है। इस प्रकार सुनकर क्षुल्लकाचार्य ने विचार किया कि 'इस खेजड़े की तरह मै भी निर्गुण हूँ। गच्छ के अंदर तिलक, बकुल आदि उत्तम वृक्षों के समान अनेक राजकुमार मुनि है। फिरभी गुरुने उनको आचार्य पद नही दिया और मुझे दिया,। जिसके कारण गच्छ के मुनि मुझे पूजते है। क्षुल्लकाचार्य विचार करने लगे, मेरे में श्रमणभाव तो बिलकुल नही है, लेकीन रजोहरण आदि उपकरण मात्र रुप मेरे चितिगुण के कारण, और गुरु ने मुझे आचार्य पद दिया है, इसी कारण पूजते है। "इस प्रकार विचार कर पुनः वापस उपाश्रय आये। ढूंढने आये मुनिओं को कहा कि" देहचिंता के लिए जाते समय अकस्मात् शुल वेदना उत्पन्न हुई, इसलिए इतना विलंब हुआ इस प्रकार

उत्तर दिया बादमें गच्छ स्वस्थ बने। और क्षुल्लकाचार्य प्रायश्चित्त अंगीकार कर शुद्ध बने यहाँ क्षुल्लकाचार्य की व्रत छोड़ने की भावना के समय उनके रजोहरणादि उपकरणो का चिति=संचय उसे द्रव्य चितिवंदन कहे , और प्रायश्चित रुप इन्ही उपकरणो का संचय उसे भावचितिवंदन समजना। (आव० वृत्ति और प्र० सारो० वृत्ति के अनुसार)

(इति द्वितीय दृष्टान्त)

॥ ३ कृतिकर्म पर कृष्ण और वीरक का दृष्टान्त ॥

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव और उनका मुखारविन्द देखकर ही बादमें भोजन करने वाला वीरक नाम का कोली राजसेवक रहता था। चातुर्मास दरम्यान कृष्ण वासुदेव राजमहेल से बाहर नही निकलते थे। दर्शन के अभाव में वीरक शालापति की काया दुर्बल होती गयी। चातुर्मास के पश्चात राजा-मंत्री विगेरे दर्शन के लिए आये, वीरक शालापति भी आया। कृष्ण ने उसे दुर्बलता का कारण पूछा। वीरक ने कहा "आपके दर्शन किये विना भोजन नही करुंगा, ऐसा मेरा संकल्प है।" और आप चार महिने तक राजमहेल से बाहर पधारे ही नही। मैने चार महिनो तक अन्न पान ग्रहण नही किया यही दुर्बलता का कारण है। इस प्रकार सुनकर कृष्णने वीरक को अनुमति लिये बिना अंतःपुरमें प्रवेश की अनुमति दी।

कृष्ण की जो जो पुत्री विवाह के योग्य होती थी। उसकी माता उसे सोलह श्रृंगार पहेनाकर कृष्ण के पास भेजती थी। कृष्ण उसे प्रश्न पूछते 'तुझे राणी बनना है या दासी'? 'राणी बनना है,' इसप्रकार जो पुत्री उत्तर देती उसे कृष्ण महोत्सव पूर्वक प्रभु नेमिनाथ के पास दीक्षा दिलवाते थे। एक बार माता की सिखामण से पुत्रीने कृष्ण से कहा 'मुझे दासी बनना है,' "तब कृष्ण ने उसका विवाह विरक के साथ करवा दिया। और वीरक को आज्ञा कि" 'इससे अधिक से अधिक घरेलु काम काज करवाना।' वीरक उससे बहुत काम करवाने लगा अंत में परेशान होकर उसने वीरक से कहा 'मुझे राणी बनना है,' तब वीरकने उसे दीक्षा दिलवायी। इस में कृष्ण का एक ही ध्येय था मेरी कोई भी पुत्री दुर्गति में न पड़े। एक बार श्री नेमिनाथ प्रभु रैवतगिरि (गिरनार) समवसरे (पधारे) तब कृष्ण वासुदेव बहुत से राजा और वीरक शालापति प्रभु को वंदन करने के लिए गये। कृष्ण ने सर्व साधुओं को द्वादशावर्त वंदन किया। अन्य राजा तो थककर कुछेक मुनिओं को वंदन कर बैठ गये। लेकिन विरकशालवि ने कृष्ण का अनुसरण करते हुए वंदन किया। कृष्ण भी बहुत थक गये, तब प्रभु से कहने लगे, 'हे प्रभु ३६० संग्राम में भी मुझे इतनी थकान, नही लगी।'

प्रभुने कहा है 'कृष्ण तुने वंदन के निमित्त से क्षायिक सम्यक्त्व व तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया है।' 'इतना ही नही सातवीं नरक का आयु 'टुट करके तीन नरक का रहा है।' यहाँ पर कृष्ण की द्वादशावर्त वंदना भाव कृतिकर्म है। और कृष्ण का मन रखने के लिए वीरक द्वारा की गयी वंदना, द्रव्य कृतिकर्म है।

॥ ४ विनयकर्म पर दो राजसेवक का दृष्टान्त ॥

किसी गाँव में दो राजसेवक अपनी अपनी सीमा के विवाद को सुलझाने के लिए राजदरबार की तरफ जा रहे थे, रास्ते में उन्हे मुनि भगवन्त के सुकुन हुए। दोनो में से एक ने मुनि को प्रदक्षिणा देकर, वंदन किया । मेरा कार्य अवश्य हो जायेगा इस प्रकार चिन्तन करते हुए राजदरबार में गया । दूसरे सेवक ने भाव रहित अनुकरण करते हुए वंदना की, और राजदरबार में गया। न्याय भाव वंदना करने वाले के पक्ष में हुआ। याने वह विजयी बना और दूसरे का पराजय हुआ। यँहा प्रथम राजसेवक की वंदना भाव विनय कर्म है। और दूसरे की अनुकरण वंदना द्रव्य विनयकर्म है।

॥ ५ पूजाकर्म पर पालक और शाम्ब का दृष्टान्त ॥

कृष्ण वासुदेव के पालक और शाम्बकुमार विगेरे अनेक पुत्र थे। एकदा नेमिनाथ प्रभु द्वारिका नगरी में समवसरे। तब कृष्ण ने अपने पुत्रों से कहा कि 'जो प्रभु को प्रथम वंदना करेगा, उसे मैं अपना अश्व दूंगा।' शाम्बकुमार ने प्रातः काल में शैय्या का त्यागकर वहीं पर वंदना की, और पालक तो अश्व प्राप्ति की लालच में, प्रातः काल में शीघ्र उठकर अश्व पर सवार होकर प्रभु को वंदन करने गया। पालक अभव्य था अत: चित्त में अश्व प्राप्ति की सिर्फ लोभ वृत्ति थी। कृष्ण ने प्रभु से पूछा। "आपको प्रथम वंदना किसने की?' प्रभुने कहा" 'पालक कुमार ने प्रथम यहाँ पर आकर वंदना की, और शाम्बकुमार ने घर बैठे भाववंदना की है।' यह सुनकर कृष्णं ने शाम्बकुमार को अश्वरत्न दीया । यहाँ शाम्बकुमार की वंदना भाव पूजा कर्म है। और अभव्य पालक की लालच वृत्ति वाली वंदना द्रव्य पूजाकर्म है।

इन पांचो ही वंदना के विषय यद्यपि समान है फिरभी प्रथम वर्णित व्युत्पत्ति अर्थवाली क्रियाओंकी मुख्यता ध्यानमें रखकर, तथा प्रकारकी वंदना अलग अलग नामवाली जानना।

---

१. कर्म प्रकृति आदि में उदय में नहि आयाहुआ आयुष्य तूटता नही हैं (कम होता नहीं) ऐसा कहा हैं, फीर भी श्री भगवतीजी आदि सूत्र में कृष्ण ने नरकायु कम किया है ऐसा स्पष्ट कहा है वह अपवाद या आश्चर्य रुप जाणना

तीसरा द्वार (५ अवंदनीय साधु)

अवतरण:- इस गाथा में पांच अवंदनीय साधु का तीसरा द्वार कहा गया है।

पासत्थो ओसन्नो, कुसील संसत्तओ अहाछंदो ।
दुग-दुग-ति-दु-णेगविहा,अवंदणिज्जा जिणमयंमि ॥१२॥

शब्दार्थ:- शब्दों के अर्थ गाथार्थ वत् सुगम है।

गाथार्थ:- पार्श्वस्थ (पाशस्थ) अवसन्न, कुशील, संसक्त और यथाछंद (ये ५ प्रकार के साधु अनुक्रम से) २-२-३-२ अनेक प्रकार के है, और वे जैनदर्शन के विषय में अवंदनीय (वंदन के अयोग्य) कहे गये है। ॥१२॥

विशेषार्थ:- पांच अवंदनीय पार्श्वस्थादि साधुओं का किंचित् स्वरुप इस प्रकार है।

(१)पार्श्वस्थ (पाशस्थ) साधु के २ भेद है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र के पार्श्व=पास में, स्थ=रहे (ज्ञानादि को पास में रखे लेकिन आचरण नही करे) उसे पाशस्थ कहते है। अथवा कर्म बंधन के हेतुरुप मिथ्यात्व विगेरे के पाश= (जाल) में रहे उसे पार्श्वस्थ कहते है। ये दो प्रकार के हैं

(१) सर्व पाशस्थ (२) देश पाशस्थ

(१) सम्यग् दर्शन ज्ञान-चारित्र से रहित केवल वेशधारी हो उसे सर्व पाशस्थ कहते है।

(२) शय्यातराहृत पिंड[1], राजपिंड[2], नित्यपिंड[3], तथा अग्रपिंड[4] विगेरे को बिना कारण से उपयोग करे, [5]कुलनिश्रा में विहार करे, [6]स्थापना कुल में प्रवेश करे, संखड़ी (गृहस्थों के जिमनवार) देखता फिरे, और गृहस्थों की स्तवना करे, ऐसे साधु को देश पाशस्थ कहा गया है। ये दोनो ही प्रकार के पार्श्वस्थ साधु अवंदनीय है।

---

(१) जिसके मकान में रहे हों, उसके घर से आहार लेना, उसे शय्यातराहृत पिंड कहते है।

(२) राजा या मुख्य अधिकारी के घर का आहार लेना, उसे राजपिंड कहते है।

(३) एक ही घर से प्रथम की हुई निमंत्रणा के अनुसार प्रतिदिन आहार लेना उसे नित्यपिंड कहा जाता है।

(४) चावल विगेरे पदार्थ का उपरी भाग (गृहस्थ अपने लिए आहार रखे उससे पहले) आहार रुप में लेना उसे अग्रपिंड कहते हैं

(२) अवसन्न (अवंदनीय) साधु के २ भेद

अवसन्न :- साधु समाचारी मे जो अवसन्न (शिथील) हो उसे अवसन्न कहते है। इसके दो भेद है।

(१) सर्वसे अवसन्न (२) देश से अवसन्न

(१) सर्वसे अवसन्न:- [७]ऋतुबद्ध काल में पिठफलक दोष का उपभोगी हो और [८]स्थापना भोजी, और [९]प्राभृति भोजी हो उसे सर्व से अवसन्न कहते हैं

(२) देशसे अवसन्न:- प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना, स्वाध्याय, भिक्षाचर्या ध्यान, उपवासादि, [१०]आगमन, [११]निर्गमन, [१२]स्थान, बैठना और शयन विगेरे साधु के योग्य सामाचारी का आचरण न करे, अथवा करे तो न्युनाधिक करे या गुरु के वचन से करे, उसे देशसे अवसन्न कहते है। दोनो ही अवंदनीय है।

॥ (अवंदनीय) कुशील साधु के ३ भेद ॥

कुशील:- कुत्सित (खराब) आचार वाले को कुशील साधु कहते है। उसके तीन भेद है।

(१) ज्ञान कुशील:- 'काले विणए बहुमाणे' इस गाथा में दर्शाये हुए आठ प्रकार के ज्ञानाचार की विराधना करे, उसे ज्ञान कुशील कहते है।

---

(५) ये मेरे समुदाय के, या मेरे भक्त हैं ऐसा समज कर उसी के घर आहार के लिए जाना उसे कुलनिश्रा कहते है।

(६) गुरु विगेरे की विशेष भक्ति करने वाले समुदाय (कुल) उसे स्थापना कुल कहते हैं। इस प्रकार पार्शस्थ साधु दो प्रकार के होने से कितनेक आचार्य उन्हे सर्वथा चारित्र से रहित ही मानते है। ये अयुक्त है। (प्रवचन सारो द्धार वृति)

(७) वर्षा ऋतु में संथारे के लिए पाट की सुलभता न होने पर, बम्बू की पट्टियों से पाट बनाकर संथारा करना पड़ा हो, लेकिन धागे का बंध छोड़कर प्रतिदिन प्रतिलेखना करनी चाहिये। और ऐसा न करे उसे ऋतुबद्ध पीठफलक दोष, अथवा वारंवार शयन के लिए संथारा करे या संथारे को संपूर्ण दिन बिछाया हुआ रखे उसे ऋतुबद्ध पीठफलक दोष कहते हैं।

(८) साधु के लिए आहार लाकर रखना स्थापना भोजी

(९) स्वयं को इष्ट या मुनि को प्रिय आहार हो उसे बहुमान पूर्वक वहोरावे उसे प्राभृतिका, उसका भोजन करे।

(१०) उपाश्रय में प्रवेश करते समय पग प्रमार्जना विधि तथा निसीहि कहने की विधि है, उसे आगम समाचारी कहते है।

(११) उपाश्रय निकलते समय आवस्सहि विगेरे कहना उसे निर्गमन समाचारी कहते हैं।

(१२) कायोत्सर्ग के समय खड़े रहने की विधि उसे स्थापना समाचारी कहते है।

(२) दर्शन कुशील:- 'निस्संकिअ निक्कंखिय' इस पदकी गाथा में दर्शाये गये, आठ प्रकार के दर्शनाचार की विराधना करे उसे दर्शन कुशील कहते हैं।

(३) चारित्र कुशील:- मंत्र तंत्र कर चमत्कार दिखावे, स्वप्न फल दर्शावे, ज्योतिषसे लोगो को भरमावे भूत-भावी लाभ हानी दर्शावे, जड़ी बुट्टी से उपचार करे, स्वयं की जाति कुल को दर्शावे, स्त्री पुरुष के लक्षण कहे, कामण-वशीकरण करे, स्नानादि से शरीर विभूषा करे, इत्यादि अनेक प्रकार से चारित्र विराधना करे उसे चारित्र कुशील कहते हैं। ये तीनो ही प्रकार के अवंदनीय हैं।

॥ ४ (अवंदनीय)। संसक्त साधु के दो भेद ॥

संसक्त :- गुण और दोष द्धारा संयुक्त याने मिश्र हों उसे संसक्त कहते है । जिस प्रकार गाय खल-कपासिये का मिश्र बना हुआ **आहार** खाती है, वैसे ही संसक्त साधु मूलगुण (=५ महाव्रत) और उत्तर गुण (पिंडविशुद्धि, आहारशुद्धि) रुप गुणो में अधिक दोष वाले होते है। उसके दो भेद

(१) संक्लिष्ट संसक्त:- प्राणातिपातादि पांच आश्रवयुक्त, रस गारवादि (रस-त्रुद्धि-शाता) गारवयुक्त, स्त्री और गृहयुक्त इत्यादि दोष युक्त होते है, उसे संक्लिष्ट संसक्त कहते है।

(२) असंक्लिष्ट संसक्त:- पार्श्वस्थ के पास जानेपर उसके समान गुणवाला बनजाता है और संविज्ञ साधुओं की निश्रा में रहे तब उनके समान गुण धर्म हो वैसे आचार-विचार वाला हो जाता हो। अर्थात जहाँ जाता है, वहा वैसा बनजाता है उसे असंक्लिष्ट संसक्त कहते है।

॥ (५) (अवंदनीय) यथाछंद साधु के अनेक भेद ॥

यथाछंद :-जो उत्सूत्र प्ररुपणा करता फिरे, स्वयं की बुद्धि अनुसार अर्थ का प्रतिपादन करे, गृहस्थ के कार्यमें मन रखे, अन्य साधु के और शिष्य का अल्प अपराध होने पर भी उस पर वारवार क्रोध करे, स्वयं की मति कल्पनानुसार आगम का अर्थ विचार कर विगई विगेरे पदार्थ का आनंदमय भोग करता हुआ विचरे, इत्यादि अनेक प्रकार के लक्षण युक्त हो उसे यथा छंद साधु कहते है।

यथा छंद=आगम की अपेक्षा रहित स्वयं की मति कल्पना से चलने वाला।

इस प्रकार पार्श्वस्थादि साधुओं को वंदन करने से कीर्ति या कर्म निर्जरा नही होती है, सिर्फ कायक्लेश और कर्म बंध ही होता है। (विशेष भावार्थ आवश्यक निर्युक्ति में विशेष दीया गया है) फिरभी ज्ञान दर्शन-चारित्रादिक के प्रगाढ कारण से किसी समय पार्श्वस्थादिक

को भी वंदन करने के लिए कहा है। उसका कारण यह है कि पार्श्वस्थादि साधु यद्यपि चारित्र रुप गुण से दूर है। फिर भी सम्यक्त्व भ्रष्ट नही है, प्रभु के वेश के धारक है, इसलिए साधुवेष देखकर भी इनको वंदना करनी चाहिये, इस प्रकार कितनेक आचार्योका मत है। लेकिन , इस अभिप्राय से की हुई वंदन प्रायः करके अनर्थवाली होती है, इस विषय पर चर्चा विचारणा आवश्यक निर्युक्ति में से जानने योग्य है। तथा प्रमाद वाले पार्श्वस्थादि साधु को वंदन करने से उसके सभी प्रमादस्थान वंदनीय बनते है अतः प्रमादी मुनि अवंदनीय है। तथा पार्श्वस्थादि का संग करने वाले साधु भी अवंदनीय है।

प्रश्न:- परिचय मे आये हुए साधुओं को तो पार्श्वस्थादि लक्षण युक्त जानकर वंदन नही करेंगे, लेकिन अपरिचित साधु भगवन्त गाँव मे पधारें तो उनको वंदना करनी चाहिये या नही ?

उत्तर:- पूर्व परिचय में नही आये हुए मुनि भगवन्तों को प्रथम तो उचित विनय और वंदनादि करना उचित है। लेकिन शिथिल हैं, ऐसा ज्ञात होने पर वंदनादि करना उचित नही है। इस के बारे में आवश्यक निर्युक्ति में जो उपयोगी चर्चा है, उसका स्पष्ट संक्षिप्त सार इस तरह है ।

१) प्रश्न:- अध्यवसाय की विशुद्धि से ये सुसाधु हैं। और अविशुद्धि से ये पार्श्वस्थादि पतित साधु हैं, इस प्रकार जाणना हम छद्मस्थों के लिए मुश्किल है। इसलिए हम तो उन्हे साधुवेष देखकर वंदना करे, तो क्या उचित है।

उत्तर:- यदि केवल साधुवेष देखकर ही वंदना करते हो तो, जमाली विगेरे मिथ्या दृष्टिओं को भी साधुवेष के कारण वंदना करनी पडेगी और ऐसे स्पष्ट मिथ्याद्रष्टिओ को साधुवेष होने पर भी वंदना करना निषेध है। इसलिए केवल साधुवेष ही वंदनीय है, इस प्रकार बोलना उचित नही है।

प्रश्न:- यदि वंदना करने में साधुवेष को मुख्य नही मानें तो छद्मस्थजीव साधु-असाधु को कैसे पहचानें ? बहुत सी बार असाधु भी साधुजैसी प्रवृत्ति वाला होता है, और किसी समय कारण वशात् सुविहित साधु भी असाधु जैसी प्रवृत्ति वाला होता है, अतः साधुवेष को वंदना नही करे तो क्या करे?

(X) दंसणपक्खो सावय, चरित्तटठे य मंदधम्मे य । दंसण चरित्त पक्खो, समणे परलोग कंखम्मि इसमें 'मन्दधर्मेच ' पार्श्वस्थादौ इति वचनात् (आ. निर्युक्ति इस गाथा का भावार्थ:- श्रावक तथा कुछेक अनवस्थित साधु व पार्श्वस्थादि साधुओं में दर्शनपक्ष-सम्यक्त्व होता है। और परलोक की आंकाक्षावाले सुसाधु में तो दर्शनपक्ष (उपलक्षण से ज्ञानपक्ष)और चारित्र पक्ष दोनो ही (उपलक्षण से तीनो ही) होते हैं।

उत्तर:- अदृष्ट पूर्व (पूर्व परिचय में नही आये हुए अपरिचित) साधुओं को देखकर उनका अभ्युत्थानादि सत्कार अवश्य करना चाहिये। जिससे आनेवाला साधु ये नही कहे कि 'ये अविनीत है। तथा परिचित साधु उधत विहारी और शीतल विहारी दो प्रकार के होते है। उधतविहारी को अभ्युत्थानादि-वंदनादि यथायोग्य सत्कार करना चाहिये और शीतलविहारी को नही करना चाहिये, ये उत्सर्ग मार्ग है। उनको तो किसी गाढ कारण से (अति आवश्यक कारण से) अर्थात् अपवाद से, पर्याय, (ब्रह्मचर्य)- परिषद् पुरुष क्षेत्र-काल और आगमका विचार करके ही लाभालाभ को ध्यान मे रखकर वंदनादि सत्कार करना चाहिये।

प्रश्न:-जिस प्रकार तीर्थंकर में प्रतिमा की तीर्थंकर के गुण नही है, फिरभी (गुणों का आरोपण कर) साक्षात् तीर्थंकर मानकर वंदन पूजन करते है।, वैसे ही पार्श्वस्थादि साधुओं में साधु के गुणों का आरोपण करके उन्हे वंदना करें तो क्या उचित है?

उत्तर:-प्रतिमा में तो गुण अवगुण दोनो ही नही होने से उसे जिस प्रकार की गुणोवाली मानना चाहें मान सकते हैं। लेकिन पार्श्वस्थादि में तो अवगुण विद्यमान हैं, जिससे उनमें गुणों का आरोपण नही हो सकता । खाली पात्र में जो भरना चाहें वो भर सकते है, किन्तु भरे हुए पात्र में दूसरी वस्तु नही भर सकते, अतः प्रतिमा का दृष्टान्त इस स्थान पर घटाना उचित नही (इत्यादि स विस्तार चर्चा आव० नियुक्ति से जानना)

द्वार-४- (५ अवंदनीय)

अवतरण:- इस गाथा में ५ वंदनीय साधुओं का ४ था द्वार कहते हैं।

आयरिय उवज्झाए पवत्ति थेरे तहेव रायणिए।
किइकम्म निज्जरट्ठा, कायव्वमिमेसिं पंचण्हं ॥१३॥

शब्दार्थ:- निज्जर =निर्जरा के, अट्ठा=लिए , इमेसिं=इन

गाथार्थ:- आचार्थ-उपाध्याय-प्रवर्तक-स्थविर तथा रात्निक इन पांचको निर्जराके लिए वंदन करना (चाहिये) ॥१३॥

भावार्थ : आचार्य :- गण (गच्छ) के नायक सूत्र-अर्थ के ज्ञाता और अर्थ की वाचना देते हों उन्हे आचार्य कहते है।

उपाध्याय:- गण के नायक बनने के योग्य, (नायक के समान) सूत्र-अर्थ के ज्ञाता लेकिन वाचना सूत्र की देते हो, उन्हे उपाध्याय कहते हैं।

प्रवर्तक:- साधुओं को क्रिया कांड विगेरे में जोड़े (प्रवर्तावे) उसे प्रवर्तक कहते हैं।

स्थविर:- मुनिमार्ग से दुःरवी साधु और पतित परिणाम वाले साधुओं को अथवा प्रवर्तक ने जिसमार्ग की प्रेरणा की हो उस मार्ग से पतित परिणामी साधुओं को उपदेशादि से पुनः उसी मार्ग में स्थिर करे उसे अथवा वृद्धावस्था वाले हों उन्हे स्थविर कहते है।

रात्निक :- [1]पर्याय में बड़े हों उसे रात्निक या रत्नाधिक तथा (१) [2]गणावच्छेदक भी कहते है। इन पांचो में आचार्यादि चार (२) दीक्षापर्याय में न्यून हों तो भी उनको द्वादशावर्त्त वंदन कर्म निर्जरा के लिए करना चाहिये। तथा इन पांच को क्रमानुसार वंदन करना चाहिये। कितनेक आचार्यों का कहना है कि "सर्व प्रथम आचार्य को, फिर [3]रत्नाधिक अवस्था की योग्य मर्यादा अनुसार वंदन करनाअर्थात दीक्षापर्याय जिसका अधिक हो, उसे प्रथम वंदन करना चाहिये। (आव० निवृत्ति)

अवतरण:- वंदन किसको नही करना? किससे नही करवाना ? तत्संबध में ५ वां द्वार (=चार से वंदन नही करवाना) व (४ के पास वंदन करवाना) ६ ट्ठा द्वार इस गाथा में कहा जा रहा है।

५ वां ६ ट्ठा द्वार (कौन किसको वंदना करे न करे)

माय-पिय-जिट्ठभाया,-ओमावि तहेव सव्वरायणिए।
किइकम्म न कारिज्जा, चउ समणाई कुणंति पुणो ॥१४॥

शब्दार्थ:- ओम=उम्र मे छोटे, अवि=फिर भी अथवा, [1]मातामह, पितामह, कारिज्जा=(वंदन) करवाना

१. ज्ञानपर्याय, दीक्षापर्याय, और वयपर्याय ये तीन प्रकार के यथायोग्य पर्याय समजना

२ . आव० वृत्ति में गणा वच्छेदक को (गणी को) स्थविर समान गिना है। और भाष्य की अवचूरि में रत्नाधिक का ही दूसरा नाम गणावच्छेदक कहा है। वहाँ गच्छ के कार्य के लिए क्षेत्र उपधि आदि के लाभार्थ विचरनेवाले और सूत्र तथा अर्थ के ज्ञाता हों, उन्हे गणावच्छेदक कहा है।

३. रत्न अर्थात् दर्शन, ज्ञान चारित्र (इन तीन) में अधिक हो उसे, रत्नाधिक कहते है, लेकिन यहाँ चारित्र पर्याय में ज्येष्ट हो उसे रत्नाधिक जाणना । कहा है, इस प्रकार मुख्य अर्थ होने से रत्नाधिक को "दीक्षापर्याय में न्यून हो तो भी वंदन करना, ऐसा अर्थ युक्त नही है, कारण कि रत्नाधिक तो दीक्षा पर्याय सें अधिक ही होते हैं। इस प्रकार यहाँ माना है, अतः दीक्षापर्याय में न्युन ऐसे चार कहे है।

गाथार्थ:-दीक्षित माता, दीक्षित पिता, दीक्षितज्येष्ठ भाई (बड़ाभाई) विगेरे, तथा वय में छोटे हो फिरभी सभी रत्नाधिक (ज्ञान गुण से अधिक) इन चार से मुनि वंदन नहि करवावे।, लेकिन इन चार के अलावा शेष सभी श्रमण आदि से (साधु-साध्वी श्रावक श्राविका) वंदन करवावे, याने साधु आदि [२]चारों को वंदना करना ॥१४॥

विशेषार्थ:- अर्थ सुगम प्रकार का आचरण ज्ञानादि गुण का बहुमान है। और उचित व्यवहार है। है, लेकिन विशेष यह है कि-साधु बने हुए माता-पिता ज्येष्ठभाइ तथा, [१]मातामह पितामह से वंदन नही करवाना, चाहिये लेकिन गृहस्थावस्था में रहे हुए माता पितादिक वंदन करवाना तथा ज्ञानादि गुण में अधिक ऐसे रत्नाधिक लघु हों फिरभी उनसे वंदन नही करवाना, इस

७ वां-८ वां द्वार (५ निषेध ४ अनिषेध स्थान)

अवतरण:- इस गाथा में पांच स्थान पर वंदना नही करनी चाहिये। निषेध स्थान संबंधि ७ वाँ द्वार ।

विक्खित्त पराहुत्ते, [३]अपमत्ते, मा कयाइ वंदिज्जा।
आहारं निहारं , कुणमाणे काउकामे अ ॥१५॥

शब्दार्थ:- विक्खित्त=व्यग्रचित्त, व्याक्षिप्त, पराहुत्ते=पराङ्ग मुख हो, पमत्ते=प्रमाद मे हों, कयाइ=कदाचित, कभी भी, कुणमाणे=करते हो, काउकामे=करने की इच्छावाले हों,

गाथार्थ:- गुरु जब व्यग्र (धर्म कार्य की चिंता मे व्याकुल) चित्तवाले हों, पराङ्गमुख (सन्मुख बैठे न हों) हों, क्रोध, निद्रा विगेरे प्रमाद में हों, आहार -निहार करते हों, या करने की ईच्छा वाले हों, तब कभी भी गुरु वंदन नही करना ॥१५॥

विशेषार्थ:- व्यग्रचित्त गुरु को वंदन करने से धर्म का अंतराय, पराङ्ग मुख गुरु को वंदन से अनवधारण दोष, प्रमत्त भाव में वंदन करने से क्रोध, आहार करते हों और वंदन करने से आहार का अंतराय और निहार के समय वंदन करने से (लघुनीति, वड़ीनीति ठीक

१) मातामह, विगेर का ग्रहण आव० वृत्ति में (अवि)=अवि शब्द से किया है। और अवचूरि में माता-पिता का जिक्र उपलक्षण से किया है, (अर्थात माता, पिता कहने से मातामह=माँ के पिता, पितामह=पिता के पिता विगेरे से वंदन नही करवाना ।

२) आव० निर्युक्ति में वंदन करने वाले (वंदनदाता) साधुही होते है। इस प्रकार कहा है, ये बात साधु समाचारी के विषय में संभवित है।

३) अवचूरि आदि प्रतो में भी ये खूटता अ कार आव निर्युक्ति से लिया है।

से नही कर पाने से) अनिर्गमन, इत्यादि दोष प्राप्त होते है, अतः पाँच स्थान पर गुरु वदन नही करना चाहिये। ॥१५॥

अवतरण:-चार अनिषेध स्थान रुप (गुरु वंदन करने के ४ स्थान) दर्शाति गाथा।

८ वां द्वार

पसंते आसणत्थे अ, उवसंते उवट्ठिए ।
अणुन्नवित्तु मेहावी, किइकम्मं पउंजइ ॥१६॥

शब्दार्थ:- उवट्ठिए= उपस्थित, अणुन्नवित्तु=अनुज्ञा लेकर, मेहावी=बुद्धिमान, पउंजइ= करे, प्रयोजे,

गाथार्थ:- गुरु जब प्रशान्त (अव्यग्र) चित्त वाले हो, आसन पर बैठे हो, उपशान्त (क्रोधादि रहित) हो, और वंदन के समय शिष्य को 'छंदेण' इत्यादि वचन कहने के लिए उपस्थित (तत्पर) हो तब (इन ४ प्रसंग पर) बुद्धिमान शिष्य आज्ञा लेकर गुरु को वंदन करे। ॥१६॥

९ वां द्वार (गुरु वंदन के ८ कारण)

पडिकमणे सज्झाए, काउस्सग्गा-वराह-पाहुणए ।
आलोयण संवरणे, उत्तम (अ)ट्ठे य वंदणयं ॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार

गाथार्थ:-प्रतिक्रमण में, स्वाध्याय में, काउस्सग्ग में, अपराध खमाने में, बड़े साधु प्राहुणा पधारे उनको, आलोचना में, संवर में (प्रत्याख्यान के लिए) और उत्तम अर्थ में (याने संलेखनादि के लिए) गुरु को वंदन करना ॥१७॥

विशेषार्थ:-

१). प्रतिक्रमण के लिए :- प्रतिक्रमण में चार बार दो दो वांदणे दिये जाते है। उसे प्रतिक्रमण के लिए गुरु वंदन समजना।

२). स्वाध्याय के लिए:- गुरु से वाचना लेने समय प्रथम गुरु को वंदन किया जाता है उसे स्वाध्याय के लिए समजना।

* पट्ठवणाका पवेयण का और अध्ययन के बाद काल समय का गुरु वंदन, स्वाध्याय के ये तीन गुरु वंदन साधु समाचारी से जानने योग्य है।

३). काउस्सग्ग के लिए:- योगोद्वहन के समय आयंबिल को छोड़कर नीवी का पच्चक्खाण करने से पहले गुरु को वंदन किया जाता है उसे

४). अपराध क्षमा के लिए:- गुरु के प्रति जो अपराध हुऐ हों उन्हे खमाने के लिए प्रथम गुरु वंदन करना उसे अपराध के लिए जानना।

५). [1]पाहुणा के लिए:- वड़ील साधु प्राहुणा मेहमान पधारे तब प्राहुणा मेहमान [1]साधु को (सांभोगिक अर्थात समान समाचारीवाले हों तो गुरु को पूछकर और असांभोगिक हो तो प्रथम गुरु को वंदन करके पूछे, और गुरु आदेश देंवे तो) वंदन करना उसे प्राहुणा साधु के लिए समजना ।

६). [2]आलोचना के लिए:-अतिचार-अनाचार का आलोचनादि प्रायश्चित [1]अंगीकार करना हो तब प्रथम गुरु को वंदन करना उसे आलोचना के लिए समजना।

७). प्रत्याख्यान के लिए:-विहार गमन के समय प्रथम गुरु को वंदन करना उसका समावेश भी इसी भेद में होता है। तथा अधिक आगार वाले एकाशनादि पच्चक्खाण को भोजन करने के बाद कम आगार का करना, वह दिवस-चरिम पच्चक्खाण रुप संवर (=संक्षेप), अथवा नमुक्कारसहियं आदि लघुपच्चक्खाण के स्थान पर (उसे बदलकर) उपवासादि का पच्चक्खाण करना उसे भी संवर कहाजाता है, संवर अर्थात प्रत्याख्यान करने से पूर्व गुरु को प्रथम वंदन करना उसे प्रत्याख्यान के लिए समजना ।

८) उत्तमार्थ के लिए:- अनशन तथा संलेखण (रुप उत्तम अर्थ माने प्रयोजन) अंगीकार करने के लिए प्रथम गुरु वंदन करना उसे उत्तमार्थ के लिए समजना ।
इस प्रकार ८ कारण से गुरु वंदन करना चाहिये।

---

१) इस में प्राहुणा मुनि लघु हो तो उन्हे ही वंदन करना, और प्राहुणा ज्येष्ठ हों तो तो वहाँ पर रहे हुए लघुमुनि उन्हे वंदन करे।

२) आलोचनायां विहारापराधभेद भिन्नायां उति आव० वृत्ति वचनात् !

(१) चत्तारि पडिक्कमणे, किइकम्म तिन्नि हुंति सज्झाए।

पुव्वन्हे, अवरन्हे, किइकम्मा चउदस हवति ॥ आ० नि० १२०१॥

एव मेतानि ध्रुवानि प्रत्यहं कृतिकर्माणि चतुर्दश भवंति इति आव० वृत्ति०

इसमें प्रतिक्रमण के ४ और स्वाध्याय के ३, ये सात वंदन दिन के पूर्वार्ध भाग के और उत्तरार्ध भाग के [३]१४ ध्रुव वंदन है। जिन्हे प्रतिदिन करना चाहिये और शेष कायोत्सर्गादि के वंदन यथायोग्य कारणो के प्रसंग पर करने योग्य से अध्रुव वंदन है।

अवतरण:- इस गाथा मे २५ आवश्यक रुप १० वाँ द्धार कहा गया है।

दोऽवणयमहाजायं, आवत्ता बार चउसिर तिगुत्तं ।
दुपवेसिग निक्खमणं, पणवीसावसय किइकम्मे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ :- अवणयं=अवनत, नमन, अहाजायं=यथाजात, आवत्ता= आवर्त्त, दुपवेस= दो प्रवेश,इगनिक्खमणं=१ निष्क्रमण (निकलवुं), पणवीस=पच्चीस, आवसय=आवश्यक,

गाथार्थ:- २ अवनत, १यथाजात, १२ आवर्त्त, ४ शीर्ष, ३ गुप्ति २ प्रवेश, और १ निष्क्रमण (निर्गमन) इस प्रकार द्धादशवर्त्त वंदन में २५ आवश्यक हैं।

विशेषार्थ:-अवश्य करने योग्य क्रियाओं को आवश्यक कहा जाता है। यहाँ गुरु वंदन सूत्र बोलते समय २५ आवश्यक करने योग्य हैं। वो इस प्रकार हैं।

२ अवनत:-गुरु को वंदन करने की भावना प्रगट करने के लिए इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए इन पांच पदों द्धारा किंचित मस्तक (शरीर सहित) झुकाना उसे अवनत कहाजाता है। प्रथम वंदन के समय प्रथम अवनत, और दुसरी बार अवग्रह में प्रवेश करते समय वंदन करते समय दूसरा अवनत भी इन्ही पांच पदों के उच्चार पूर्वक किया जाता है।

१. यथाजात:- यंथा=जिस प्रकार, जात=जन्मा हो=याने जन्म समय की मुद्रा वाला बनकर गुरु वंदन करना, उसे यथाजात आवश्यक कहाजाता है।

जन्म दो प्रकार का होता है। **(१) दीक्षा जन्म (२) भवजन्म**

१) दीक्षाजन्म:-संसार की माया रुप स्त्री के कुक्षी से जन्म लेना याने संसार का त्याग कर दीक्षा ग्रहण करना उसे दीक्षाजन्म कहते है।

२) भवजन्म:- माता की कोख से बाहर निकलना उसे भवजन्म कहते है।

यथाजात आवश्यक में दोनो ही जन्म मुद्रा का प्रयोजन है वो इस प्रकार:-दीक्षाजन्म के समय (दीक्षा ग्रहण करते समय) चोलपट्ट (कटिवस्त्र) रजोहरण (ओधा) और मुहपत्ति ये तीन वस्त्र ही होते हैं, वैसे ही द्वादशावर्त्त वंदन के समय भी इन्ही तीन उपकरणों को उपयोग करना, और भवजन्म के समय जिस प्रकार ललाट पर दोनो हाथ स्थापित कर जन्म लिया हो, वैसी मुद्रा द्वारा गुरु वंदन करना उसे यथाजात आवश्यक कहाजाता है।

१२ आवर्त्त:- (वंदन सुत्र के कुछेक पदों के उच्चार पूर्वक गुरु के चरणो पर व मस्तक पर हाथों से स्पर्श करना) काय व्यापार विशेष उसे आवर्त्त कहते हैं।

१२ पदों द्वारा १२ आवर्त्त उस प्रकार है। **(१) अहो (२) कायं (३) काय संफासं, खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो** (४) जत्ताभे **(५) जवणि (६) ज्जं च भे** ये ६ आवर्त्त प्रथम बार अवग्रह में प्रवेश करते समय किये जाते हैं, और अवग्रह से बाहर निकलकर पूनः दूबारा अवग्रह में प्रवेश करते समय ये ६ आवर्त्त वापस बोले जाते है। ६+६=१२ आवर्त्त

* इन छ आवर्तो में प्रथम तीन आवर्त्त अहो कायं इस प्रकार दो दो अक्षर वाले समजना, उससे प्रथम अक्षर के उच्चार के समय दोनो हथेलियों को उल्टी कर गुरु के चरणों पर लगाना, और दूसरे अक्षर के उच्चार के समय दोनो हथेलियों को सिधीकर ललाट पर स्पर्श करना । इस प्रकार तीन बार करना प्रथम तीन आवर्त्त होते है। और दूसरी बार जत्ता भे, जवणि, ज्जं च भे तीन तीन अक्षरों वाले दूसरे तीन आवर्त्त है। (उसमे प्रथम और तीसरे अक्षर के उच्चार के समय प्रथम की रीत अनुसार करनी और दूसरे अक्षर के उच्चार के समय मध्य में थोड़ा विश्राम लेना (अटकना), यहाँ तीसरे आवर्त में संफासं पद और चोथे आवर्त्त में खमणिज्जो से वइक्कंतो तक के पद काय व्यापार पूर्वक तथा आवर्त्त नही गिने गये फिर भी सुत्र का अस्खलित संबंध दर्शाने के लिए इन पदो को आवश्यक वृत्ति में जिस प्रकार दर्शाये है, वैसे ही लिखे है। लेकिन आवर्त्त तो-दो और तीन अक्षरो के ही समजना ।

४). शीर्षः- यहाँ शीर्ष मात्र कहने से भी गुरु दो बार किंचित मस्तक झुकावे, और शिष्य दो बार विशेष मस्तक झुकावे-(दो बार संफासं पद बोलते समय) अर्थात गुरु व शिष्य के दो दो शीर्ष नमन=इस प्रकार ४ शीर्ष नमन-

यहाँ कितनेक आचार्य दो बार के खामणा समय के दो और संफासं के समय के दो इस प्रकार ४ शिर्ष नमन शिष्य के मानते है।

प्रश्नः- दोअवनत भी शीर्ष नमन ही हैं, और चार शीर्ष नमन भी शीर्ष नमन है फिर इन दोनो आवश्यकोमें क्या फर्क ?

उत्तरः- अवनत आवश्यक में शिष्य के किंचित मस्तक झुकाने की मुख्यता है और शीर्ष आवश्यक में मस्तक को विशेष झुकाने की महत्ता है।

यहाँ खामेमि खमासमणो देवसियं वइक्कमं इन पदों के उच्चार द्धारा शिष्य का मस्तक नमन रुप १ शीर्ष नमन शिष्य का, और अहमवि खामेमि तुमं इस प्रकार बोलते हुए आचार्य का किंचित शीर्ष नमन वह दूसरा गुरु शीर्ष नमन, इसी प्रकार दूसरे वंदन के समय भी दो शीर्ष = कुल ४ शीर्ष आवश्यक समजना। कही २ पर संफासं पद के उच्चार के समय शिष्य का संपूर्ण (=गुरु के चरणो मे नमन) नमन उसे १ शीर्ष नमन, और खामेमि खमा० इत्यादि पूर्वोक्त पदोच्चार के समय भी शिष्य का दूसरा शीर्ष नमन, ये दो नमन पहले वंदन में और दूसरे दो शीर्ष नमन दूसरे वंदन के समय=इस प्रकार चार शीर्ष नमन आवश्यक समजना।

३. गुप्तिः- **(१) मनगुप्ति**-वंदन के समय मन की एकाग्रता रुप है।

(२)वचन गुप्ति- वंदन के सूत्रों के अक्षरों का शुद्ध और अस्खलितत उच्चार रुप है।

(३) काय गुप्ति- काया के द्धारा आवर्त्त विगेरे दोष रहित करने रुप है।

२) प्रवेशः- प्रथम वंदन के समय गुरु की आज्ञा लेकर 'अवग्रह में प्रवेश करना १ प्रवेश ! और अवग्रह से बाहर निकल कर पूनः आज्ञा लेकर दूसरी बार अवग्रह मे प्रवेश करना २ प्रवेश ।

१) निष्क्रमणः- अवग्रह से बाहर निकलना उसे निष्क्रमण आवश्यक कहते है। और वो दो वंदन में (अथवा दो प्रवेश में) एक ही बार होता है। कारण कि प्रथम बार वंदन में अवग्रह में प्रवेशकर ६ आवर्त्त विधि करके आवस्सियाए पद बोलकर शिघ्र अवग्रह से बाहर निकलकर, शेष सूत्र पाठ बोलाजाता है। जबकि दूसरी बार वंदन के समय अवग्रह में प्रवेशाकर के दूसरे ६ आवर्त्त करने के बाद भी अवग्रह में खड़े खड़े ही शेष सूत्र पाठ बोलाजाता है, इस प्रकार का विधि मार्ग है। जिससे प्रवेश दो बार, निष्क्रमण एक बार होता है। इसी कारण से दूसरी बार आवस्सियाए पद का उच्चार नहीं किया जाता है।

प्रश्न:-दूसरी बार का वंदन सूत्र संपूर्ण बोलने के बाद तो [1]अवग्रह से बाहर निकलना चाहिये, क्योंकि शिष्य को बिना कारण से अवग्रह में रहने की आज्ञा नही है, फिर उस समय दूसरा निष्क्रमण क्यों नही गिना गया ?

उत्तर:- दूसरा निष्क्रमण द्वादशावर्त्त वंदन करने के लिए नही है, तथा द्वादशावर्त्त वंदन के बीच मे भी नही है। इसलिए सूत्र पूर्ण होने का निष्क्रमण द्वादशावर्त्त वंदन में आवश्यक तरीके नही गिना है।

इस प्रकार द्वादशावर्त्त वंदन में २५ आवश्यक ध्यान में रखकर अवश्य करने चाहिये।

***

अवतरण:-२५ आवश्यकोंकी विराधना से वंदन फल प्राप्त नही होता है। जिसका जिक्र इस गाथा मे है।

किइकम्मंपि कुणंतो, न होइ किइ कम्मनिज्जरा भागी ।
पणवीसामन्नयरं, साहू ठाणं विराहंतो ॥१९॥

शब्दार्थ:- (अ)पि=भी, कुणंतो= करते हुए, पणवीस=पच्चीस(आवश्यक) में से, अन्नयरं=कोइ भी एक, ठाणं=स्थान को, आवश्यकको

गाथार्थ:- गुरु वंदन करते हुए साधु (उपलक्षण से साध्वी, श्रावक, श्रावीका भी) इन पच्चीस आवश्यकोमें से किसी भी एक आवश्यक की विराधना करने पर भी (जैसें वैसे करने से) वंदन से होने वाली कर्मनिर्ज्जरा के फल के भागी नही होते हैं, (याने कर्म निर्जरा के भागी नही बनते है।) भावार्थ:- सुगम है।

***

अवतरण:- मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना का ११ वां द्वार इस गाथा में कहा गया है।

दिट्ठिपडिलेह एगा, छ उड्ढ पप्फोड तिगतिगंतरिया ।
अक्खोड पमज्जणया, नव नव मुहपत्ति पणवीसा ॥२०॥

शब्दार्थ:- दिट्ठि=द्रष्टि की, पडिलेह= पडिलेहना, प्रतिलेखना, उड्ढ=ऊर्ध्व, पप्फोड=प्रस्फोटक, झाटकना, ऊंची नीची करना, तिग तिग=तीन तीन की, अन्तरिया=अंतरित, अंतर में, अक्खोड= अखोड़ा, आस्फोटक आखोटक, अंदरलेना, पमज्जणया=प्रमार्जना, पक्खोड़ा (घिसकर निकालना)

(१) गुरु से शिष्य को ३॥ तीन हाथ दूर रहना चाहिये, इस दूरी को अवग्रह कहा जाता है। इस अवग्रह में गुरु की आज्ञा लेकर प्रवेश करना चाहिये।

गाथार्थ:- द्रष्टि प्रतिलेखना, ६ ऊर्ध्व पप्फोड़ा, और तीन तीन के अंतर में ९ आस्फोटक, तथा ९ प्रमार्जना (याने तीन तीन आस्फोटक के अंतर में तीन तीन [1]प्रमार्जना अथवा तीन तीन प्रमार्जना के अंतर में तीन तीन [2]आस्फोटक मिलकर ९ अखोड़ा ९ प्रमार्जना) इस प्रकार मुइपत्ति की २५ प्रमार्जना समजना ।

विशेषार्थ:- गुरु वंदन करने वाले भव्य प्राणी प्रथम खमासमणा देकर गुरु की आज्ञा मांग कर पाँवो के [3]उत्कटिक आसन से बैठकर मौनपूर्वकी मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना दोनो हाथो को दोनो पाँवों के बीच में रख कर करना चाहिये। वो इस प्रकार....

१. दृष्टि प्रतिलेखना:- मुहपत्ति को खोलकर किनारी वाले दोनो छेड़े दोनो हाथ से पकड़कर दृष्टि सन्मुख तिर्च्छी विस्तार कर, दृष्टि सन्मुख का प्रथम पासा दृष्टि से बराबर देखना। यदि जीवजन्तु दिखाई दे तो जयणा पूर्वक उचित स्थानपर रखना। उसके बाद मुहपत्ति का ऊपरी छेड़ा (जीमणेहाथ से पकड़ाहुआ) बाँये (डावे) हाथ पर डालकर दूसरा पासा इस प्रकार बदलना कि बायें हाथ से पकड़ा हुआ कोना जीमणे (दाहिने) हाथ में, और दाहिने हाथ का कोना बाँये हाथ मे आ जावे, जिससे दूसरा पासा(पीछे का भाग) दृष्टि सन्मुख आजावे, उसे दृष्टि से बराबर देखना । इस प्रकार मुहपत्ति के दोनो पासों का (आगे व पीछे के भाग को) दृष्टि से निरीक्षण करना । उसे दृष्टि प्रतिलेखना समजना ।

६. उर्ध्व पप्फोड़ा:-(६ पुरिम) दूसरे पासेकी दृष्टि प्रतिलेखना करके [2]उर्ध्व याने तिर्च्छी विस्तारी हुई मुहपत्ति का प्रथम बाँये हाथ तरफ का भाग तीन बार झटकना अथवा हिलाना। उसे प्रथम ३ पुरिम कहते है। उसके बाद (दृष्टि प्रतिलेखना में कहे अनुसार) मुहपत्ति को दूसरा पासा बदलकर और दृष्टि से निरीक्षण कर दाहिने हाथ तरफ के भाग को तीन बार झटकना या हिलाना, उसे दूसरे [3]पुरिम कहा गया है। इस प्रकार ६ पुरिम वही ६ ऊर्ध्व पप्फोड़े अथवा ६ ऊर्ध्व प्रस्फोटक कहे जाते है।

९. अक्खोड़ा :-ऊपर कहे अनुसार पुरिम हो जाने के बाद मुहपत्ति का मध्यभाग बाँये हाथ पर डालकर मध्यभाग का किनारा इस प्रकार खिंचना की मुहपत्ति दो पड़ के घड़ी वाली बनजाय, और (दो पड़वाली मुहपत्ति)

---

१) इति अवचूरि

२) इति प्रव० सारो० और धर्म संग्रह।

३) दोनो पाँवो के बल घुंटने ऊंचे कर भूमि से अधर बैठना उसे यहाँपर उत्कटिक आसन कहा गया है। और मुहपत्ति को प्रतिलेखना को समय दोनो हाथों के दोनो पाँवो के बीच रखना।

२) उत्कटिक आसन से बैठना उसे कायोर्ध्व और मुहपत्ति का तीर्च्छा विस्तार उसे वस्त्रोर्ध्व इस प्रकार दोनो ही प्रकार की उर्ध्वता यहाँ ध्यान मे रखना।

३) मुहपत्ति का तीर्च्छा विस्तार कर जो पुरिम-पूर्वक्रिया-प्रथम क्रिया करने मे आती है उसे पुरीम कहा गया है।

दृष्टि के सामने आजाय, उसके बाद उसके शिघ्र तीन (या-दो) [1]वधूटक करके दाहिने हाथ की चार अंगुलियों के अंतरे में दबाना। इसी प्रकार तीन वधूटक वाली मुहपत्ति को बाँये हाथ की हथेली पर (हथेली को स्पर्श किये बिना) प्रथम तीन बार खंखेरते हुए कांडे तक लेकर जाना, और इसी प्रकार तीन बार आगे कहे जाणे वाले पक्खोडे करने के साथ उसे ९ अक्खोडा अथवा ९ आखोटक या ९ आस्फोटक कहते है। (उसमें ग्रहण करने समय खंखेरने की आवश्यकता नही)

९. प्रमार्जना (पक्खोडा):- ऊपर कहे अनुसार प्रथम बार कांडे के तरफ चढते तीन अक्खोड़े करके नीचे ऊतरते समय हथेलीको मुहपत्ति का स्पर्श हो इस प्रकार तीन घसारे डाबी हथेली पर करना। उसे प्रथम ३ प्रमार्जना कही जाती है। (कांडे के तरफ चढ़ते ३ अक्खोड़े कर के) दूसरी बार ऊतरते ३ प्रमार्जना और इसी प्रकार (बीच में ३ अक्खोड़े कर के) पुनः तीसरी बार ३ प्रमार्जन करना। उसे ९ प्रमार्जना, पक्खोड़े या प्रस्फोटक कहा जाता है। ऊपरोक्त ६ प्रस्फोटक इससे भिन्न समजना, कारण कि विशेषतः इसे ६ ऊर्ध्वप्रस्फोटक अथवा ६ पुरिम कहा जाता है। लेकिन प्रसिद्धि में जो ९ पक्खोड़े गिने गये है वो तो ये ९ प्रमार्जना के नाम है।

ये ९ अक्खोड़े और ९ पक्खोड़े तिग तिग अंतरिया याने परस्पर तीन तीन के अंतर में होते है। वो इस प्रकार प्रथम हथेली तरफ चढते ३ अक्खोड़े करना। हथेली से ऊतरते ३ पक्खोड़े करना। उसके बाद पुनः ३ अक्खोड़े पुनः ३ पक्खोड़े, पुनः ३ अक्खोड़े ३ पक्खोड़े करना, इस प्रकार अनुक्रम से ९ अक्खोड़े और ९ पक्खोड़े परस्पर अंतरित गिने गये है। [2]अथवा अक्खोड़े के अंतर में पक्खोड़े इस प्रकार भी गिना गया है।

(१) वधु याने स्त्री जिस प्रकार लज्जा से मुख पे वस्त्र लंबा रखती है, वैसे ही मुहपत्ति के तीन वलांक को चार अंगुलियों के अंतर में दबाकर नीचे की और झुलते-लंबी रखना उसे वधूटक कहते है। श्री प्रव० सारो० वृत्ति में दो वधूटक करने के लिए भी कहागया है। लेकिन वो प्रचलित नही है।

(२) प्रव० सारो० वृत्ति तथा धर्म संग्रह वृत्ति में पक्खोड़े के अंतर में अक्खोड़े कहे गयें है। फिर भी अक्खोड़े के अंतर में पक्खोड़े कहने में विरोधाभाष नही है। कारण कि प्रारंभ से गिने तो अक्खोड़े के अंतर में पक्खोड़े, और अंत से गिनते है। तो पक्खोड़े के अंतर में अक्खोड़े और सामुदायिक गिनते हैं तो परस्पर अंतरित गिनेजाते हैं।

इस प्रकार यहाँ मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना संक्षिप्त में कही, विस्तार से अन्य ग्रंथो से तथा गुरु-संप्रदाय से जानकारी प्राप्तकरे। कारण कि संप्रदाय से विधि समजे बिना मुहपत्ति की यथार्थ प्रतिलेखना नही कर सकते। मुहपत्ति की प्रतिलेखना के समय मुहपत्ति के २५ बोलो का चिंतन मनमें अवश्य करना चाहिये।

॥ इति मुहपत्ति की २५ प्रतिलेखना ॥

(१)मुहपत्ति की प्रतिलेखना के २५ बोल

किस प्रतिलेखना के समय	कोनसा प्रतिलेखना बोल
प्रथम पासे के निरीक्षण समय	सूत्र } १ बोल
दूसरे पासे के निरीक्षण समय	अर्थ-तत्त्व करी सद्दहुं } १ बोल
प्रथम ३ पूरिम समय	सम्यक्त्व मो०, मिश्र मो० मिथ्यात्य मो० परिहरु(३)
दूसरे ३ पूरिम समय	कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरुं(३)
प्रथम ३ अक्खोड़े करते समय	सुदेव-सुगुरु-सुधर्म आदरुं(३)
प्रथम ३ पक्खोड़े करते समय	कुदेव-कुगुरु-कुधर्म परिहरुं(३)
दूसरे ३ अक्खोड़े करते समय	ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदरुं(३)
दूसरे ३ पक्खोड़े करते समय	ज्ञान-दर्शन-चारित्र विराधना परिहरुं(३)
तीसरे ३ अक्खोड़े के समय	मनगुप्ति , वचनगुप्ति , कायगुप्ति आदरु (३)
तीसरे ३ पक्खोड़े के समय	मनदंड-वचनदंड-कायदंड परिहरुं (३)

(१) मुहपत्ति श्वेत वस्त्र की १ वेंत ४ अंगुल प्रमाण समचोरस होनी चाहिये। उसका एक भाग किनारी वाला होना चाहिये। वो किनारी वाला भाग दाहिने हाथ की और रहे, इस प्रकार आधे भाग को मुड़ाये, दूसरी बार ऊपर के भाग को २ अंगुल जितना दृष्टि सन्मुख मुड़ाना, जिससे ऊपर के भाग में ४ पड़ और नीचे चार अंगुल जितने भाग में दो पड़ होते है।

तथा चरवला दर्शीओं सहित ३२ अंगुल रखना, जिसमें २४ अंगुल की दंडी और ८ अंगुल की दशीयाँ होती है।

अवतरण:- इस गाथा में शरीर प्रतिलेखना के २५ बोल का १२ वाँ द्धार कहागया है।

पायाहिणेण तिय तिय, वामेयर बाहु-सीस-मुह-हियए ।
अंसुड्ढाहो पिट्ठे चउ, छप्पय देहपण वीसा ॥२१॥

शब्दार्थ:- पायाहिणेण=प्रदक्षिणा की तरह, वाम=बायाँ, इयर=दाहिना (जिमणा), बाहु=हाथ, हियए=हृदय ऊपर, अंस=स्कंध, उड्ढ=ऊर्ध्व, ऊपर, अहो=नीचे,

गाथार्थ:- प्रदक्षिणा के अनुसार प्रथम बॉये हाथ की पश्चात दाहिने हाथ की, मस्तक की, मुख की और हृदय की तीन तीन प्रतिलेखना करना। बाद में दोनो स्कंधो के ऊपर तथा नीचे [1]पीठ की प्रमार्जना करना, ये चार प्रतिलेखना पीठकी और उसके बाद ६ प्रतिलेखना दोनो पॉवो की, इस प्रकार पच्चीस प्रतिलेखना समजना ॥ २१॥

॥ पुरुष के शरीर की २५ प्रतिलेखना ॥

विशेषार्थ:- दाहिने हाथ में वधूटक की हुई मुहपत्ति से प्रथम बाँये हाथ का मध्य, दाहिने और बाँये भाग की अनुक्रमसे प्रमार्जन करना। उसे वामभुजाकी ३ प्रतिलेखना समजना। पश्चात मुहपत्ति को बाँये हाथ में वधूटक करके दाहिने हाथ की तीन प्रमार्जना (बाँये हाथ की तरह) करना उसे दक्षिण भुजा की ३ प्रतिलेखना समजना । पश्चात वधूटक को अलग करके दोनो किनारों द्धारा ग्रहण की हुई मुहपत्ति से मस्तक (ललाट) का मध्य, दाहिना (जिमणा) और वाम (बाँया) भाग की अनुक्रम से प्रमार्जना करना उसे शीर्ष की ३ प्रतिलेखना समजना। इसी तरह मुखकी ३ तथा हृदय की ३ प्रतिलेखना करना। इस प्रकार पांचो अंगो की १५ प्रमार्जना हुई ।

उसके बाद मुहपत्ति को दाहिने हाथ में लेकर दाहिने स्कंध पर घुमाकर पीठ के दाहिने भाग की (दाहिने स्कंध का ऊपरि भाग को) प्रमार्जना करना । इसे पीठकी प्रथम प्रमार्जना समजना । पश्चात मुहपत्तिको बाँये हाथ में लेकर स्कंधके ऊपर फेरकर पीठ के बाँयें भागकी प्रमार्जना करना । इसे दूसरी प्रमार्जना समजना उसके बाद बाँये हाथकी मुहपत्ति से दाहिने हाथ की कक्षा (=कांख) के स्थान पर फेरकर दाहिनो पीठ का नीचे के भाग की प्रमार्जन करना । इसे पीठ की या काँखकी तीसरी प्रतिलेखना समजना। पश्चात मुहपत्ति को दाहिने हाथ में लेकर बाँयी कक्षा (काँख) के स्थान की प्रमार्जना करते

(१) पीठ की प्रमार्जना में दोनो स्कंधो की दो, और दोनो कक्षा (कौख) की दो, ये ४ प्रमार्जना समजना। इसका कारण मुहपत्ति को प्रथम वहीं से फेरकर आगे की प्रतिलेखना की जाती है। इसलिए ऐसी परंपरा व्यवहार मे प्रचलित है।

हुए पीठ के नीचे के भाग की प्रमार्जना करना । उसे पीठ की वांसा की ४ प्रमार्जना समाजना। इन चार प्रमार्जनाओं में दो प्रमार्जना पीठकी और दो प्रमार्जना स्कंध की गिनने का व्यवहार प्रसिध्ध है।

पश्चात चरवले से या ओघे से दाहिने पाँव का मध्य भाग , दाहिने व बाँये भाग की अनुक्रमसे प्रमार्जना करना । इसी प्रकार बाँये पाँव की ३ प्रमार्जना करना । इस प्रकार दोनो पाँवो की ६ पाँव की प्रमार्जना हुई । इस तरह शरीर की कुल २५ प्रमार्जना करना (श्री प्रव० सारो० वृत्ति०) में पाँव की ६ प्रमार्जना मुहपत्ति से करने के लिए कहा है। लेकिन मुख के सामने रखी जाने वाली मुहपत्ति से पाँवो का स्पर्श उचित न होने से चरवले या ओघे से ही पाँव की प्रमार्जना करने का व्यवहार प्रचलित है।

॥ स्त्री के शरीर की १५ प्रतिलेखना ॥

स्त्रीयों के हृदय शीर्ष पाँव व स्कंध सदैव वस्त्र से आवृत रहता है, इसलिए इन तीन अंगो की प्रमार्जना उनको नही होती । शेष (=दो हाथ की ३-३, मुखकी ३ और पाँवो की ३-३) १५ प्रतिलेखन स्त्रियों के शरीर की होती है। उसमें भी प्रतिक्रमण के समय साध्वीजी को शीर्ष खुले रखना का व्यवहार होने से, ३ शीर्ष प्रतिलेखना सहित '१८ प्रमार्जना साध्वीजी को होती है

इस प्रकार शरीर की पच्चीस प्रतिलेखना के समय भी पच्चीस बोलो का मनमें चिंतन करने को कहा है।

प्रवृति में ऐसा व्यवहार देखा जाता है, प्रव सारो, और धर्म संग्रह की वृत्ति में तो साध्वीजी की १८ पडिलेहणा कही नही है, सिर्फ १५ पडिलेहणा कही है लेकिन भाष्य का क्षा. वि. सू. कृत बाला ववोध में कही है,

(३) बायां हाथ के ३ भाग पडिलेहन करते	(३) हास्य, रति, अरति परिहरुं
(३) दाहिना हाथ के ३ भाग पडिलेहन करते	(३) भय, शोक, जुगुप्सा परिहरुं
(३) मस्तक के हाथ के ३ भाग पडिलेहन करते	(३) कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या परिहरुं
(३) मुख के ऊपर पडिलेहन करते	(३) रसगाख, ऋध्धिगाख, शातागाख परिहरुं
(३) हृदय के ऊपर हाथ के ३ भाग पडि लेहन करते	(३) मायाशल्य, नियाणशल्य, मिथ्यात्वशल्य परिहरुं,
(४) २ कंधा और २पीठ के मीलाकर ४ भाग पडि लेहण करते	(४) क्रोध, मान परिहरुं ; माया, लोभ परिहरुं
(३) दाहिना पाँव के ३ भाग के पडि लेहण करते	(३) पृथ्वीकाय अपकाय तेउकाय की रक्षा करुं
(३) बायाँ पांव के ३ भाग पडि लेहन करते	(३) वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रशकाय की जयणा करुं
२५	२५

अवतरण :- पूर्वोक्त पचीस आवश्यक विधि पूर्वक करने से होने वाले लाभ का विवरण इस गाथा में दर्शाया गया है।

आवस्स-एसु जह जह, कुणइ पयत्तं अहीणमइरित्तं ।
तिविह करणोवउत्तो, तह तह से निज्जरा होइ ॥२२॥

शब्दार्थ:- अहीणं=अहीन, अन्युन, (अ) अइरित्तं=अधिक (नहि), उवउन्त =उपयोगवत्त, से=उसको,

गाथार्थ:- जो जीव गुरुवंदन के पच्चीस आवश्यकों (तथा उपलक्षण से मुहपत्ति और शरीर की पच्चीस प्रतिलेखना के विषय में) के विषय में तीन प्रकार के करणों से (मन-वचन-काया द्वारा) उपयुक्त-उपयोगवन्त होकर जैसे जैस अन्युनाधिक (न्युन भी नहि अधिक भी नहि एसा यथाविधि) प्रयत्न करे वैसे वैसे जीवों की कर्म निर्ज्जरा अधिक अधिक होती है। (उपयोग रहित अविधि से हीनाधिक करे तो वैसे मुनि को भी विराधक समजना।

विशेषार्थ:- सुगम है।

अवतरण:-२३,२४, और २५ वीं गाथा में गुरुवंदन (द्वादशावर्त वंदन) में टालने योग्य ३२ दोषों का १३ वाँ द्वार कहा गया है।

दोष [१]अणाढिय [२]थड्ढय, [३]पविद्ध [४]परिपिंडियं च [५]टोलगइं ।
[६]अंकुस [७]कच्छभरिंगिय, [८]मच्छुव्वत्तं [९]पणपउट्ठं ॥२३॥

[१०]वेइयबद्ध [११]भयंतं, [१२]भय [१३]गारव [१४]मित्त [१५]कारणा [१६]तिन्नं ।
[१७]पडिणीय [१८]रुट्ठ [१९]तज्जिय, [२०]सढ [२१]हीलिय [२२]विपलिउचियय ॥२४॥

[२३]दिट्ठमदिट्ठं [२४]सिंगं, [२५]कर [२६]तम्मोअण [२७]अलिद्धणालिद्धं ।
[२८]ऊणं [२९]उत्तरचूलिअं. [३०]मूअं [३१]ढड्ढर [३२]चुडलियं च ॥२५॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार

*. धर्मानुष्ठान उत्तरोत्तर विकसित भावों से करना श्रेष्ठ ही है। फिरभी ये बात अनियत विधिवाले धर्मकार्यके विषय में समजना और नियत (मर्यादित) विधिवाले धर्मकार्योमें धर्मानुष्ठानो में तो जो विधि मर्यादित की हो उस विधिसे किंचित न्युनधिक किये बिना करनी चाहिये। विधि मार्ग अनवस्थित होने पर धर्म विच्छेद होने का प्रसंग उपस्थित हो सकता है।

गाथार्थ:- अनादृत (अनादर दोष) स्तब्धदोष, प्रविध्ध दोष, परिपिंडित दोष, टोलगति दोष, अंकुश दोष, कच्छपरिंगित दोष, मत्स्योदवृत्त दोष, मनःप्रदुष्ट दोष, वेदिकाबध्ध दोष, भजन्त दोष, भय दोष, गारव दोष, मित्र दोष, कारण दोष, स्तेन दोष, प्रत्यनीक दोष, रुष्ट दोष, तर्जित दोष, शट्ठ दोष, हीलित दोष, विपरिकुंचित दोष, दृष्टादृष्ट दोष, शृंग दोष, कर दोष, करमोचन दोष, आश्लिषृ दोष, अनाश्लिषृ दोष, ऊन दोष, उत्तरचुड़ दोष, मूक दोष, ढड्ढर दोष, और चडुलिक दोष (इन बत्तीस दोषों को टालकर गुरुवंदन-द्वादशावर्त वंदन करना) ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥

विशेषार्थ:- गुरु वंदन-द्वादशावर्त्त वंदन करते समय टालने याग्य ३२ दोषों का किंचित स्वरुप वर्णन।

१. अनादृत (अनादर) दोष :- आदर रहित संभ्रांत चित्त से वंदन करना ।

२. स्तब्ध दोष:- मद (जातिमद विगेर मद) से [1](स्तब्ध) अभिमानी बन कर वंदन करना।

३. प्रविध्ध दोष:- वंदन को अधूरा छोडकर [2]अन्यत्र चलेजाना। या अस्थान [3]पर छोड़कर चलेजाना ।

---

१) वायु से नही झुकने वाला अंग द्रव्यस्तब्ध और अभिमान से नही झुकना उसे भावस्तब्ध उसके ४ प्रकार

(१) द्रव्य से स्तब्ध, भावसे अस्तब्ध ।

(२) भाव से स्तब्ध द्रव्य से अस्तब्ध ।

(३) द्रव्य से स्तब्ध भावसे भी स्तब्ध ।

(४) द्रव्य से अस्तब्ध भाव से भी अस्तब्ध।

इन चार में से चौथा भाग शुद्ध है, शेष तीन भांगे भाव से स्तब्ध होने के कारण अशुद्ध ही है। तथा द्रव्य से स्तब्ध (प्रथम भाग) शुद्ध और (तीसरा भाग) अशुद्ध हो सकता है।

२. भाड़ेवाला बर्तनादि सामग्री लेकर आता है, जिस स्थान की बात की हो वहाँ आकर रुक जाता है, अन्यत्र ले जाने के लिए कहने पर वो वहीं (अस्थान पर) छोड़ कर चला जाता है। वैसे

३. प्रथम प्रवेश आदि स्वागत योग्य स्थानो को अधूरे छोड़कर चलेजाना उसे अस्थान छोड़ना कहलाता है।

४. परिपिंडित दोष :- एकत्रित सर्व आचार्यो को अलग वंदना नही करना । एक ही वंदना से सर्व को वंदन करना अथवा आवर्तो का और सूत्राक्षरों का यथायोग्य भिन्न उच्चार न कर संलग्न उच्चार कर वंदन करना । या [1]कुक्षि ऊपर दोनो हाथ स्थापन करने से पिंडित (संलग्न) बने हुए हाथ-पाँव पूर्वक वंदन करना-उसे परिपिंडित दोष कहते है।

५. टोलगति दोष:- टोल=तीड़ की तरह वंदन करते समय पीछे हटना और आगे बढना। इस प्रकार आगे पीछे झंप करते (कूदते) हुए वंदन करना उसे

६. अंकुश दोष:- अंकुश द्धारा जिसप्रकार हाथी को यथा स्थान ले जाया जाता है। या बैठायाजाता है। वैसे ही गुरु को वंदनार्थे हाथ अथवा कपड़ा पकड़कर यथा स्थानपर लाकर या बैठाकर वंदन करना । अथवा अंकुश की तरह रजोहरण को हाथ में पकड़ कर वंदन करना। अन्य आचार्य कहते है कि-'जिस प्रकार अंकुश द्धारा हस्ति का शीर्ष ऊंचे नीचे किया जाता है वैसेही वंदन के समय मस्तक ऊंचे-नीचे करना । इस प्रकार [2]तीन अर्थ समजना ।

७. कच्छपरिंगित दोष:- कच्छप=कछुआ, कच्छुए की तरह रिंगे अथवा अभिमुख (सन्मुख) और पश्चातमुख किंचित शरीर का चलायमान करते हुए वंदन करे । अर्थात् खड़े होकर 'तित्तिसन्नयराए ' इत्यादि वंदनाक्षर बोलते समय, तथा बैठकर 'अहो कायं' इत्यादि अक्षर बोलते समय शरीर को गुरु सन्मुख और स्वतरफ खड़े खड़े या बैठे बैठे हिलाया करे उसे कच्छपरिंगित दोष कहते है।

८. मत्स्योदवृत्त दोष:- मछली जल में जिस प्रकार झंप मारती हुई (उछलकर)ऊपर आती है और शरीर को उल्टा (पलटकर) जल में प्रवेश करती है, वैसे ही शिष्य वंदन के समय शिघ्र उठे, बैठे उसे मत्स्योदवृत्त अथवा मत्स्योदधृत दोष कहा जाता है। अथवा जिस प्रकार मछली (उछलकर) पानी में प्रवेश करते समय शरीर को घुमाती (पलटती) है। वैसे ही एक आचार्य से दूसरे आचार्य को वंदना करते समय उसी स्थान से जयणा विना शरीर

---

१) ये अर्थ धर्म संग्रह वृत्ति के आधार से लिखा है।

२) दूसरा अर्थ आव० वृत्ति तथा भाष्य चूर्णि मे भी दिया गया है। फिरभी प्रव० सारो वृत्ति में ये दूसरा व तीसरा अर्थ भी 'सूत्रानुसार' नही कहा । अतः तच्व बहुश्रुतगम्य 'कहा है। धर्म सं वृत्ति में तीनो ही अर्थ कहे गये है।

को घुमाकर वंदना करे उसे मत्स्यावर्त दोष कहते हैं। ये दोष भी मत्स्योदधृत दोष के अंतर्गत ही है। (यहाँ पर मत्स्य का 'उदधृत याने ऊंचे झंप मारना (उछलना) और 'आवर्त्त याने शरीर को गोलाकार घुमाना - ऐसा शब्दार्थ है।

९. मनः प्रदुष्ट दोष:- वंदनीय आचार्य किसी गुण से हीन हों तो उस हीन गुण को मनमें रखके असूया (अरुचि) पूर्वक वंदन करना उसे अथवाँ [१]आत्म प्रत्यय और परप्रत्यय से उत्पन्न मनो द्धेष पूर्वक वंदन करना ।

१०. वेदिका बद्ध दोष:- दोनों जानु ऊपर (घुंटणे के ऊपर) दोनों हाथ स्थापन कर अथवा दोनों जानु के नीचे हाथ स्थापन कर, अथवा जानु के आजु, बाजु में हाथ स्थापन कर, या दोनो हाथ गोदी में रखकर अथवा एक जानु को दो हाथों के बीच में रखकर वंदन करना । इस तरह ये पांचो ही प्रकार वेदिका बद्ध दोष के अंतर्गत है। (वेदिका=हाथ की रचना उसके द्धारा बद्ध=युक्त उसे वेदिकाबद्ध दोष कहते है।)

११. भजन्त दोष:- ये गुरु मुझे चाहते है, मेरा अनुसरण करते हैं। तथा आगे भी मुझे अनुसरेंगे, इस आशय से वंदन करना । अथवा हे गुरुदेव हम आपको वंदन करने के लिए खड़े है , इस प्रकार बोलना ।

१२. भय दोष:- यदि मैने वंदना नही की तो गुरु मुझे संघ से, कुल से, गच्छ से, अथवा क्षेत्र से बाहर कर देंगे। इस प्रकार के भय से वंदन करना, उसे भय दोष कहते है।

१३. मैत्री दोष:- आचार्य भगवन्त मेरे मित्र है, या आचार्य के साथ मेरी मित्रता होगी । इस हेतु से वंदन करना उसे मैत्री दोष कहते है।

१४. गौरव दोष :- सर्व मुनि समजें कि ये साधु वंदनादिक सामाचारी में अति निपुण है, इस प्रकार के गर्व से (मान से) आवर्त्त विगेरे वंदन विधि सही ढंग से करना । उसे गौरव दोष कहते हैं।

१५. कारण दोष:- ज्ञान, दर्शन और चारित्र का लाभ, इन तीन कारणो को छोड़कर अन्य वस्त्र-पात्र आदि के लाभके हेतु से वंदन करना। उसे कारण दोष कहते है। (यहाँ ज्ञानादिक लाभको यद्यपि कारण दोष में नही माना है, फिर भी जगत में पूजा-महत्वादि के लिए ज्ञानादि तीनो के लाभ की ईच्छा करना उसे भी कारण दोष में माना है)

१६. स्तेन दोष:- वंदन करने से मेरी लघुता होगी, इस आशय से गुप्त रीत से वंदन करना, अथवा कोई देख न ले इस प्रकार शिघ्रता से वंदन से वंदन कर लेना (स्तेन=चोर, उसकी तरह) उसे स्तेन दोष कहते है।

(१) गुरुने शिष्य को स्वयं को कहा हो तो आत्म प्रत्यय और शिष्य के मित्रादिक के सामने शिष्य की उपस्थिति में कहा हो तो पर प्रत्यय मनः दोष समजना **(प्रव० सारो० वृत्ति)**

१७. प्रत्यनीक दोष:- गाथा नं-१५ में दर्शाये अनुसार आहार निहारआदिके समय (अवसर) में वंदन नही करने के समय में वंदन करना।

१८. [1]रुष्ट दोष:- गुरु रोषायमान (गुस्सा में) हो उस समय वंदन करना। या स्वयं रोष में (क्रोध में) हो तब वंदन करना उसे रुष्ट दोष कहते है।

१९. तर्जना दोष:- गुरुजी आप तो काष्ट के महादेव समान हैं। वंदन नही करने पर न तो नाराज होते हैं। और वंदन करने पर न प्रसन्न होते है। अतः हम वंदन करे या न करे आपके लिए तो एक समान। इस प्रकार तर्जना करते हुए वंदन करे, या अंगुली आदि द्वारा तर्जना करता हुआ वंदन करे, उसे तर्जना दोष कहते है।

२०. शठ दोष:- मन मे शठ भाव रख कर या जगत में विश्वास उपजाने के लिए वंदन करे अथवा बिमारी विगेरे का बहाना बनाकर यथार्थ विधिसे कपट भावसे वंदन करे. उसे शठ दोष कहते है।

२१. हीलित दोष:- हे गुरु ? आपको वंदन करने से क्या लाभ ? इस प्रकार अवज्ञा-अनादर करता हुआ वंदन करे उसे हीलित दोष कहते हैं।

२२.[2]विपलि (रि) कुंचित दोष:- वंदना करते हुए बीच में देशकथादिक विकथाएँ करे उसे, इसका दूसरा नाम विपरिकुंचित है।

२३. [3]दृष्टा दृष्ट दोष:- गुरु न देखे इस प्रकार बहुत सारे साधु वंदन करतें हों उनके पीछे खड़ा रहे या अंधेरे मे खड़ा रहे और जब गुरु की दृष्टि पड़े तो वंदना करे अन्यथा न करे, बैठा रहे, उसे दृष्टा दृष्ट दोष कहते हैं।

२४. शृंग दोष:- पशु के शृंग के माफक "अहो कायं काय" इन पदो के उच्चार के समय ललाट के मध्यभाग को दोनो हाथों से स्पर्श करने के बजाय ललाट के दाँये बाँये भाग को स्पर्श करते हुए वंदन विधि करे उसे शृंग दोष कहते हैं।

२५. कर दोष:- ये वंदन विधि-भी अरिहंत परमात्मा व गुरु भगवन्तो का कर(टेक्स) है, इस प्रकार मान कर वंदन करना उसे कर दोष कहते हैं।

(१) ये अर्थ यद्यपि १७ वें प्रत्यनीक का दोष के एक अवयव में अंतर्गत है। (गौणता से) फिरभी यहाँ क्रोध की मुख्यता को मुख्य मानकर कहा है।

(२) इस शब्द में वि और परि ये दो उपसर्ग है, और कंच धातुसे कंचन शब्द अल्प अर्थ के भावार्थ में है। जिससे कुचि=अल्पीकृत अर्धीकृत वंदना।

(३) सोलहवे स्तेन दोष में दृष्टादृष्ट दोष कहागया है, वह लोगों द्वारा दृष्टादृष्ट है, और तेवीसवें दोष में गुरुद्वारा दृष्टादृष्ट शिष्य को समजना।

२६. करमोचन दोष:- साधु बनने से लौकिक (राजा विगैरे) कर से तो मुक्त हो गये, लेकिन अरिहंतरुपी राजा के (वांदणा देने रुप) करसे अभी तक मुक्त नही बने इस प्रकार के आशय से वंदन करना उसे करमोचन दोष कहते हैं।

२७. आश्लिष्ट अनाश्लिष्ट:- "अहो कायं काय" इत्यादि आवर्त करते समय दोनो हाथ रजोहरण तथा ललाट पर स्पर्श करना चाहिये। लेकिन विधि अनुसार स्पर्श न करे उसे (आश्लिष्ट = स्पर्श अनाश्लिष्ट= अस्पर्श) आश्लिष्ट अनाश्लिष्ट दोष कहते हैं।

इसके चार विकल्प इस प्रकार है।

१. दोनो हाथ द्धारा रजोहरण को स्पर्श करे और मस्तक को स्पर्श करे। (शुद्ध)

२.दोनो हाथ द्धारा रजोहरण को स्पर्श करे और मस्तकको स्पर्श न करे।

३. दोनो हाथ द्धारा रजोहरण को न स्पर्श करे और मस्तको स्पर्श करे।

४. दोनो हाथ द्धारा रजोहरण को स्पर्श न करे और मस्तक को भी स्पर्श न करे।

इसमें प्रथम विकल्प शुद्ध, शेष तीन विकल्प अशुद्ध हैं।

२८. न्यून दोष:- वंदन सूत्र के व्यंजन (=अक्षर) अभिलाप =(पद वाक्य) और आवश्यक (पूर्व कथित २५ आवश्यक) न्यून करे परिपूर्ण न करे उसे न्यून दोष कहते है।

२९. उत्तर चूड (उत्तर चूलिका) दोष):- उत्तर=वंदन करने के बाद पर्यन्ते (चूड़=ऊंची शिखा के समान) ऊंची आवाज में "मत्थएण वंदामि" इसे चूलिका रुप में अधिक बोलना उसे उत्तर चूड़ दोष कहते हैं।

३०. मूक दोष:- मूक=गूंगे मनुष्य की तरह वंदन सूत्रके अक्षरों को आलापक या आवर्त का सही उच्चार न करे किन्तु मुख से गणगणाके अथवा मनमें बोलकर-विचार कर वंदन करे उसे मूक दोष कहते हैं।

३१. ढड्ढर दोष:- बहुत ही ऊंचे स्वर से बोलकर वंदन करे उसे ढड्ढर दोष कहते हैं।

३२. चूडलिक दोष:- चूड़लिक=जलता हुआ तिनखा, जिसे पकड़कर धुमाया जाता है (बालक घुमाते हैं) वैसे रजोहरण को वृत्ताकार घुमाते हुए वंदन करना उसे अथवा हाथ को लंबाकर वंदन करता हुँ इस प्रकार बोलता हुआ वंदन करे उसे अथवा हाथ को लंबाकर घुमाते हुए "सर्वको वंदन करता हु" इस प्रकार बोलकर वंदन करे उसे चूडलिक दोष कहते है।

***

अवतरण :- पूर्व कथित ३२ दोष से रहित वंदन करने वाले को किस फल की प्राप्ति होती है? जिसका स्वरुप दर्शाति गाथा

बत्तीस दोष परिसुद्धं किइकम्मं जो पउंजइ गुरुणं ।
सो पावइ निव्वाण, अचिरेण विमाणवासं वा ॥२६॥

शब्दार्थ:- जो=जो साधु, पउंजइ=करे, पावइ=प्राप्त करे, अचिरेण=शिघ्र

गाथार्थ:- जो साधु (साध्वी, श्रावक या श्राविका) गुरु को बत्तीस दोष से रहित अत्यंत शुद्ध कृतिकर्म (=द्वादशावर्त वंदन) करे वह साधु (विगेरे)शीघ्र निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त करे, अथवा विमान मे वास (वैमानिक देव) प्राप्त करे । ॥२६॥

भावार्थ:- गाथार्थवत् सुगम है।

अवतरण:-गुरु वंदन से ६गुणो की प्राप्ति रुप १४ वाँ द्वार इस गाथा में दर्शाया गया है।

इह छच्च गुणा विणओ-वयार माणाइभंग गुरुपूआ ।
तित्थयराण य आणा, सुय धम्मा राहणा ऽ किरिया ॥२७॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार

गाथार्थ:- यहाँ (गुरु वंदन से) छ गुण प्राप्त होते हैं, वो इस प्रकार विनयोपचार विनय वही उपचार=आराधना का प्रकार उसे विनयोपचार कहा जाता है । याने विनयगुण की प्राप्ति होती है। (२) [1]मानभंग=अर्थात अभिमान अहंकार का नाश होता है। (३) [2]गुरु पूआ: गुरु जनो की सम्यक पूजा (सत्कार) होता है। श्री तीर्थंकर परमात्मा की (४) [3]आज्ञाका आराधन अर्थात आज्ञा का पालन होता है। (५) श्रुतधर्म की आराधना होती है। और परंपरा से (६) [4]अक्रिया याने (७) सिद्धि: प्राप्त होती है।

---

(१) अभिमान रहित भावसे वंदन करने से ही सम्यक् गुरुपूजा मानी जाती है।

(२) विनय धर्म का मूल हैं ऐसी तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा है। इसलिए

(३) वंदन पूर्वक ही श्रुत ग्रहण किया जाता है। इसलिए वंदन करने से श्रुतकी आराधना होती है।

(४) गुरु वंदन से परंपरा द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस विषय में श्रीसिद्धांत में इस प्रकार कहा है।

भावार्थ:- गाथार्थ वत सुगम है। विशेष यह है कि जिस प्रकार गुरु वंदन से ६ गुणों की प्राप्ति होती है, वैसे ही गुरु वंदन न करने से ६ प्रकार के दोष प्राप्त होते है। वो इस प्रकार हैं।

माणो अविणय रिवंसा , नीयागोयं अबोहि भववुईढी ।
अनमंते छद्दोसा (एवं अडनउय सयम हियं ॥१॥) धर्म सं वृत्ति

अर्थ:-गुरु वंदन नही करने से अभिमान, अविनय, निंदा (या लोगों का तिरस्कार) नीचगोत्र बंध, सम्यक्त्वका अलाभ, और संसार की वृध्धि, ये ६ दोष उत्पन्न होते हैं।

(इस प्रकार द्वादशावर्त्त वंदन के ११८ प्रकार (बोल) जानना)

***

अवतरण:- गुरु के विरह में किसको वंदन करना । तत्संबंधि १५ वाँ द्वार

गुरुगुणजुत्तं तु गुरुं, ठाविज्जा अहव तत्थ अक्खाई ।
अहवा नाणाइ तियं, ठविज्ज सक्खं गुरु अभावे ॥२८॥

शब्दार्थ:- जुत्तं=युक्त, सहित, ठाविज्जा=स्थापना, अहव=अथवा, अक्खाई=अक्ष विगेरे (अरिया विगेरे) सक्खं=साक्षात-प्रत्यक्ष, गुरुअभावे= गुरु के विरह में

गाथार्थ:- साक्षात गुरु के विरह में गुरु के ३६ गुण युक्त स्थापना गुरु स्थापना (याने गुरु की सद्भूत स्थापना) अथवा (सद्भूत स्थापना स्थापने का न बन सके तो) अक्ष (चंदन अरिया) विगेरे (की 'असद्भूत स्थापना) अथवा ज्ञानादि

तहारुवाण भंते समणं वा माहणं वा वंदमाणस्स वा पज्जुवासमाणस्स वा वंदणा पज्जुवासणा य किंफला पन्नत्ता?

उत्तर : गोयमा सवणफला इत्यादि आलापक (कहने का) अभिप्राय इस प्रकार है।

हे भगवन्त ! तथा स्वरुप वाले श्रमण-माहण को वंदन करने वाले सेवा करनेवाले साधु की वंदना और पर्युपासना कैसे फलवाली है?. **उत्तर:** हे गौतम शास्त्रश्रवणरुप फल मिलता है।. **प्रश्न:** श्रवण का क्या फल? **उत्तर:** ज्ञान फल।. **प्रश्न:** ज्ञान का क्या फल? **उत्तर:** विज्ञान फल।. **प्रश्न:** विज्ञान का क्या फल? **उत्तर:** पच्चक्खाण फल. **प्रश्न:** पच्चक्खाण का क्या फल?. **उत्तर:** संयम फल । संयम का अनाश्रव, अनाश्रवका तप, तप का व्यवदान=निर्जरा फल, निर्जरा का अक्रिया फल और अक्रिया का सिध्धि गति फल है।

तीन की स्थापना करना (याने ज्ञान-दर्शन और चारित्र के उपकरण को गुरु तरीके मानकर सद्भूत स्थापना करना) ॥२८॥

भावार्थ:- गाथार्थवत् सुगम है।

* * *

अवतरण:- इस गाथा में पूर्व गाथा में कथित अक्खाइ याने अक्ष विगेरे से कौन कौन से पदार्थो में गुरु की स्थापना करना, तथा स्थापना कितने प्रकार की होती है? उसकी काल मर्यादा कितनी ? ये इस गाथा में दर्शाया गया है।

अक्खे वराडए वा, कट्ठे पुत्थे च चित्तकम्मे अ ।
सब्भाव मसब्भावे, गुरुठ्ठवणा इत्तरावकहा ॥ २९॥

शब्दार्थ:- अक्खे=अक्ष (में), वराडए=वराटक, कोड़ा, सब्भाव=सद्भाव स्थापना, असब्भाव=असद्भाव स्थापना, इत्तरा=इत्त्वर, अल्पकाल की, आवकहा = यावत् कथित, सदैव केलिए

गाथार्थ:- गुरु की स्थापना अक्षमें, वराटक-कोडेमें, काष्टमें, पुस्तमें,और चित्रकर्म (मूर्तिरुप आकृति मै) में, की जाती है, वह [1]सद्भाव और असद्भाव स्थापना रुप दो प्रकार की है। पुनः (दोनो स्थापनाएँ) इत्वर और यावत्कथित दो-दो प्रकार की है। ॥२९॥

भावार्थ:- अक्ष:- याने अरिया जिसका प्रयोग वर्तमान काल में मुनिभगवन्त स्थापना रुप मे करते हैं। ये समुद्र में शंख की तरह पाया जाता है, द्वीन्द्रिय जीवों का क्लेवर=अचित शरीर हैं। शंख की तरह उत्तम पदार्थ होनेसे शास्त्र में इस में गुरु की स्थापना[2] करने को कहा है। तथा उसके लक्षण और फल विगेरे के बारे में चौद पूर्वधर श्री भद्रबाहु

---

१. गुरु समान आकृतिवाली गुरु की मूर्ति सद्भूत स्थापना । और पुरुषाकार विना अन्य किसी आकार वाली वस्तु में गुरु के गुणों का आरोपण उसे असद्भूत स्थापना कहते हैं। इन दोनो स्थापनाओं को गाथा में गर्भित रुप से दर्शाया है।

२. वर्तमान काल में अक्ष आदि की स्थापना साधुपरंपरा के मूल गुरु सुधर्मास्वामी गणधर भगवन्त की है। अन्य सभी गणधरों ने केवलज्ञान प्राप्तकर अपनी शिष्य संपदा को भी सुधर्मास्वामी को सौंपी थी, इसी कारण से श्री वीरप्रभु ने वर्तमान शासन श्री सुधर्मा गुणधर को सोंप्रा था उनकी ही शिष्य परंपरा पंचम आरे के अंत तक चलेगी ।

स्वामी ने स्थापना कल्प में कहा है। तथा वराटक ये तीन लाईन वाले कोड़े होते है। वर्तमान काल में स्थापना चार्य तरीके इसका उपयोग देखने में नही आता है। इस में भी गुरु की स्थापना हो सकती है। इस असद्भाव स्थापना समजना। क्योंकी इस में गुरु समान पुरुष आकार नही है।

तथा चंदन या अन्य उत्तम काष्ट को घड़ कर गुरु मूर्त्ति बनाकर उसमें ३६ गुणों का आरोपण प्रतिष्ठा विधि द्वारा कर, गुरु तरीके मानना-उसे सद्भाव स्थापना समजना ।

[१]चारित्र के उपकरण जैसे डंड़ा या ओघे की डांडी विगेरे में गुरु की स्थापना करना, ये काष्ट संबंधि असद्भाव स्थापना है।

पुस्त अर्थात् लेप्य कर्म याने रंग विगेरे से गुरु की मूर्ति [२]आलेखना अथवा पुस्तक जो ज्ञान का उपकरण है उसे गुरु तरीके स्थापन करना, इसे गुरुस्थापना समजना। तथा चित्रकर्म याने पाषाण आदि पदार्थोको घड़कर गुरुमूर्ति बनायी हो उसे गुरु तरीके स्थापन करना । पुस्त-चित्रकर्मादि में स्व बुद्धि से सद्भाव असद्भाव स्थापना संबंधि विचार यथायोग्य करना ।

उपरोक्त दोनों प्रकार की स्थापना गुरु वंदन या धर्म क्रिया के अल्पकाल के लिए स्थापना उसे इत्वर स्थापना कहते है। तथा प्रतिष्ठादि विधि से की गयी स्थापना जो द्रव्य (वस्तु) जहाँ तक रहता हैं वहाँ तक गुरु तरीके माना जाता है उसे यावत् कथित स्थापना कहते है।(यावत्=जहाँतक (वस्तु टीकती है) वहाँ तक कथितः कही गयी उसे यावत्कथित ऐसा शब्दार्थ है) इस स्थापना को साक्षात् गुरु मानकर धर्मक्रिया करना, और गुरु की तरह स्थापनाजी की भी आशातना नही करना ।

***

अवतरण:- गुरु की अनुपस्थिति में स्थापनाका क्या प्रयोजन ? उसने कार्य सिद्धि कैसे हो सकती है ? जिसे इस गाथा में दृष्टान्त सहित इस गाथा में दर्शाया गया है।

गुरु विरहंमि ठवणा, गुरुवए सोवदंसणत्थं च ।
जिण विरहंमि जिणबिंब - सेवणा मंतणं सहलं ॥३०॥

---

(१) वर्तमान काल में खरतर गच्छ के मुनि छोटी पेटी में चंदन की, सोगठे के आकार वाली (पांच सोगठे) असद्भाव स्थापना रखते है। जो पंचपरमेष्ठि सूचक है।

(२) ये अर्थ चित्र कर्म में भी करना हो तो कर सकते है।

शब्दार्थ:- उवएस=उपदेश-आदेश-आज्ञा, उवदंसणत्थं=दर्शाने के लिए, जिणबिंब सेवणा=जिनेश्वर प्रतिमाकी सेवा, आमंतणं=आमंत्रण, सहलं=सफल.

गाथार्थ:- साक्षात् गुरुका विरह हो तब (गुरुकी) स्थापना की जाती है। और वह स्थापना गुरु की आज्ञा दर्शाने के लिए होती है। (इसलिए गाथा में दर्शाये गयेच शब्द से स्थापना विना धर्मानुष्ठान नही करना)(उसके दृष्टान्त) जब साक्षात् जिनेश्वर का विरह होता है तब जिनेश्वरकी प्रतिमाकी सेवा और आमंत्रण सफल होता है। (वैसे ही गुरुके विरह में उनकी प्रतिमा-स्थापना समक्ष किये गये धर्मानुष्ठान सफल होते हैं) ॥३०॥

भावार्थ:- गाथार्थवत् सुगम है। तात्पर्य यह है कि स्थापना के समय सामायिक प्रतिक्रमण गुरु वंदन आदि धर्मनुष्ठान करते समय गुरु के सामने ही धर्मक्रियाएँ कर रहे है, आदेश भी गुरु से ले रहे हैं। और साक्षात् गुरु महाराज ही आदेश दे रहे हैं। ऐसा मानकर श्रद्धापूर्वक धर्मक्रियाएँ करने पर सफल बनती है।

श्रीजिनेश्वर परमात्मा के शासन में गुरु का अत्यंत मान है। उनकी सेवा-सुश्रुषा और भक्ति मात्र से भी भवसिन्धुसे पार हो सकते है। अतः गुरुकी आशातनासे बचना चाहिये । शिष्य को गुरु का संपूर्ण विनय करना चाहिये । इस गाथा में गुरुका अत्यंत महत्व है, स्पष्ट नजर आता है।

***

अवतरण:-अवग्रह, दूरी,गुरु से कितना दूर रहना चाहिये । इस विषय पर १६ वाँ द्वार।

चउदिसि गुरुग्गहो इह, अहुट्ठ तेरस करे सपरपक्खे ।
अणणुन्नायस्स सया, न कप्पए तत्थ पविसेउं ॥३१॥

शब्दार्थ:- उग्गहो=अवग्रह, अह=अथ, अब, उठ्ठ=साड़ा तीन (हाथ), स (पक्खे)=स्व (पक्ष में), परपक्खे=पर पक्ष में, अणणुन्नायस्स=गुरु की अनुमती नही ली हो उसको

गाथार्थ:- अब यहाँ चारों दिशाओ में गुरु का अवग्रह स्वपक्ष के विषय में ३॥ हाथ है, और परपक्ष के विषय में १३ हाथ है। इसलिए उस अवग्रह में गुरु की अनुमति नही हो ऐसे साधुको कभी प्रवेश करना उचित नही । ॥३१॥

विशेषार्थ:-स्वपक्ष: पुरुष को लेकर पुरुष स्वपक्ष और स्त्री को लेकर स्त्री स्वपक्ष है।

परपक्ष: पुरुष की अपेक्षासे स्त्री, और स्त्री की अपेक्षा से पुरुष परपक्ष है।

इस प्रकार स्व पक्ष, परपक्ष दोनो ही दो दो प्रकार के है। स्वपक्ष वाले को ३॥ तीन हाथ, व परपक्ष वाले को १३ हाथ गुरु से दूर रहकर वंदनादि क्रियाएँ करनी चाहिये

स्वपक्ष	अवग्रह	परपक्ष	अवग्रह
१) गुरु से साधुको	३॥ हाथ	१) गुरु से साध्वी को	१३ हाथ
२) गुरु से श्रावक को	३॥ हाथ	२) गुरु से श्राविका को	१३ हाथ
३) गुरुणीजी से साध्वी को	३॥ हाथ	३) साध्वी से साधुको	१३ हाथ
४) गुरुणीजी से श्राविका को	३॥ हाथ	४) साध्वी से श्रावक को	१३ हाथ

इस कहे हुए अवग्रह में गुरु या गुरुणीजी की अनुमति बिना प्रवेश नही करना चाहिये। अवग्रह के पालन से गुरु के विनय रुप मर्यादा का पालन होता है। गुरु की आशातना ओं से बचते है। तथा शील-सदाचार का पालन अच्छी तरह होता है। इस प्रकार अनेक गुणों की प्राप्ति के कारण श्री जिनेश्वर भगवन्तो अवग्रह की मर्यादा दर्शायी गयी है। अत: उसका सम्यक प्रकार से पालन करना ही परम कल्याण का कारण है।

***

अवतरण:- वंदन सूत्र के सर्वाक्षरो की संख्या रुप १७ वां द्धार तथा पदों की संख्या रुप १८ वाँ द्धार, इस गाथा में दर्शाया गया है।

पणतिग बारसदुग तिग, चउरो छट्ठाण पय इगुणतीसं ।
गुणतीस सेस आवस्सयाइ, सव्वपय अडवन्ना ॥३२॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार सुगम है।

गाथार्थ:- १७ वाँ अक्षर द्धार सुगम होने के कारण नही कहा, और १८ वाँ पद द्धार, इस प्रकार (वंदन के आगे कहे जाने वाले ६ स्थान के विषयमें अनुक्रम से) ५-३-१२-२-३-४ इन छ स्थानो में २९ पद है। तथा शेष रहे हुए अन्य भी 'आवस्सि आए' इत्यादि २९ पद हैं। जिससे सर्व पद ५८ हैं। ॥३२॥

विशेषार्थः- १७ वाँ अक्षर द्वार सरल है, इसलिए गाथा में नही दर्शाया फिरभी यत्किंचित् इस प्रकार है। वंदन सूत्र के सर्व अक्षर २२६ (दोसौ छब्बीस उसमें लघु अक्षर २०१ (दोसौ एक) हैं। और गुरु अक्षर (संयुक्त अक्षर) पच्चीस हैं। वो इस प्रकार--**च्छा-ज्जा-ग्ग-ज्जो-प्प-क्कं-त्ता-ज्जं-क्क-**क्क - त्ती- न्न - च्छा - क्क - क्क - क्क - व्व - व्व - च्छो - व्व - म्मा - क्क - स्स - क्क - प्पा- इति अक्षर द्वार ।

१८ वाँ [1]पद द्वार इस प्रकार है-३३वीं गाथा में वंदन करनेवाले के ६ स्थान कहे जायेंगे। उसमें अनुक्रम से ५-३-१२-२-३-४ पद है, और शेष २१ पद मिलके कुल ५८ पद हैं। वो इस प्राकार...

इच्छामि-खमासमणो-वंदिउं-जावणिज्जाए-निसीहियाए- (ये प्रथम स्थान के पांच पद-उसके बाद) अणुजाणह-मे-मिउग्गहं (ये दूसरे स्थान के ३ पद उसके बाद) निसीहि [2]अहो कायं काय संफासं-खमणिज्जो-भे-किलामो-अप्पकिलंताण-बहुसुभेण-भे-दिवसो-वइक्कंतो (ये तीसरे स्थान के १२ पद इसके बाद)
जत्ता-भे (ये चौथे स्थान के २ पद है) जवणिज्जं-च-भे (ये ५ वें स्थान के तीन पद हैं) खामेमि-खमासमणो-देवसिअं-वइक्कमं(ये ६ ट्ठे स्थान के ४ पद है) इस प्रकार ६ स्थानो के कुल २१ पद हुए । (पश्चात्)

* आवश्यक सूत्र में रिसं ये संयुक्त अक्षर है, तथा श्री ज्ञानविमलसूरि के बालाव-बोध में कहा हैं कि ' ये पद अनवस्थित होने से कितनेक आचार्य इसे गिनती मे नही गिनते, और जंकिंचि मिच्छाए को एक ही पद मानते हैं। अतः बहुश्रुत कहे वह प्रमाण ।

आवस्सियाए पडिक्कमामि-खमासमणाणं-देवसियाए-आसायणाए-तित्तीसन्नयराए-जं किंचि मिच्छाए-मणदुक्कडाए-वयदुक्कड़ाए -कायदुक्कडाए-कोहाए-माणाए-मायाए-लोभाए-सव्वकालियाए-सव्वमिच्छोवथाराए-सव्वधम्मइक्कमणाए-आसयणाए-जो मे-अइयारो-कओ-तस्स-खमासमणो-पडिक्कमामि-निंदामि-गरिहामि-अप्पाणं-वोसिरामि ॥ इस प्रकार कुल ५८ पद हुए ॥

(१) पदं च विभकत्यन्तमत्र ग्राहयम्-इति वचनात्

(२) अहो अव्यय होने से भिन्न पद संभवित होता है। अर्थ से तो अहोकायं एक ही है इसी कारण आव० सूत्र में एक शब्द से लिखागया लगता है।

अवतरण:- वंदन करने वाला शिष्य जिन छ हकिकतों से गुरु को वंदन करता है, उसको शिष्य के ६ स्थान कहा जाता है। उसका १९ वां द्वार

इच्छा य अणुन्नवणा, अव्वाबाहं च जत्त जवणा य ।
अवराहखामणावि अ,वंदण दायस्स छट्ठाणा ॥३३॥

शब्दार्थ:- अणुन्नवणा=अनुज्ञापन (आज्ञा), अव्वाबाहं=अव्याबाध (=सुख-शाता), जत्त=यात्रा (=संयमयात्रा), जवणा=यापना (देहसमाधि) अवराह=अपराध

गाथार्थ:- ईच्छा, अनुज्ञा, अव्याबाध, संयमयात्रा, देहसमाधि और अपराधखामणा ये वंदन करने वाले शिष्य के ६ स्थान है। ॥३३॥

विशेषार्थ:- प्रथम 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए' इन पाँच पदों के द्वारा शिष्य गुरु को वंदन करने की ईच्छा दर्शाता है। अतः ईच्छा ये शिष्य का प्रथम वंदन स्थान कहलाता है।

अभिलाषा व्यक्त करने के बाद 'अणुजाणह मे मिउग्गहं='

हे भगवंत 'मित अवग्रह में प्रवेश करने की अनुमति दिजीये, इन तीन पदों द्वारा शिष्य ने अवग्रह में प्रवेश करने की अनुज्ञा मांगी है। अतः शिष्य का अनुज्ञा ये दूसरा वंदनस्थान कहलाता है।

'निसीहि से वइक्कंतो' तक के १२ पदों द्वारा शिष्यने गुरु को वंदन करते हुए अव्याबाध सुखशाता पूछी है। अतः अव्याबाध नाम का तीसरा वंदन स्थान समजना ।

'जत्ता भे' इन दो पदों द्वारा शिष्य ने गुरु से पूछा है कि "हे भगवन्त" आपकी संयमयात्रा सुखपूर्वक चल रही है न? इस प्रकार पूछा है। अतः यात्रा नामक चौथा वंदनस्थान समजना।

'जवणिज्जं च भे' इन तीन पदों से शिष्य ने गुरु से यापना-याने शरीर की समाधि (सुखशाता) पूछी है। अतः यापना नामक पांचवाँ वंदनस्थान समजना ।

'खामेमि खमासमणो देवसिअं वइक्कमं' इन चार पदों से शिष्य दिन में हुए अपराधों की क्षमा याचना करता है। अतः अपराध क्षमापना नामका शिष्यका छट्ठां वंदनस्थान हुआ।

(इस के बाद के पाठ में विशेष अपराध की क्षमायाचना करता है, लेकिन इस क्षमायाचना को अन्यत्र कही पर भी नही गिनी है)

१ मित= गुरु के देह प्रमाण वाला अर्थात ३॥ हाथ, अवग्रह=चारो दिशाओ का क्षेत्रभाव उसे मितावग्रह कहा जाता है।

प्रश्न:- अव्याबाध, यात्रा और यापना इन तीनों में परस्पर क्या फर्क है ?

उत्तर:- तलवार आदि के अभिघात से हुई व्याबाध अर्थात पीड़ा वह द्रव्य-व्याबाध है, और मिथ्यात्वादि (शल्य) से होने वाली पीड़ा वह भाव व्याबाधा है। इन दोनो का अभाव उसे यहाँ अव्याबाधा समजना । तथा सुखपूर्वक संयम क्रिया का पालन हो रहा हो उसे यात्रा कहते है। याने औषध आदि से होनेवाली शरीर की समाधि द्रव्ययापना तथा इन्द्रिय और मनके उपशम होनेवालि शरीर की समाधि भावयापना है। इस प्रकार दोनो प्रकार की यापना समजना । इस भावार्थ से तीनो का स्पष्टी करण समज में आसकता है।

***

अवतरण:- पूर्व गाथा में कहे गये शिष्य के प्रश्न रुप छ स्थानो में गुरु के उत्तर रुप ६ वचन होते हैं। गुरु के छ वचन रुप २० वाँ द्वार इस गाथा में दर्शाया गया है।

छंदेणणुजाणामि, तहत्ति तुब्भंपि वट्टए एवं ।
अहमवि खामेमि तुमं, वयणाइ वंदणरिहस्स ॥ ३४॥

शब्दार्थ:- छंदेण=इच्छासे, अभिप्रायसे, अणुजाणामि=आज्ञा देता हूँ, तहत्ति=जैसा, तुब्भंपि=तुझेभी, वट्टए= है, एवं=इसीतरह, अहमवि=मै भी,खामेमि=क्षमा याचना करता है।, तुमं=तुझे, वयणा इं=ये (छ) वचन, वंदण-अरिहस्स= वंदन करने योग्य के (अर्थात गुरु के)

गाथार्थ:- छंदेण-अणुजाणामि-तहत्ति-तुब्भंपि-वट्टए-एवं और 'अहमवि खामेमि तुमं' ये ६ वचन गुरु के होते हैं। ॥३४॥

विशेषार्थ:- शिष्य अपने प्रथम वंदन स्थान में इच्छामि इत्यादि पाँच पदों द्वारा जब गुरु को वंदन करने की इच्छा व्यक्त करता है, तब वंदन करवाने के भाव वाले 'गुरु 'छंदेण' इस प्रकार बोलते हैं। यह गुरु का प्रथम वचन है। यदि किसी कारण से गुरु वंदन नही करवाना चाहें तो 'पडिक्खह' अथवा [२]'तिविहेण' शब्द बोलते हैं। उस समय शिष्य संक्षिप्त वंदन याने खमासमणा देकर या मत्थएण वंदामि कहकर चला जाता है। लेकिन वंदन किये बिना नही जाता है। ये शिष्टाचार है।

१. **छंदेण**=अभिप्राय से, अर्थात् मेरा भी यही अभिप्राय है (किंतु वंदन कर) प्रव० सा० वृत्ति । इसमें शिष्य का : "जैसा तेरा अभिप्राय" इस प्रकार का अर्थ नही है। लेकिन समज सकें वैसा है।

२. **तिविहेण** ये पद आवश्यक वृत्ति के अनुसार कहा है, और उसका अर्थ "मन वचन काया द्वारा वंदन करने का निषेध है" ये अर्थ प्रव सारो० वृत्ति के अनुसार कहा है।

दूसरे वंदन स्थान में अणुजाणह मे मिउग्गहं इन तीन पदो द्वारा शिष्य वंदन करने के लिए जब अवग्रह में प्रवेश करने के लिए अनुमति मांगता है, तब गुरु 'अणुजाणामि' (=अनुमती देता हूँ) इस प्रकार बोलते हैं। इसे गुरु का दूसरा वचन जानना ।

तीसरे वंदन स्थान में निसीहि से दिवसो वइक्कंतो तक के १२ पदों द्वारा (गुरु के चरण को स्पर्श करने से हुई अल्प पीड़ा को क्षमायाचना करके) आपका आजका दिन अच्छी तरह व्यतीत हुआ होगा ? इस प्रकार सुखशाता पूछता है। तब गुरु[१] 'तहत्ति' कहते है। इसे गुरु का तीसरा वचन समजना ।

'जत्ता भे इन दो पदों द्वारा शिष्य गुरु को "आपकी सयंम यात्रा सुखपूर्वक चल रही हैं ?" इस प्रकार पूछता है। तब गुरु 'तुब्भंपि वट्टए' 'बोलते हैं (अर्थात तुझे भी (शाता) है ? याने तेरी संयम यात्रा भी अच्छी तरह चल रही है?) ये गुरु का चोथा वचन समजना ।

"जवणिज्जं च भे" इन ये तीन पदों से गुरु को यापना (देहकी सुख समाधि) पूछता है। प्रत्युत्तर में गुरु 'एवं' बोलते है एवं=ऐसे है माने मेरे शरीर को सुख समाधि वर्तती है। गुरुका पाँचवाँ वचन समजना ।

खामेमि खमासमणो देवसिअं वइक्कमं इस छट्ठे वंदन स्थान में चार पदो द्वारा शिष्य गुरु से कहता है कि "हे क्षमाश्रमण" दिन भर में मेरे द्वारा अपराध हुआ हो उसकी क्षमा मांगता है। प्रत्युत्तर में गुरु 'अहमवि खामेमि तुमं' (=मैं भी तुझे खमाता हूँ) ये गुरु का छट्ठा वचन है।

इस प्रकार शिष्य के छ वंदन स्थान के समय गुरु जो प्रत्युत्तर देते है। वह छ गुरु वचन है।

***

अवतरण: गुरु संबंधि ३३ आशातनाओं से बचने रुप २१ वाँ द्वार

पुरओ पक्खासन्ने, गंताचिट्ठण निसीअणा यमणे ।
आलोअण ऽ पडिसुणणे पुव्वालवणे य आलोए ॥ ३५॥

तह उवदंस निमंतण, खद्धाययणे तहा अपडिसुणणे ।
खद्धत्ति य तत्थगए, किं तुं तज्जाय नोसुमणे ॥३६॥

नो सरसि कहंछित्ता, परिसंभित्ता अणुट्ठियाइ कहे ।
संथारपायघट्टण चिट्ठुच्च समासणे आवि ॥ ३७॥

---

१. तहत्ति =जैसा अर्थात् जैसा तुं कहता है वैसा ही मेरा आज का दिन शुभ व्यतीत हुआ है।

शब्दार्थ: गाथार्थवत्

** गाथा मे पुरोगन्ता ये शब्द (गुरु के आगे चलने वाले शिष्य के लिए आशातना रुप समजना -इस आशय वाला होने से) शिष्य का विशेषण होता है। और इसी तरह गाथा में कहेगये सारे ही शब्द शिष्य के विशेषण-तरीके गिनना है। पुरोगमन (गुरु के आगे चलना आशातना है, "इस अर्थ के आधार से) आशातना का नाम कहा गया है।" गाथार्थ के सारे ही शब्द आशातना के नाम तरीके गिने है। लेकिन शिष्य के विशेषण तरीके नही। इस प्रकार करने का कारण आशातना के नाम का ही यहाँ प्रयोजन होने से नामो की सुगमता करना मात्र है।

१ गाथा में ययपि आसन्न शब्द है, लेकिन उसे यहाँ पृष्ठ के अर्थ के साथ जोड़ने के लिए है। तथा पक्षकी आशातना के समय भी उपलक्षण से प्रयोग करना है।

गाथार्थ: पुरोगमन (पुरोगन्ता) पक्षगमन-आसन्नगमन ('पृष्ठगमन) तथा पुरःस्थ (=पुरःतिष्ठन्) पक्षस्थ (पक्षेतिष्ठन्) पृष्ठस्थ (आसन्न-तिष्ठन) -तथा पुरो निषीदन पक्षेनिषीदन आसन्न निषीदन (पृष्ठनिषीदन) (ये नौ आशातनाएँ तीन तीन के त्रिक रुप है) तथा पूर्व आचमन पूर्व आलोचन - अप्रतिश्रवण, पूर्वालापन, पूर्वालोचन, पूर्वोपदर्शन पूर्व निमंत्रण, खद्धदान-खद्धादन, अप्रतिश्रवण, खद्धं (खद्ध भाषण) तत्रगत, कि (क्या), तु, तज्जात, (तज्जात वचन) नोसुमन नोस्मरण कथाछद, परिषद भेद, अनुत्थित कथा, संथारापाद घट्टनं संथारावस्थान उच्चासन और समासन आदि=यह भी ये ३३ आशातनाएँ है। (३५-३६-३७)

(१) प्रश्न :- गाथा में तो पृष्ठ शब्द का प्रयोग नहि किया गया, लेकिन आसन्न शब्द का ही प्रयोग किया है, फिर आसन्न गमन के स्थान पर पृष्ठगमन आशात्तना क्यों कही ?

उत्तर: गुरु के पीछे चलने का अधिकार तो शिष्य को है ही, लेकिन आसन्न नजदीक में चलने का अधिकार नही है। अतः पृष्द शब्द के स्थानपर आसन्न शब्द का प्रयोग किया है और उसे पृष्ठ शब्द से जोड़ने के लिए है। जिससे पिछे चलना आशातना नही है, लेकिन अति नजदीक (स्पर्शहोते हुए) चलना आशातना है। तथा ग्रंथो में पृष्ठगमन आशातना लिखी है, अतः यहाँ पर भी पृष्ठगमन आशातना दर्शायी है ।

(३) आगे की ३, पीछे की ३, बाजु की ३, (चलना बैठना और खड़ेरहने के संबध में) ये आशातनाओं के त्रिक हैं, ३ X ३=९ कुल नौ आशातनाएँ हुई । अथवा चलने की ३, बैठने की ३, खड़ेरहने की ३ इस प्रकार भी ९ आशातनाएँ त्रिकरुप में होती है।

विशेषार्थ : ३३ आशातनाओं के नाम और भावार्थ संक्षेप में इस प्रकार है।

१) पुरोगमन: (पुरः आगे गमन चलना) बिना कारण गुरु भगवन्त के आगे चलने से विनय का भंग (अविनय) होता है। अतः गुरु भगवन्त के आगे नही चलना ।

२) पक्षगमन: (पक्ष=पड़खे) गुरु भगवंत के दाहिनी या बाँयी और नजदीक नही चलना। (नजदीक चलने से श्वास खाँसी छींक इत्यादि आने से गुरु को श्लेश्म विगेरे लगता है। अतः ऐसी आशातना न हो इसके लिए दूर चलना चाहीये)

३) [1]पृष्ठ (पीछे) गमन: गुरु भगवन्त के पीछे स्पर्श हो वैसे चलना भी आशातना है। **(आसन्न)**

४) पुरः स्थ: (पुरः आगे स्थ=खड़े रहना) गुरु भगवन्त के आगे खड़े रहना भी आशातना है।

५) पक्ष स्थ: गुरु भगवन्त के दाहिनी या बाँयी ओर नजदीक में खड़े रहना भी आशातना है।

६) पृष्ठ (पीछे) स्थ:-गुरु के पीछे लेकिन नजदीक में खड़े रहना आशातना है। **(आसन्न)**

७) पुरोनिषीदन: गुरु के आगे (निषीदन) बैठना आशातना है।

८) पक्ष निषीदन : गुरु के दाँये बाँये नजदीक में बैठना - आशातना है।

९) [1]पृष्ठ (पीछे) निषीदन: गुरु के पीछे नजदीक में बैठना आशातना है। **(आसन्न)**

१०. आचमन:- गुरु के साथ उच्चारभूमि के (स्थंडिल के लिए) लिए जाने वाला शिष्य गुरु से पूर्व आचमन (हाथ-पाँव की शुद्धि) करता है तो आशातना । या आहार-पानी गुरुभगवन्त से पूर्व कर के खड़ा हो जाय - तो ये आशातना लगती है।

११. आलोचना : बाहर से उपाश्रय आने पर गुरु से पूर्व गमनागमन इरियावहि कर लेना ये आलोचना है।

१२. अप्रतिश्रवण : जब गुरु पूछे कि 'कौन सो रहा है? कौन जागरहा है'? शिष्य जागरहा हो फिर भी जवाब न दे = अप्रतिश्रवण आशातना है।

१३ पूर्वालापन: वंदनादि कार्य से आनेवाले गृहस्थ को गुरु से पहले शिष्य बुलावे, या बातचित करे तो पूर्वालापन आशातना है।

१४ [1]पूर्वालोचन: गोचरी (आहारादि) लाकर के प्रथम अन्य साधु के सामने गोचरी आलोचना, बाद में गुरु के सामने आलोचना - पूर्वालोचना आशातना दोष लगता है।

(१) ११ वीं और १४ वीं आशातना नाम से समान है, लेकिन अर्थ से भिन्न समजना ।

(गोचरी संबंधित इरियावहिया प्रतिक्रमण वचन उसे आलोचना कहा जाता है)

१५. पूर्वोपदर्शन: गोचरी लाकर प्रथम अन्य साधु को दिखाना, बाद में गुरु को दिखाना, पूर्वोपदर्शन आशातना है।

१६. पूर्व निमंत्रण:- आहार पानी ग्रहण करने के लिए प्रथम अन्य साधु को निमंत्रण देना बाद में गुरु को निमन्त्रण देना (बुलाना) पूर्व निमन्त्रण आशातना दोष है।

१७. [1]खद्ध दान: गुरु की अनुमति लिये बिना ही, लाये हुए मृदु स्निग्धादि आहार को यथोचित साधुओं में बांटदेना उसे खद्ध दान आशातना कहते हैं।

१८ [2]खद्धादन : आहार लाकर गुरु को अल्प देकर स्निग्ध और मधुर आहार का सेवन (उत्तम द्रव्य से बना हुआ आहार) स्वयं ही करने बैठजावे खद्धादान आशातना दोष है। (खद्ध=खाध (मधुर आहार को) अदन खाना (ग्रहण करना) उसे

१९. अप्रतिश्रवण[3]: गुरु बुलावे तब नही बोलना अप्रतिश्रवण आशातना है। (१२ वीं व १९ वी आशातना के नाम समान है लेकिन अर्थ दृष्टि से भिन्न है १२ वी आशातना[3] रात्रि से संबंधित है जब कि १९ वीं आशातना दिनसे संबंधित है।

२०. खद्ध [4]भाषण:- गुरु भगवन्त के सामने कठोर और ऊंची आवाज से बोलना (खद्ध=प्रचुर अधिक बोलना) खद्ध भाषण दोष है।

२१ तत्रगत (भाषण) : गुरु बुलावें तब शिष्य को [4]मत्थएण वंदामि इत्यादि शब्दों का उच्चारण करतेहुए शिघ्र ऊठकर नम्रता पूर्वक गुरु के पास जाना चाहिये बल्कि अपने आसन पर बैठे हुए ही जवाब दे =तत्रगत (भाषण) आशातना है।

२२. किं भाषण :- गुरु बुलावे तब क्या है? क्या काम है? इस प्रकार शिष्य पूछता है तो किं भाषण आशातना लगती है। (बल्कि नम्रता पूर्वक "मत्थएण वंदामि" बोलकर गुरु के पास जाकर "आज्ञा प्रदान किजीये" इत्यादि नम्र वचन बोलना चाहिये)

२३. तुं भाषण : गुरु को सम्मान वाले शब्दों से (श्री पूज्य आप विगेरे) बुलाना चाहिये। बल्कि तु, तुझे तेरे इत्यादि अनादर दर्शाने वाले या तुं कारे वाले शब्दों से बुलाने तुं भाषण आशातना है।

---

१) खद्ध प्रचुर अधिक देना ऐसा अर्थ भी है।

२) यहाँ खद्धादि अदन ये आशातना भी कही है। जिसमें खद्ध का अर्थ प्रचुर अधिक होता है। प्रचुरादि अर्थ सुगम न होने के कारण यहाँ नही कहा है।

३) इति प्रव० सारो० और धर्म संग्रह वृत्ति ।

४) वर्तमान काल में ये शब्द प्रचलित नहि है। फिर भी शिघ्र 'जी' शब्द का प्रयोग कर उठने का रिवाज भी विनयवाला है।

२४. तज्जात (भाषण): जब गुरु शिष्य को कहे कि "तू इस ये ग्लान (बिमार) साधु कि सेवा क्यो नहि करता? आजकल बहुत प्रमादी हो गया है" तब शिष्य प्रत्यूत्तर मे गुरु से कहे कि "आप स्वयं क्यों नही कर लेते ?" आप भी तो प्रमादी हो गये है। इत्यादि शिक्षा प्रद वचन कहे या विपरित जवाब दे - उसे तज्जात भाषण या तज्जात वचन आशातना कहते है। (यहाँ तज्जात=उसी तरह के (विपरित जवाब)

२५. नो सुमन: गुरु प्रवचन देते हो तब "आपने अति प्रशंसनीय प्रवचन दीया" इत्यदि प्रशंसा के वचन कहना तो दूर रहा और प्रवचन का प्रभाव या हर्षभाव भी व्यक्त नही करता है (ईष्या से गुरु की प्रवचन शैली को अपनी शैली से कमजोर मानता है) उसे नो सुमन आशातना दोष कहते हैं।

२६. नो स्मरण:- गुरु धर्म कथा कह रहे हो तब उनको कहे कि आप को ये बात मालुम नही है। "ये अर्थ युक्ति संगत नही है" इत्यादि बोलता है तो आशातना ।

२७. कथाछेद: जिस धर्मकथा को गुरु कह रहे हो, उसी कथा के लिए सभाजनो से कहना कि "मै तुम्हे इस कथा को और अच्छी तरह समजाऊंगा" इत्यादि कहना । अथवा कथा पुनः समजाकर चालु प्रवचन को भंग करना कथाछेद आशातना है।

२८. परिषद् भेद:- प्रवचन सुनने में सभा एकतान हुई हो उसी समय शिष्य आकर कहे कि "कथा कहाँ तक लंबी करोगे ? गोचरी (आहार पानी) का समय हो गया है। या पौरिषी का समय हो गया है" इत्यादि शब्दों के द्धारा सभाके लोंगो का चित्त भ्रमित करना । या ऐसा कुछ कहे कि जिससे सभा एकत्रित न हो उसे परिषद् भेद आशातना कहते है।

२९. अनुत्थित कथा : गुरु के प्रवचन के बाद अपनी चतुराई दर्शाने के लिए प्रवचन मे कही हुई कथा को विस्तार से समजाना अनुत्थित कथा आशातना है।

३०. संथार पायघट्टन:-गुरु की अनुमति विना संथारे को हाथ से या पैर से स्पर्श करना, स्पर्श करने के बाद दोष की क्षमायाचना नही करना आशातना है। कारण कि गुरु की तरह उपकरण भी पूज्य हैं (अतः आज्ञाविना हाथ या पैर स्पर्श नही करना चाहि ये । भूल के लिए क्षमा मांगनी चाहिये यहाँ शय्या ३॥ हाथ की (शरीर प्रमाण) और संथारा २ ॥ हाथका समजना)

३१. संथारावस्थान :- (अवस्थान=खड़ेरहना) गुरु की शय्या या संथारे पर खड़ेरहना (उपलक्षण से) बैठना या सोना भी आशातना है।

३२. उच्चासन :- गुरु से अथवा गुरु के सामने उनसे ऊंचे आसन ऊपर बैठना उच्चासन आशातना दोष है।

३३. समासन: गुरु से अथवा गुरु के सामने समान आसन ऊपर बैठना उसे समासन आशातना कहते हैं।

विनयवंत शिष्य को चाहिये कि वो गुरु की ३३ आशातनाओं (अविनय) से बचे। ऐसे शिष्य पर गुरु की स्वाभाविक कृपा बरसती है। जिससे ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति सुगम होती है। मुनि को ध्यान में रखकर मुख्यता से ये आशातनाएँ कही है। श्रावक को भी यथायोग्य इन आशातनाओं से बचना चाहिये।

॥ जघन्यादि भेद से गुरु की ३ आशातनाएँ ॥

(१) जघन्य आशातना : - गुरु को पाँव विगेरे से स्पर्श करना ।

(२) मध्यम आशातना :- थूंक विगेरे लगाना ।

(३) उत्कृष्ट आशातना :- गुरु की आज्ञा नहि मानना । विपरित चलना अनुचित व्यवहार करना कठोर शब्दों से प्रतिकार करना । विगेरे (इस प्रकार साक्षात् गुरु की ३३ प्रकार की आशातनाएँ या ३ प्रकार की आशातनाएँ जानना)

॥ गुरु स्थापना की ३ आशातनाएँ ॥

(१) जघन्य आशातना :- स्थापना को पाँव लगाना, इधर ऊधर करना ।

(२) मध्यम आशातना :- भूमि पर गिरा देना, विनय रहित भाव से यहाँ वहाँ रखना ।

(३) उत्कृष्ट आशातना : स्थापना को नष्ट करना टुकड़े करना ।
(श्राद्ध विधि वृत्तिः)

***

अवतरण :- बृहद गुरुवंदन करने के लिए दो प्रकार की विधिका २२ वाँ द्वार - कहा जाता है। सुबह - शाम का लघुप्रतिक्रमण दर्शाया है उसमें प्रथम सुबह का लघुप्रतिक्रमण इस प्रकार है।

इरिया कुसुमिणुसग्गो, चिइ वंदण पुत्ति वंदणा - लोयं ।
वंदण खामण वंदण, संवर चउछोभ दुसज्झाओ ॥ ३८॥

शब्दार्थ:- (गाथार्थ वत्) भावार्थ में लिखे गये क्रमानुसार

गाथार्थ :- भावार्थ अनुसार सुगम है।

विशेषार्थ : प्रातः काल का प्रतिक्रमण करने का नियमवाले कभी कभार प्रतिक्रमण की सामग्री के अभावमें अथवा वैसी शक्ति के अभाव में उन्हे इस गाथा में दर्शायी गयी विधि अनुसार बृहत् गुरु वंदन तो अवश्य करना चाहिये। ये बृहत् गुरुवंदन ही लघुप्रतिक्रमण माना जाता है। प्रातः काल के बृहत गुरुवंदन की (लघुप्रतिक्रमण का) संक्षेप में [1]विधि इस प्रकार है।

१). इरियावहियं- गुरु के समीप में इरियावहियं (लोगस्स तक) प्रतिक्रमना।

२). कुसुमिण दुसुमिण का काउस्सग :- पश्चात् रात्रि के समय राग के कारण आये हुए (स्त्री गमनादिक) कुस्वप्न, और द्वेष के कारण आने वाले दुःस्वप्न के निवारण के लिए ४ लोगस्स का काउस्सग्ग किया जाता है उसे कुसुमिण दुसुमिण का काउस्सग्ग समजना।

३). चैत्य वंदन:- पश्चात् चैत्य वंदन का आदेश लेकर जगचिन्तामणि चैत्यवंदन से जयवीयराय तक बोलना।

४). मुहपत्ति :- पश्चात् खमासमणा देकर आदेश मांगकर मुहपत्ति की प्रतिलेखना करना।

५). वंदण:- पश्चात् दो बार द्वादशावर्त्त वंदन करना।

६). आलोचना :- फिर आदेश लेकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन राईयं आलोउं? इच्छं आलोएमि जो मे राइओ इत्यादि पद बोलकर राईय" आलोयणा करना यही लघुप्रतिक्रमण सूत्र है।

७) वंदण :-फिर पून : दो बार द्वादशावर्त वंदन करना।

८) खामणा:- पश्चात् राईय अब्भुट्ठिओ खामना।

९) वंदन:- पश्चात् पुनः दो बार द्वादशावर्त्त वंदन करना।

१०) संवर (पच्चक्खाण) :- पश्चात् गुरु से यथाशक्ति पच्चक्खाण लेना।

११) चार छोभ वंदन :- पश्चात् ४ खमासमण पूर्वक "भगवानहं" आदि ४ छोभवंदन करना।

---

१) **क्रमशः** विशेष विधि गुरुगम से समजना। ये बृहत् गुरुवंदन की अपेक्षा से द्वादशावर्त्त वंदन ही यहाँ लघु गुरुवंदन समजना।

१२) दो स्वाध्याय आदेश:- पश्चात् दो खमासमण पूर्वक सज्झाय करने के दो आदेश मांगना, और गुरु के समक्ष स्वाध्याय करना ।

***

अवतरण:- इस गाथा में संध्या के समय किये जाने वाले बृहत् गुरुवंदन की विधि याने लघुप्रतिक्रमण की विधि दर्शायी है।

इरिया-चिइ-वंदण-पुत्ति-वंदन-चरिम-वंदणा-लोयं।
वंदण खामण चउछोभ - दिवसुस्सग्गो दुसज्झाओ ॥३१॥

शब्दार्थ:- भावार्थ में दर्शाये गये क्रमानुसार ।

गाथार्थ:- भावार्थ के अनुसार सरल है।

विशेषार्थ: - संध्या प्रतिक्रमण के नियमवाले श्रावक को कभी कभार प्रतिक्रमण की सामग्री सुलभ न हो अथवा तथा प्रकार की शक्ति के अभाव में इस गाथा में दर्शायीगयी विधि अनुसार बृहत् गुरुवंदन तो अवश्य करना चाहिये । जिसे कि संध्याका लघुप्रतिक्रमण कहा जाता है। जिसकी विधि इस प्रकार है।

१). इरियावहियं - इरियावहियं प्रतिक्रमण के पर्यन्ते लोगस्स कहना ।

२) चिइ वंदण - पश्चात् खमा० देकर आदेश लेकर चैत्यवंदन करना ।

३) मुहपत्ति - पश्चात् खमा० देकर आदेश मांग कर मुहपत्ति पडिलेहना ।

४) वंदन - पश्चात् दो बाद द्वादशावर्त्त वंदन करना ।

५) दिवस चरिम - पश्चात् दिवसचरिम पच्चक्खाण करना।

६) वंदन :- पश्चात् दो बार द्वादशावर्त्त वंदन करना ।

७) आलोचना : - पश्चात् आदेश मांग कर दिन संबंधि अतिचार आलोचना (याने इच्छं आलोएमि जो मे देवसिओ अइयारो ये सूत्र कहना) यहाँ पर मुख्यत्वे इसी सूत्र को लघुप्रतिक्रमण सूत्र समजना ।

८) वंदन - पश्चात् दो बार द्वादशावर्त्त वंदन करना ।

९) खामणा :- पश्चात् आदेस मांगकर अब्भुट्ठिओ खामना ।

१०) चार छोभ वंदन : पश्चात् ४ खमासमण पूर्वक ४ छोभ वंदन ("भगवानहं इत्यादि") बोलना।

११) देवसिक प्रायश्चित्तका काउस्सग्ग :- पश्चात् आदेश मांगकर चार लोगस्स का काउस्सग्ग करना।

१२) स्वाध्याय के दो आदेश - पश्चात् दो खमासमण पूर्वक दो आदेश (इच्छा० सज्झाय संदिसहावुं, इच्छा० सज्झाय करु) मांग कर सज्झाय (स्वाध्याय) करना।

॥ इति २२ वाँ द्वार ॥

॥ इति गुरु वंदन २२ द्वाराणि समाप्तानि ॥

***

अवतरण :- इस प्रकरण का उपसंहार एवँ पूर्वोक्त विधि से गुरुवंदन करने वाले को जो महान् लाभ प्राप्त होता है वो इस गाथा में दर्शाया गया है।

एयं किइकम्मविहिं जुंजंता चरण - करण-माउत्ता ।
साहू खवंति कम्मं, अणेगभव संचिअ - मणंतं ॥ ४० ॥

शब्दार्थ:- एयं=इस प्रकार, पूर्वोक्त , जुंजंता=करनेवाला, आउत्ता=उपयोगवन्त सावधान, संचिअ=संचित, एकत्रित किये हुए,

गाथार्थ:- इस प्रकार पूर्व में कहे अनुसार कृतिकर्म विधि (गुरुवंदन विधि को) को करने वाला एवँ चरण करण में (चारित्र व उसकी क्रिया में अर्थात् चरण व करण सित्तरि में) उपयोगवन्त साधु पूर्व भव के (में) एकत्रित किये हुए अनन्त (भवों के) कर्मोको [1]खपाता है (याने मोक्ष जाता है)

१) श्री सिद्धान्त में कहा है कि 'वंदणएण भंते जीवे किं अज्जिअइ? गोअमा ! अट्ठकम्मपगडीओ निबिड़बंधण बद्धाओ सिढिल-बंधण बद्धाओ करेई' इत्यादि आलापकों का अर्थ इस प्रकार है। हे भगवन्त ! गुरुवंदन के द्वारा जीव क्या (लाभ) उपार्जन करता है? **उत्तर :-** हे गौतम ! आठ कर्म प्रकृति जो गाढ बंधन से बांधी गयी हैं। उन्हे शिथिल बंधन वाली करता है। तीव्ररस वाली को मंदरसवाली करता है। अधिक प्रदेश समूहवाली को अल्पप्रदेश वाली करता है। तथा इस अनादि अनन्त संसाररुपी अटवी में भ्रमण नही करता है, पार हो जाता है।

(दूसरे आलापक का अर्थ) तथा वंदन द्वारा नीचगोत्र कर्म खपाते हैं। और उच्चगोत्र कर्म बांध! तथा सौभाग्यवाली अप्रतिहत ऐसी जिनेश्वर की आज्ञा का फल प्राप्त करे !

॥ इति धर्मसंग्रहवृत्ति ॥

अवतरण: – इस अंतिम गाथा में गुरुवंदन भाष्य की समाप्ति, एवं भाष्यकर्ता श्री देवेन्द्रसूरि अपने मतिदोष द्धारा अज्ञात दशा में हुई भूल के लिए लघुता दर्शाते हुए श्री गीतार्थों को भूल सुधारने के लिए विज्ञप्ति करते हैं।

अप्पमइ भव्व बोहत्थं, भासियं विवरियं च जमिह मए ।
तं सोहंतु गियत्था, अणभिनिवेसी अमच्छरिणो ॥ ४१॥

शब्दार्थ :- अप्पमइ= अल्पमतिवंत, भव्व=भव्य जीवको, बोहत्थं=बोध करवाने के लिए, भासियं=कहा, भाखा , विवरियं=विपरित, च=और, जं=जो कुछ, इह=यहाँ, उसमें, मए=में, मेरे द्धारा, सोहंतु=शुद्ध करो, गियत्था=हे गीतार्थों।, अणभिनिवेसी=आग्रहरहित, अमच्छरिणो=मत्सर (=इर्ष्या) रहित

गाथार्थ:- अल्पमतिवंत भव्यजीवों को बोध करवाने के लिए (ये गुरुवंदन भाष्य नाम का प्रकरण मैने (देवेन्द्रसूरि ने) कहा है। लेकिन उसमें मेरे द्धारा कुछ भी विपरीत कहा गया हो (याने मेरे अनजानपनमें जो कुछ भूलचूक हुई हो) उस भूलचूक का आग्रहरहित और इर्ष्यारहित ऐसे हे गीतार्थ मुनिओ ! आप शुध्ध करना ।

भावार्थ:- गाथार्थवत् सुगम है।

॥ इति धर्मसंग्रह वृत्ति ॥

****

श्री पच्चक्खाण भाष्य

अवतरण :- इस तीसरे भाष्य में पच्चक्खाण लेने की विधि का वर्णन है। इस प्रथम गाथा में पच्चक्खाण के ९ मूलद्धार दर्शाये गये हैं।

दस पच्चक्खाण चउविहि आहार दुवीसगार अदुरुत्ता ।
दसविगइ तीस विगई - गय, दुहभंगा छसुद्धि फलं ॥१॥

शब्दार्थ:- चउविहि = ४ प्रकार का विधि। अदुरुत्ता = दूसरी बार उच्चार नही किये गये दुवीस (आ) गार = बावीस आगार। विगईगय = विकृतिगय, नीवियाता

गाथार्थ:-१० प्रकार का पच्चक्खाण, ४ प्रकार का (उच्चार) विधि, ४ प्रकार का आहार, दूसरी बार उच्चारे नही गये (नही गिने गये) ऐसे २२ आगार, १० विगई, ३० नीवियाते, २ प्रकार के भांगे, ६ प्रकार की शुद्धि, और (२ प्रकार का) फल, (इस प्रकार ९ मूलद्धार के १० उत्तर भेद होते हैं) ॥१॥

विशेषार्थः- पच्चक्खाण भाष्य में कहे जाने वाले १० प्रकार के पच्चक्खाण का स्वरूप ९ द्धारों द्धारा समझाया गया है। उन ९ द्धारों की संक्षेप में जानकारी इस प्रकार है।

१. दस पच्चक्खाण द्धारः- इस द्धार में पच्चक्खाण के अनागत आदि १० मूलभेद तथा १० वें अद्धा पच्चक्खाण के १० उत्तर भेदों को समझाया गया है।

गाथा में **चउविह** शब्द में कहेगये चउ शब्द का अनुसरण **आहार** शब्द के साथ भी किया जाता है, जिसके वजह से **४ प्रकार का आहार** ऐसा अर्थ होता है।

२. चार प्रकार का विधि द्धार :- इस द्धार में पच्चक्खाण के पाठ उच्चरने के ४ प्रकार कहे जायेंगे।

३. चार प्रकार का आहार द्धारः- इस द्धार में अशनपान - खादिम - स्वादिम इन चार प्रकार के आहार का स्वरूप दर्शाया जायेगा।

४. बावीस आगारः- इसमें एक ही आगार अलग अलग पच्चक्खाण में अनेक बार बोला जाता हैं। उसको अलग अलग न गिनकर एक ही बार गिने (दूसरी बार नहीं गिने गये हों) ऐसे २२ आगार याने अपवाद हैं। उसे कहा जायेगा।

५. १० विगईः- दूध आदि ६ भक्ष्य विगई, और मधु आदि ४ अभक्ष्य विगई (याने ६ लघुविगई और ४ महाविगई) कुल १० विगई के स्वरूप को समझाया जायेगा।

६. ३० नीवियातेः- ६ भक्ष्य विगई के ३० नीवियाते होते हैं, उनका स्वरूप कहा जायेगा।

७. २ प्रकार के भांगेः- मूलगुण व उत्तरगुण पच्चक्खाण, इन दो भांगे के साथ प्रसंगवत् १४७ भांगे का स्वरूप भी दर्शाया जायेगा।

८. छ शुद्धिः- इस द्वार में पच्चक्खाण की स्पर्शना, पालना आदि ६ प्रकार की शुद्धि के विषय में बताया जायेगा।

९. दो प्रकारका फलः- पच्चक्खाणके द्वारा इसलोक में व परलोक में जो फल प्राप्त होता है। उस दो प्रकार के फल को दर्शाया जायेगा। (गाथा में मात्र फल शब्द का प्रयोग किया है फिरभी अध्याहार से दु = दोको भी ग्रहण करना) (गाथा ४७ में)

इस प्रकार मूलद्वार के उत्तर भेद (१०+४+४+२२+१०+३०+२+६+२)= ९० होते हैं। (इति **प्रथम गाथा का भावार्थ**)

प्रथम द्वार (१० पच्चक्खाण)

अवतरणः- इस गाथा में १० पच्चक्खाण रूप प्रथम द्वार को दर्शाया गया है।

अणागय-मइक्कंतं, कोडीसहियं नियंटि अणगारं।
सागार निरवसेसं, परिमाणकडं सके अद्धा ॥२॥

शब्दार्थः- गाथार्थवत् सुगम है।

गाथार्थः- अनागत पच्चक्खाण, अतिक्रान्त पच्चक्खाण, कोटिसहित पच्चक्खाण, नियन्त्रितपच्च०, अनागार पच्च०, सागार पच्च०, निरवशेष पच्च०, परिमाणकृत पच्च०, संकेतपच्च०, और अद्धापच्च० (इस प्रकार १० प्रकार के पच्चक्खाण हैं) ॥२॥

विशेषार्थः-१० प्रकार के पच्चक्खाण का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

१. **अनागत पच्चक्खाणः**- अनागत भविष्यकाल अर्थात् जिस पच्चक्खाण को भविष्यमें करनेका है, उस पच्चक्खाण को किसी कारण से पहले ही करलेना पड़े उसे अनागत पच्चक्खाण कहाजाता है।

जैसे कि पर्युषण महापर्व में किये जाने वाला अट्ठम विगेरे तप उस तप को पर्युषण में गुरु की,गच्छकी, रोगी मुनि की, नूतन दीक्षावाले शिष्य की, और तपस्वी विगेरे की वैयावच्च (सेवा) के कारण से पर्युषण से पूर्व ही कर लेना । ये अनागत पच्च० मुख्यत्वे मुनि को होता है ।

२. अतिक्रान्त पच्चक्खाणः- अतिक्रान्त = भूतकाल, अर्थात् भूतकाल संबंधि पच्चक्खाण उसे अतिक्रान्त पच्चक्खाण कहते हैं। जैसे कि पर्युषणपर्व में किया जाने-वाला अट्ठम आदि तप को वैयावच्चादि कारणसे पर्युषण पर्व व्यतीत होजाने के बाद करना उसे -अतिक्रान्त पच्चक्खाण कहते हैं। ये पच्चक्खाण मुख्यत्वे मुनिओं को होता है।

३. कोटिसहित पच्चक्खाणः- कोटि = किनारा, अर्थात् दो तपके दो किनारे मिलते हों एसा तप । याने दो तप की संधि (मिलना) वाला पच्चक्खाण उसे कोटिसहित पच्चक्खाण कहते हैं । जैसेकि - प्रथम एक उपवास करके पुनः दूसरे दिन प्रातःकाल भी उपवास का पच्चक्खाण करे तो प्रथम उपवास का पर्यन्त भाग और दूसरे दिन के उपवास का प्रारंभ भाग इन दोनो के भाग रूप दो कोटि (किनारे) मिलने वाले ये पच्चक्खाण कोटि सहित गिना जाता है। इस पच्चक्खाण के दो प्रकार हैं।

(१) समकोटि पच्च०:-समकोटिवाला याने उपवास पूर्ण कर उपवास करना, आयंबिल पूर्णकर आयंबिल करना ।

(२) विषम कोटि पच्च०:-उपवास पूर्ण होने के बाद दूसरे दिन एकासना करना या एकासनादि पूर्ण होने के बाद उपवासादि करना उसे, इस प्रकार भिन्न दो,तपों की संधि, उसे विषमकोटि पच्चक्खाण कहा जाता है।

४. नियन्त्रित पच्च०:- नियन्त्रित = निश्चयपूर्वक, अर्थात् जिस पच्चक्खाण को निश्चय पूर्वक किया जाता है उसे, जैसेकि कैसी भी बिमारी हो या स्वस्थता हो, कैसा भी विघ्न या सुख दुःख आजावे फिरभी अमुक समय में मैं ऐसा तप करूंगा ही। इस प्रकार के संकल्प रूप पच्चक्खाण वाला ये तप जिनकल्पी मुनि और चौदह पूर्वधर मुनियो को होता हैं । तथा प्रथम संघयण वाले स्थविरादि मुनिओ को भी होता है। लेकिन जिनकल्प के विच्छेद हो जाने के साथ ही इस पच्चक्खाणका, विच्छेद होने से वर्तमान काल में ऐसा तप नही कर सकते, कारण कि तथा प्रकारका संघयण, आयुष्य व भावोका निश्चय करने का अभाव है।

५. अनागार पच्चक्खाण:- आगे कहे जाने वाले आगारों (अपवादों) में से अनाभोग आगार और सहसा आगार, इन दो [1]आगारों को छोड़कर शेष आगार रहित प्रत्याख्यान[2] करना उसे

६.सागार पच्चक्खाण:- आगे कहे जाने वाले २२ आगारों में से यथायोग्य आगारों सहित पच्चक्खाण करना उसे

७. निरवशेष पच्चक्खाण:- चारों ही प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना उसे। (ये पच्चक्खाण विशेषतः अंत समय में संलेखनादि के समय में किया जाता है)

८. परिमाण कृत पच्चक्खाण:- [3]दत्तिका, कवलका[4], गृहों [5]का-भिक्षा का और [6]द्रव्य का प्रमाण करके शेष भोजन का त्याग करना उसे।

९. संकेत (सकेत) पच्चक्खाण: केत = गृह और स= सहित, याने गृहस्थों का जो पच्चक्खाण उसे संकेत पच्च० कहते हैं। अथवा मुनि को लेकर विचार करें तो केत = चिन्ह, अर्थात् चिन्ह सहित जो पच्चक्खाण उसे सकेत पच्चक्खाण - या संकेत पच्चक्खाण भी कहते हैं। ये प्रत्याख्यान साधु व श्रावक दोनों को होता है।

---

१. कारण कि ये आगार बुद्धि से नही बनते, अपितु अकस्मात हो जाते हैं।

२. ये आगार प्रथम संघयण वाले मुनि प्राणान्त कष्ट और भिक्षा का सर्वथा अभाव जैसे प्रसंगो पर करते हैं। वर्तमान काल में प्रथम संघयण का अभाव है। अतः ये प्रत्याख्यान नही किया जाता है।

३. हाथ या बर्तन से जितना अन्न निरंतर एक धारा से पड़े, उतने अन्न को एक दत्ति कहा जाता है। वैसी १-२-३ दत्ति का प्रमाण करना उसे दत्ति प्रमाण कहा जाता है।

४. मुखमें प्रवेश हो सके वैसे ३२ कवल का आहार पुरुषों के लिए और स्त्रियों के लिए २८ कवल प्रमाण आहार है। उसमें से इतने ही कवल प्रमाण आहार ग्रहण करूंगा। इस प्रकार का नियम कवल प्रमाण कहलाता है।

५. इतने ही गृहों से आहार ग्रहण करना, इस प्रकार का प्रमाण उसे ग्रह प्रमाण कहते हैं.।

६. खीर, चाँवल, मूंग आदि अमुक द्रव्य आहार लेना उसे द्रव्य प्रमाण कहा जाता है।

ये पच्चक्खाण चिन्ह भेद से ८ प्रकार का है। कोई श्रावक पौरुषी आदि पच्चक्खाण [1]करके पच्चक्खाण का समय पूर्ण होने पर भी भोजन सामग्री तैयार न हो, तब तक पच्चक्खाण बिना न रहे, इस आशय से अंगुष्ठ आदि आठ प्रकार के चिन्हों में से किसी भी चिन्ह की धारणा करे। वह इस प्रकार -

१. अंगुष्ठ सहित:- जहाँ तक मुट्ठी में बंध अंगुट्ठे को अलग न करुं वहाँ तक मेरे पच्चक्खाण हो इस प्रकार धारणा कर, अंगुट्ठे को अलग करने के बाद भोजनादि वस्तु मुख में डाले। उसे अंगुष्ठ सहित संकेत पच्च० कहते हैं।

२.मुष्ठिसहित:-इसी प्रकार मुट्ठी बंध कर खोले नही, वहाँ तक का पच्च० उसे मुट्ठिसहियं पच्च० कहाजाता है।

३. ग्रन्थिसहित:- वस्त्र था धागे विगेरे को गांठ लगाकर खोले नही वहाँ तक ग्रन्थि सहित पच्च० उसे गंठिसहियं पच्च० कहते हैं।

४. घर सहित:- इसी प्रकार जहाँ तक घर में प्रवेश न करे वहाँ तक का पच्चक्खाण उसे घर सहित (घरसहियं) पच्च० कहते हैं।

५. स्वेदसहित:-प्रस्वेद (पसीने) के बिन्दु जहाँ तक सूके नही वहाँ तक का पच्चक्खाण उसे स्वेदसहित पच्च० कहा जाता है।

६. उच्छवास सहित:-इतने श्वासोच्छवास पूर्ण होने के बाद ही पच्च० पारूंगा ऐसा नियम उसे उच्छ्वाससहित पच्च० कहते हैं।

७. स्तिबुक सहित:- इसी प्रकार मांची में था अन्य वर्तनादि में लगे हुए पानी के बिन्दु जहां तक न सूके वहाँ तक का पच्च० उसे स्तिबुक सहित पच्च० कहते हैं।

८. दीपक सहित:- इसी प्रकार दीपक की ज्योत जहाँ तक बुझे नही वहाँ तक का पच्चक्खाण उसे दीपक सहित पच्चक्खाण=दीवसहियं पच्च० कहते हैं।

इस प्रकार संकेत पच्चक्खाण पूर्ण होने से पूर्व यदि कोई वस्तु मुख में गिर जाय तो [1]पच्चक्खाण का भंग होता है। और उसे गुरु भगवन्त से प्रायश्चित लेना पड़ता है।

---

१. संकेत पच्चक्खाण एक अथवा तीन नवकार गिनकर पारना। पश्चात् भोजन करके पुनःसंकेत पच्चक्खाण कर सकते हैं। उस प्रकार वारंवार संकेत पच्चक्खाण धारण करने से भोजन के अलावा शेष सर्वकाल विरतिभाव में आता है। प्रतिदिन एकासना करने से एक मास में २९ उपवास का व बीआसना करने वाले को २८ उपवास जितना लाभ मिलता है। खुल्ले मुख खाने वाला श्रावक भी प्रतिदिन संकेत पच्चक्खाण करता है तो उसे भी विरतिभाव का विशेष लाभ मिलता है। इसलिए विरतिभाव वंत श्रावक को ये पच्चक्खाण अति उपयोगी है। तथा गाथा नं. ३ में दर्शाया गया अध्धा पच्चक्खाण भी श्रावक को प्रतिदिन उपयोगी है।

१०. अध्धा पच्चक्खाण:- अध्धा = काल याने मुहूर्त, प्रहर, दिन, पक्ष, मास, वर्ष इत्यादि रुप है। और मुहूर्त आदि काल की मर्यादा वाला नवकारसी - पोरिसी - सार्द्धपोरिसी - पुरिमड्ढ - अवड्ढ - एकासन - उपवास विगेरे पच्च० उसे अध्धा पच्चक्खाण कहाजाता है। उसके १० प्रकार हैं। जिसका वर्णन तीसरी गाथा में दर्शाया गया है।

इस [1]प्रकार पच्चक्खाण के प्रत्याख्यान के २० भेद कहे गये इनमें से अंतिम दो प्रत्याख्यान प्रतिदिन उपयोगी समझना।

॥ इति १० प्रत्याख्यानभेदा ॥

अवतरण :- अध्धा पच्चक्खाण के १० भेद, इस गाथा में दर्शाये गये हैं।

नवकारसहिय पोरिसि पुरिमड्ढे-गासणे-गठाणे य।
आयंबिल अभतट्ठे, चरिमे अ अभिग्गहे विगई ॥३॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार

गाथार्थ:-नवकार सहित (नवकार सी) पौरुषी, पुरिमार्ध (पुरिमड्ढ) एकाशन, एकस्थान (एकलठाणा) आयंबिल, अभक्तार्थ (उपवास), दिवसचरिम, अभिग्रह, और विकृति (नीवी) विगेरे अध्धा पच्चक्खाणके १० भेद हैं।

विशेषार्थ:- अध्धा पच्चक्खाण के १० भेदोंका किंचित् वर्णन इस प्रकार है।

१. नवकारसहियं = (नमस्कार सहित) प्रत्याख्यान - सूर्योदय से लेकर १ मुहूर्त[2] =२ घड़ी = ४८ मिनिट) तक का और पूर्ण होने पर तीन नवकार गिनकर पारना। (इस प्रकार मुहूर्त और नवकार इन दो विधिवाला पच्चक्खाण) उसे नवकारसी पच्चक्खाण कहते हैं। इस पच्चक्खाणको सूर्योदय से पूर्व धारना चाहिये, अन्यथा अशुध्ध गिना जाता है।

---

१. पच्चक्खाण ये प्राकृत शब्द है। और यप्रत्याख्यानय ये संस्कृत शब्द है, उसकी व्युत्पत्ति (शब्दार्थ) इस प्रकार है।

प्रति = प्रतिकूल तथा तासे आ = मर्यादा से, ख्यान = कहना, अर्थात् अमुक रीति से निषेध करना =कहना उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

२. नवकार सहित में 'सहित' शब्द मुहुर्त का विशेषण वाला है इसलिए और अध्धा पच्चक्खान १ मुहुर्त से कम होता नही है इसलिए नवकारसी का १ मुहुर्त काल अवश्य गिणना चाहिये, जो लोक समजते है की नवकारशी तो ३ नवकार गिनकर चाहेतब पालसकते और काल की उस में किंचित भी मर्यादा विना सूर्योदय् के पहले या तुर्त भी ३ नवकार गिनकर पाल सकते है वह बात बराबर नही है। इसलिए नवकारसी सर्योदय् से दो घडी (४८ मिनिट) बादही ३ नवकार गिनके पालना, २ घडी होने से पहले ३ नवकार गिनकर पाले तो नवकारसी भंग होती है २ घडी होने के बाद भी ३ नवकार गिन विना पाले तो भी नवकासी भंग होती है।

२. पोरिसी प्रत्याख्यान:- प्रातःकाल पुरुष की छाया जब स्वदेह प्रमाण होती है, तब पोरिसी प्रहर गिना जाता है। इसलिए सूर्योदय से लेकर १ प्रहर तक की काल मर्यादा वाला पच्चक्खाण पौरुषी पच्चक्खाण कहलाता है। सार्ध पोरिसी याने डेढ प्रहर का पच्चक्खाण वो भी इसी में अंतर्गत हैं। (इस पच्चक्खाण को सूर्योदय से पूर्व धारना चाहिये, अथवा नवकारसी के पच्चक्खाण के साथ युक्त करने से भी होता है।)

३. पुरिमार्ध पच्चक्खाण :- पुरिम = प्रथम, अर्ध = अर्ध = अर्थात् दिन का प्रथम आधाभाग याने सूर्योदय से दो प्रहर तक का पच्चक्खाण उसे पुरिमार्ध अथवा पुरिमड्ढ का पच्चक्खाण कहते हैं। तथा अपार्ध (अवड्ढ) पच्चक्खाण अप= पश्चात् (पिछे का भाग) अर्ध = अर्ध, अर्थात् सूर्योदय से ३ प्रहर का और मन्तातर से अंतिम दो प्रहर का, याने दिन के उत्तरार्ध भाग का पच्चक्खाण अपार्ध (अवड्ढ) पच्चक्खाण कहलाता है। जिसका समावेश इसी पच्चक्खाण में होता है। ये पच्चक्खाण - नवकारसी, पोरिसी की धारणा विना भी कर सकते हैं।

४. एकाशन (या=एकासन)=दिन में एक = एकबार, अशन=भोजन करना उसे एकाशन[1] पच्चक्खाण कहते हैं। अथवा एक = एक ही (निश्चल) आसन = आसन से अर्थात् निश्चल आसन से हिलेडोले विना स्थिर आसन से भोजन करना उसे एकासन कहाजाता है। (इसमें कटि से नीचे का भाग स्थिर रहता है, लेकिन हाथ = पाँव विगेरे अवयवों का हलन - चलन हो सकता है। तथा भोजन करने के बाद तिविहार या चौविहार का पच्चक्खाण कर उठना चाहिये)

५. एकस्थान (एकलठाणा):- जिसमें हाथ व मुख के अलावा शरीर के किसी भी अंग का हलन - चलन नही होता है, ऐसा निश्चल आसन वाला एकाशन उसे एकलठाणा कहते हैं। एकाशने में सर्व अंगों के हलन-चलन की छूट है, वैसी छूट इसमें नही है। इसी कारण से एकाशन और एकस्थान दोनो भिन्न है। (एकस्थान में भोजन के बाद चौविहार का पच्चक्खाण किया जाता है, जबकि एकासने में तिविहार या चौविहार दोनो ही प्रकार के पच्चक्खाण कर सकते हैं)

---

१. (एकाशन - एकलठाणा - आयंबिल - नीवी ये पच्च० यद्यपि अनागतादि १० प्रकार में से आठवें प्रकार के परिमाणकृत प्रत्याख्यान हैं, लेकिन पोरिसी आदि अध्धा प्रत्याख्यान सहित उच्चारे जाते हैं-किये जाते हैं। अतः अध्धा पच्चक्खाण में गिने हैं। (इति धर्म० सं. वृत्ति- आदि)

७. अभक्तार्थ :- जिसमें भक्त = भोजन का अर्थ = प्रयोजन नहो उसे अभक्तार्थ याने उपवास कहते हैं । इसमें सूर्योदय से लेकर आनेवाले कल के सूर्योदय तक का (संपूर्ण रात्रि व दिन का) चारों प्रकार के आहार या जल विना तीन प्रकार के आहार का त्याग होता है। तिविहार वाले दिन में उष्ण जल ग्रहण कर सकते हैं। रात्रि को उसका भी त्याग होता है। एक उपवास में दो बार के भोजन का त्याग होता है । प्रथम दिन एकासना व पारणे के दिन एकाशना करे तो चार बार के भोजन का त्याग होता है। दो एकाशने सहित उपवास का नाम चतुर्थभक्त (= चौथभक्त) कहलाता है।

८. चरिम प्रत्याख्यानः- ये पच्चक्खाण दो प्रकार का है । चरिम = दिन के अंतिम भाग में किया जाने वाला पच्चक्खाण उसे दिवस चरिम और आयुष्य के अंतिम भागमें अर्थात् मृत्युके समय किया जाने वाला पच्चक्खाण उसे भवचरिम पच्चक्खाण कहते हैं। इसमें गृहस्थों को दुविहार, तिविहार, चौविहाररुप दिवसचरिम पच्चक्खाण सूर्यास्त से १ मुहूर्त पहले करना चाहिये और मुनि भगवन्त तो चौविहार पच्चक्खाण वाले ही होते हैं। तथा [१]एकाशनादि वाले को दिवस चरिम पच्चक्खाण पाणहार रूप में होता है।

९. अभिग्रह प्रत्याख्यानः- अमुक प्रकार की हकिकत बनेगी, तब ही मैं अमुक आहार ग्रहण करूंगा उसे अभिग्रह पच्चक्खाण कहा जाता है ।

ये प्रत्याख्यान ४ प्रकार का है । द्रव्य क्षेत्र काल व भाव अभिग्रह

(१) द्रव्य अभिग्रहः- द्रव्य मर्यादा का संकल्प करना, याने अमुक द्रव्यसे (चमच आदि से) आहार देंगे, तोही लूंगा या अमुक आहार ही लूंगा, इस प्रकारके संकल्परुप प्रत्याख्यान

(२) क्षेत्र अभिग्रहः- क्षेत्र मर्यादाका संकल्प करना, याने अमुक गाँवसे या घरसे अथवा अमुक मील दूरसे आहार, लानेका निश्चय करना उसे।

१. प्रश्नः- खुल्ले मुख भोजन करने वाले श्रावक के लिए ये पच्चक्खाण युक्त है। लेकिन एकाशनादि तपवालेको एकाशनादि तप दूसरे सूर्योदय तक का होनें से वह तपमें ही आ गया गिना जाता है। अतः उस के लिए दिवस चरिम प्रत्या. की क्या सार्थकता ?

उत्तरः-एकाशन तप आठ आगार वाला है, और दिवस चरिम पच्चक्खाण चार आगार वाला है। अतः आगारोंका संक्षेप यही सार्थकता है। अधिक जानकारी धर्म संग्रहवृत्ति विगेरे से जानना ।

(३) काल अभिग्रहः- काल मर्यादा का संकल्प करना। ये अभिग्रह तीन प्रकार का है। भिक्षा काल से पूर्व, भिक्षा काल के समय, अथवा भिक्षा काल के बाद आहार लाने का अभिग्रह ।

(४) भाव अभिग्रहः-भाव मर्यादाका संकल्प करना। याने गाते गाते, या रोते हुए, बैठे बैठे या खड़ेखड़े, अथवा पुरुष या स्त्री खड़े होकर आहार वहोराये तो ही आहारलेना, इत्यादि अनेक प्रकारका भाव अभिग्रह होता है।

पूर्वोक्त अनागतादि १० प्रकारके पच्चक्खाणमेंसे ८ वाँ परिमाणकृत पच्चक्खाण व नवकारसी आदि अध्धा पच्चक्खाण सिवाय ९ वाँ संकेत पच्चक्खाणकाभी इस अभिग्रह पच्चक्खाण मे (संबंधित होने से) समावेश होता है।

१०. विगइ प्रत्याख्यानः- विगइ = विकृति, विकार, अर्थात् इन्द्रियके विषयको विकृत (उत्तेजित) करनेवाले पदार्थ दूध, दहि, घी, तेल, गुड़ और पकवान्न रुप ६ प्रकार की विगइ को भक्ष्य विगई कहा जाता है। और इसी विगइ के ३० नीवियाते होते हैं, जिनका यथासंभव त्याग करना उसे नीवि प्रत्याख्यान कहा जाता है। तथा मांस, मधु, मदिरा, और मक्खन ये चार अभक्ष्य याने महाविगइ कहलाती है। जिसका सदैव के लिए त्याग करना चाहिये। ये भी विगइ प्रत्याख्यानके अन्तर्गत है।

इति १० प्रकार के अध्धाप्रत्याख्यान रुप प्रथम द्वार ।

***

अवतरणः-इस गाथा में ४ प्रकार के उच्चार विधि रुप, दूसरा द्वार कहा जा रहा है।

उग्गए सूरे अ नमो, पोरिसि पच्चक्ख उग्गए सूरे ।
सूरे उग्गए पुरिमं, अभत्तट्ठं पच्चक्खाइ त्ति ॥४॥

शब्दार्थ :- सुगम है।

गाथार्थः- भावार्थ के अनुसार ।

भावार्थ :- प्रथम उच्चार विधि उग्गए सूरे नमोयाने उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं। दूसरा उच्चार विधि पोरिसि पच्चक्ख उग्गए सूरे याने पच्चक्खामि उग्गए सूरे (अथवा) (उग्गए सूरे पोरिसिअं पच्चक्खामि) ये दूसरा उच्चार विधि पोरिसि व सार्धपोरिसि के लिए भी समझना। सिर्फ तफ़ावत इतना है कि सार्धपोरिसि के लिए साढपोरिसि पद को बोलना।

तथा तीसरा उच्चार विधि सूरे उग्गए पुरिमं याने सूरे उग्गए पुरिमड्ढं पच्चक्खामि है। ये उच्चार विधि पुरिमड्ढ और अवड्ढ के लिए भी समझना। चतुर्थ उच्चार विधि सूरे उग्गए अभतट्ठं याने सूरे उग्गए अभत्तट्ठं पच्चक्खामि है। ये उपवास के लिए है। गाथामें पच्चक्खाइ त्ति ये पद पाँचवी गाथा से संबंधित है।

इस प्रकार [1]यहाँ पर ४ प्रकार की उच्चार विधि एक अहोरात्रि में जितने अध्धा पच्चक्खाण सूर्योदय से किये जा सकते है। उतने अध्धापच्चक्खाण आश्रयि दर्शाया है।

तथा जिन दो उच्चार विधि में उग्गए सूरे पाठ आता है। उन पच्चक्खाणों की सूर्योदय से पूर्व धारणा करने पर शुध्ध गिने जाते हैं। और जिसमें सूरे उग्गए पाठ आता है, उन पच्चक्खाणोंको सूर्योदय के बादमें भी धारा जा सकता है। इस प्रकार उग्गए सूरे और सूरे उग्गए ये दोनों पाठों में सूर्योदय से लेकर के ये अर्थ यधपि समान है, फिर भी क्रियाविधि भिन्न होने से इन दोनों पाठों का भेद सार्थक (कारण युक्त) है।

***

अवतरण:-पच्चक्खाण के पाठ में गुरु शिष्य के वचन के रुपमें अन्य रीत से ४ प्रकार का उच्चार विधि है। तथा पच्चक्खाण देने में पाठ का उच्चार स्खलना युक्त बोला गया हो, फिर भी धारा हुआ पच्चक्खाण प्रमाण गिना जाता है। जिसे इस गाथामें दर्शाया गया है।

भणइ गुरु सीसो पुण, पच्चक्खामित्ति एव वोसिरइ ।
उवओगित्थ पमाणं, न पमाणं वंजणच्छलणा ॥१॥

शब्दार्थ:-त्ति = इति, इस प्रकार, यों, वंजण = व्यंजन की, अक्षर की एव = इस प्रकार, यों, छलणा = स्खलना, भूल, इत्थ = यहाँ, पच्चक्खाण लेने में

गाथार्थ:-(पच्चक्खाण का पाठ उच्चरते समय) गुरु जब पच्चक्खाइ बोले तब शिष्य पच्चक्खामि इस प्रकार बोले। और इसी प्रकार जब गुरु वोसिरइ बोले तब शिष्य वोसिरामि कहे। तथा पच्चक्खाण लेने में पच्चक्खाण लेने वाले का उपयोग ही (धारा हुआ पच्चक्खाण) प्रमाण है। लेकिन अक्षर की स्खलना भूल प्रमाण नही है।

भावार्थ:-गाथार्थ अनुसार सुगम है। फिर भी जब गुरु पच्चक्खाण देते समय पच्चक्खाई (=पच्चक्खाण देता हूँ) पद का उच्चार करे तब शिष्य को पच्चक्खामि = (प्रत्याख्यान स्वीकार करता हूँ) पद बोलना चाहिये।

---

१. (एकाशन सहित १ उपवास के लिए चउत्थभत्तं अभत्तट्ठं पद का उच्चार होता है, और फक्त १ उपवास के लिए अभत्तट्ठं पद का उच्चार होता है। (इति सेनप्रश्न)) विधि एक अहोरात्रि में जितने अध्धापच्चक्खाण सूर्योदय से लेकर किये जा सकते हैं।

तथा पच्चक्खाण देते समय अक्षर की स्खलना हुई हो, याने चउविहार उपवास के पाठ के समय तिविहार पाठ का उच्चार कर दे, अथवा तिविहार उपवास के पच्चक्खाण के समय चउविहार पद का उच्चार हो जाय। या एका शन के स्थान पर बिआसण या बिआसण के स्थान पर एका शन का पाठ भूल से बोलने में आजाय। इस प्रकार पाठों का उच्चार फेरफार युक्त बोलने पर भी पच्चक्खाण तो मन में धारा हुआ हो वही प्रमाण गिना जाता है।

अवतरण :- इस गाथा में एकाशनादि पच्चक्खाणमें उपयोग आनेवाला पाँच प्रकार का उच्चार स्थान तथा उसके २१ भेदों को दर्शाया गया है।

पढमे ठाणे तेरस, बीए तिन्नि उ तिगाइ (य) तइयंमि।
पाणस्स चउत्थंमि, देसवगासाइ पंचमए ॥६॥

शब्दार्थः- गाथार्थ के अनुसार सरल हैं।

गाथार्थः- प्रथम उच्चार स्थान में १३ भेद हैं। दूसरे उच्चार स्थान में ३ भेद है। तीसरे उच्चार स्थान में ३ भेद हैं। चौथे उच्चार स्थान में पाणस्स का १ भेद है। और पाँचवे उच्चार स्थान में देसावगासिक वगैरह का १ भेद हैं। (इस प्रकार पाँचो उच्चार स्थान के कुल २१ भेद हैं। अथवा इन्हें २१ उच्चार स्थान भी कहा जाता है।)

भावार्थः- यहाँ [1]एकाशनादि बडे प्रत्याख्यानों में अंतर्गत उपसे जो अलग अलग पांच प्रकार के प्रत्याख्यान उच्चारने में आते हैं, उन्हें पाँच स्थान कहा जाता है। उन पाँच पच्चक्खाणों के भिन्न भिन्न आलापक (=पाठ) उन्हें पाँच प्रकार के उच्चार स्थान कहा जाता जैसे कि एकाशन में सर्व प्रथम नमुक्कार सहियं पोरिसि आदि एक अध्धापच्चक्खाण व मुट्ठिसहियं आदि एक संकेत पच्चक्खाण उच्चारा जाता है। इन दोनों के मिलने से प्रथम उच्चार स्थान होता है। पश्चात् [2]विगइ का प्रत्याख्यान उच्चारा जाता है, इसे दूसरा उच्चार स्थान कहा जाता है। पश्चात् एकाशन के आलापक उच्चारे जाते हैं, इसे तीसरा उच्चार स्थान

१. (यहाँ गिनेजाने वाले पाँच स्थानों को एकाशनादि (आहार वाले) प्रत्याख्यानों के उप विभाग तरीके समझना। और आहार रहित प्रत्याख्यान के लिए (उपवास के लिए) उपर जो पांच स्थान हैं, उन्हे आगे की गाथा द्वारा कहे जायेंगे। (गाथा नं. ८)) है।

कहा जाता है। इस प्रकार चार प्रत्याख्यानों के चार आलापक प्रातः काल में एक साथ उच्चारे जाते हैं। तथा प्रातःकाल व संध्या समय देशावगासिक अथवा संध्या के समय दिवसचरिम या पाणहार का पच्चक्खाण उच्चारा जाता है । इसे पाँचवाँ उच्चार स्थान कहा जाता है । इस प्रकार एकाशने के प्रत्याख्यान के अंतर्गत आनेवाले इन पाँच विभागों को पाँच स्थान कहा जाता है। और इन पाँचों पच्चक्खाण के पाँच आलापकों को पाँच [1]उच्चार स्थान समजना।

इन पाँच उच्चार स्थानों के २१ भेद नामपूर्वक आगे की गाथा में कहे जायेंगे।

अवतरणः- इस गाथा में २१ उच्चारस्थानों का नामपूर्वक दर्शाया गया है।

नमु पोरिसि सड्ढा, पुरि-मवड्ढ अंगुट्ठमाइ अड तेर ।
निविगइं-बिलतिय तिय, दुइगासण एगठाणाई ॥७॥

शब्दार्थः- गाथार्थ अनुसार सुगम हैं ।

गाथार्थः- नवकारसी - पोरिसि - सार्धपोरिसि - पुरिमड्ढ - अवड्ढ और अंगुट्ठ सहियं आदि आठ ये तेरह प्रकार (के उच्चार भेद) प्रथम स्थान में हैं। तथा नीवि, विगइ और आयंबिल तीन दूसरे स्थान में हैं। तथा (दु (आसण) = इग) बिआसन एकाशन, और एकलठाण ये ३ प्रकार तीसरे स्थानमें है। (और चौथे तथा पाँचवे स्थानमें तो पूर्व कथित पणस्सका व देशावगासिकका ही एक एक प्रकार है, इस प्रकार अध्याहार से समझना ॥७॥)

भावार्थः-प्रथम विभागमें, कहा है कि एकाशनादिमें नमुक्कारसहियका अथवा पोरिसिका यावत् अवड्ढका इस प्रकार पाँच प्रकारमेंसे कोई भी एक प्रकारका अध्धापच्च -

---

१. अथवा दूसरा अर्थ - जो २१ पच्चक्खाण हैं, उनके उच्चार पाठ रुप २१ आलापक भिन्न नही है, लेकिन मुख्य पाँच आलापक ही हैं। इसलिए २१ पच्चक्खाणों के उच्चारने में जो मुख्य पाँच आलापक सूत्रपाठ उपयोगी हैं। उन पाँच सूत्रपाठोंको पाँच उच्चार स्थान कहा जाता है।)

२. (एकाशन-बिआसन और एकलठाणे में) ६ भक्ष्य विगइ मेंसे किसी एक विगइ का त्याग न भी किया हो, फिर भी अभक्ष्य विगइका तो सभीको अवश्य त्याग करना ही चाहिये। इस कारणसे प्रत्याख्यानके अंतर्गत विगइके आलापक अवश्य उच्चारे जाते हैं। (ध. सं- वृत्ति भावार्थ)

क्खाण कराया जाता है। और इसी अध्धा प्रत्याख्यानके साथ अंगुट्ठसहियं अथवा मुट्ठिसहियं इत्यादि ८ प्रकार के संकेत पच्चक्खाणमेंसे कोई एक प्रकारका संकेत पच्चक्खाण भी कराया जाता है। इसलिए इन दोनोंका संयुक्त रुपसे एक ही आलापक उच्चारपाठ १३ शब्द का फेरफार वाला है, अतः प्रथम उच्चार स्थान १३ प्रकारका गिना जाता है।

तथा विगइत्यागका एक ही आलापक विगइके प्रत्याख्यानके लिए विगइ शब्द से, आयंबिलके प्रत्याख्यानके लिए आयंबिल शब्दसे, नीवि के पच्चक्खाणके लिए निव्विगइ शब्दसे कराया जाता है। अतः विगइत्याग रुप तीसरा उच्चारस्थान तीन प्रकार का है।

तथा चौथे उच्चार स्थानमें पाणी संबंधि और पाँचवें उच्चार स्थानमें देसावगासिक (अथवा दिवसचरिम) संबंधि एक एक शब्द रुप एकैक प्रकारका एक एक आलापक होनेसे इस गाथा में इन दो उच्चार स्थानों को स्पष्ट तौर से नही दर्शाया गया है, फिरभी अध्याहार से ग्रहण कर लेना है।

किस पच्चक्खाण में कौनसा स्थान ? उसका संक्षिप्त सार

एकाशन में ५ उच्चारस्थान बिआसन में ५ उच्चार स्थान एकलठाणे में ५ उच्चार स्थान	=	प्रथम संकेत सहित अध्धा प्रत्याख्यानका
	=	दूसरा विगइका
	=	तीसरा एकाशनका (एकाशने के लिए) बिआसनका (बिआसनेकेलिए) एकासणका (एकठाणका एकठाणके लिए)
	=	४. थे पाणस्सका
		५. वाँ देसावगासिक [1]या दिवस चरिम का
आयंबिल में ५ उच्चारस्थान	=	एकाशने के समान, लेकिन दूसरा उच्चारस्थान आयंबिल का पच्च० का
नीवि में ५ उच्चारस्थान	=	एकाशने के समान लेकिन दूसरा उच्चारस्थान नीवि का पच्च० का
तिविहार उपवास में ५ उच्चारस्थान	=	आगे ८ वीं गाथा के अनुसार
चउविहार उपवास में २ उच्चारस्थान	=	उपवासका व देसावगासिक का

[1](देसावगासिक का प्रत्याख्यान चौद नियम धारने वाले को इसके साथ ही उच्चारणे उच्चार में दिया जाता है, और नियम नही धारने वाले को एक उच्चार स्थान कम समझना।

अवतरण:-इस गाथा में उपवास (आहार रहित तिविहार) के प्रत्याख्यान में कौन से पाँच उच्चार स्थान है ? उन्हें दर्शाया गया है।

पढमंमि चउत्थाई, तेरस बीयंमि तइय पाणस्स ।
देसवगासं तुरिए, चरिमें जहसंभवं नेयं ॥८॥

शब्दार्थ:- **तुरिए** = चौथे स्थान में, **चरिमे** = अंतिम (पाँचवें) स्थान में, **जहा संभवं** = यथा संभव, जैसे घटित हों वैसे, **नेयं** = जाणना

गाथार्थ:- उपवास के प्रथम उच्चारस्थान में चतुर्भक्तसे लेकर चोंतीसभक्त तक का पच्चक्खाण, दूसरे स्थान में (नमुक्कारसहियं आदि) १३ पच्चक्खाण, तीसरे उच्चार स्थान में पाणस्स का, चौथे उच्चारस्थान में देसावगासिक का, और पाँचवें उच्चार स्थान में संध्या समय में यथासंभव पाणाहार का याने चउविहार का पच्चक्खाण होता है।

विशेषार्थ:- चउविहार उपवास हो तब उसका पच्चक्खाण उपवासका उच्चार व देशावगासिकका उच्चार, इन दो उच्चार स्थानोवाला ही होता है। और जब तिविहार उपवास हो तब पाँच उच्चार स्थान वाला पच्चक्खाण होता है। वो इस प्रकार - तिविहार उपवास के पच्चक्खाण में प्रथम एक आलापक **चउत्थभत्तं** अथवा **अभत्तट्ठं** याने [1]उपवास से लेकर यावत् चउत्तीसभत्तं पर्यन्त अर्थात् १६ उपवास तक का उच्चराया जाता है। अतः वर्तमानकाल में १६ [2]प्रकार का प्रथम उच्चार स्थान समझना।

---

१. (दो एकासने से युक्त १ उपवास करने वाले को सूरे उग्गए चउत्थभत्त अभत्तट्ठं का उच्चार और मात्र एक उपवास करने वाले (गत रात्रि में चउविहार किया हो या न किया हो) को सूरे उग्गए अभत्तट्ठं का उच्चार होता है । तथा छट्ठ विगेरे के पच्चक्खाण में आगे पीछे एकाशना करना आवश्यक नही है। जिससे दो एकासन रहित दो उपवास् तीन उपवास्, किये हों, फिर भी उन्हे छट्ठ अट्ठम इत्यादि संज्ञा से ही जाना जाता है । और प्रत्याख्यान का उच्चार भी **सूरे उग्गए छट्ठभत्तं अट्ठमभत्तं** इत्यादि पदों द्वारा ही होता है (सेन प्रश्न भावार्थ)

२. प्रथम तीर्थंकर के शासन में एक साथ १२ मास के उपवास का, बावीस तीर्थंकरों के शासन में एक साथ ८मास के, उपवास का पच्चक्खांण दिया जाता था । अंतिम तीर्थंकर के शासन में आगे एक साथ में छमास का पच्चक्खाण दिया जाताथा लेकिन अंतिम तीर्थंकर के शासन के वर्तमान जीवों का संघयण बल दिनोदिन घटता जारहा है, इसी कारण वर्तमान में अधिक से अधिक १६ उपवास का पच्चक्खाण एक साथ देने की आज्ञा है, इससे अधिक नही ।

इसके बाद दूसरा आलापक नमुक्कारसहियं आदि पांच अध्धा प्रत्याख्यानका और अंगुट्ठसहियं [1]आदि ८ संकेत पच्चक्खाणमेसे कोई भी एक एक प्रत्याख्यान सहित मिश्रात होता है। अतः दूसरा उच्चार स्थान [1]१३ प्रकार का है।

इसके बाद तीसरा आलापक **पाणस्स लेवेण वा** इत्यादि पदों वाला तिविहार उपवासमें ही पानी संबंधी है, अतः इस तीसरे उच्चार स्थान को १ प्रकार का समजना। ये तीनों ही उच्चार स्थान एक साथ उच्चराये जाते हैं।

पश्चात् चौदह नियम के संक्षेप के लिए देसावगासिक उच्चराया जाता है। अतः ये चौथा उच्चारस्थान एक प्रकारका है। तथा पाँचवां संध्या समय दिवसचरिमचउविहारका (=पाणहार का) उच्चारस्थान १ प्रकार का है, तथा अपना आयुष्य अल्प जानकर शेष आयुष्यतक चारोंही आहारका त्याग करना हो तो **भवचरिमं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं** इत्यादि पदोंवाला भवचरिम प्रत्याख्यान किया जाता है, वह भी इस [1]पाँचवें उच्चारस्थान में अन्तर्गत हैं।

***

अवतरण :- इस गाथा में पच्चक्खाण के प्रारंभ में आने वाले उग्गाए सूरे व अन्त में आनेवाले वोसिरइ इन शब्दों का प्रयोग प्रत्येक पेटा विभाग वाले पच्चक्खाण में करना या नहि ? उसे दर्शाया जा रहा है।

तह मज्झपच्चखाणेसु न पिहु सूरुग्गयाइ वोसिरइ ।
करणविहि उ न भन्नइ, जहावसीआइ बियछंदे ॥१॥

शब्दार्थ:-पिहु=पृथक् अलग, **करणविहि**=करणविधि क्रिया(प्रत्याख्यान), विहि= विधि, **आवसीआइ** = आवसिआए ये पद, **बियछंदे** = दूसरे वंदनक में

गाथार्थ:- तथा मध्यम के प्रत्याख्यानों में **सूरे उग्गए** तथा **वोसिरइ** इन पदों का भिन्न उच्चार नही करना। जिस प्रकार दूसरे वंदनक में आवसिआए पद का उच्चार दूसरी बार नही किया जाता, वैसे ही (सूरे उग्गए और वोसिरइ पद भी) वारंवार नही बोलना ये करणविधि (प्रत्याख्यान उच्चारने का विधि) ही ऐसा है।

---

१. अवचूरि में तीन प्रकार का उच्चारस्थान कहा है, वह सामान्यतः पाँचवें उच्चार स्थान में संभवित है।)

भावार्थ:- द्वादशावर्त्त वंदन में दूसरीबारके वांदणे में आवसिआए पदका उच्चार नही करना। इस प्रकारकी परंपरा पूर्वाचार्यों से चली आरही है। वैसे ही एकासन बीआसन -एकलठाण आयंबिल - नीवि और उपवास विगेरेके पच्चक्खाणके प्रारंभमें एक ही बार **सूरे उग्गए** अथवा **उग्गएसूरे** शब्द यथायोग्य बोलना और अंतमें एक ही बार वोसिरइ शब्द बोलना चाहिये। लेकिन इन पच्चक्खाणोंके आलापकोंमें मध्यमें आनेवाले विगइ एकाशनादि और पाणस्स के छोटे आलापकों में प्रत्येक प्रत्याख्यानके प्रारंभमें उपरोक्त दोनों ही पद यधपि संबंध वाले होने पर भी उनका उच्चार नही करना, ये पूर्वोचार्यों से चली आरही करणविधि अथवा परंपरा है।

***

अवतरण:- इस गाथा में पाणस्स के आगार का आलापक कब उच्चारना चाहिये ? उस विषय में उच्चारविधि दर्शाते हैं।

तह तिविह पच्चखाणे भन्नंति य पाणगस्स आगारा।
दुविहाहारे अच्चित-भोइणो, तह य फासुजले ॥१०॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार सुगम है।

गाथार्थ:- तथा तिविहार के प्रत्याख्यान में (अर्थात् तिविहार उपवास एकाशन विगेरेमें:) [१]पाणस्स के आगार (आलापक) उच्चरने में आते हैं। तथा एकाशनादि दुविहार वाले हो, तो उसमें भी करने वाले अचित्त भोजन को [१]पाणस्स के आगार करना, तथा एकाशनादि प्रत्याख्यान रहित श्रावक यदि उष्ण जल पीने का नियमवाला हो तो उसे भी

---

१. (१. यहाँ पाणस्स के आगार उच्चराने के विषय में श्री ज्ञानविमलसूरिजी कृत बालावबोध में निम्न चतुर्भंगी कही है :-

१. सचित्त भोजन - सचित्त जल (इसमें पानी के आगार नहि)
२. सचित्त भोजन - अचित्त जल (इसमें पानी के आगार होते हैं)
३. अचित्त भोजन - सचित्त जल (इसमें पानी के आगार नहि)
४. अचित्त भोजन - अचित्त जल (इसमें पानी के आगार होते हैं)

तात्पर्य यह है कि - एकाशनादि जिन जिन व्रतोंमें तिविहार हो सकता है, उन उन व्रतों तिविहार में (अचित्त भोजन और) अचित्त जल पीना चाहिये, और पाणस्स के आगार उच्चरना चाहिये। यदि उन पच्चक्खाणो में (एकाशनादि में) दुविहार किया हो तो दुविहार में वैसा नियम नही। किस व्रत में दुविहार तिविहार या चउविहार होता है, उसे १२ वीं गाथा में दर्शाया जायेगा।

पाणस्स के आगार करना। (तात्पर्य उष्ण जल पीने के नियम में सर्वत्र पाणस्स के आगार बोलना)॥२०॥

भावार्थः- यदि श्रावकने तिविहार एकाशना किया हो तो उसे सचित्त आहार पानी का त्याग करना चाहिये। और पाणस्स के आगार उच्चरना चाहिये। लेकिन दुविहार एकाशने में सचित्त का त्याग न किया हो तो पाणस्स के आगार उच्चरने की आवश्यकता नही।

अवतरणः- कौन कौन से व्रत में अचित्त जल पीना चाहिये ? उसका नियम इस गाथा में दर्शाया जा रहा है।

इत्तुच्चिय खवणंबिल निवि आइसु फासुयं चिय जलं तु।
सड्ढा वि पियंति तहा पच्चक्खंति य तिहाहारं ॥११॥

शब्दार्थः- **इत्तुच्चिय** = इस हेतुसेही, इसीलिए, **खवण** = उपवास, **चिय**=निश्चय **फासुयं** = प्रासुक, निर्जीव, अचित्त, **सड्ढावि** = श्रावक भी

गाथार्थः- इस हेतु से ही उपवास, आयंबिल और नीवि विगेरे में श्रावक भी निश्चय (अवश्य) प्रासुक - अचित्त जल पीवे तथा तिविहार का प्रत्याख्यान (उपवासादिक में) करे ॥१२॥

भावार्थः- इस हेतु से ही (अर्थात् अचित्त भोजन व अचित्त जल पीने का नियम होने के कारण) श्रावक उपवास आयंबिल नीवि आदि में तथा एकाशन विगेरे में अचित्त भोजी श्रावक प्रासुक जल ही पीये, और प्रायः - विशेष से तिविहार का ही [1]प्रत्याख्यान करे। (इति अवचूरि अक्षरार्थः)

यहाँ सचित्त भोजी को भी उपवास, आयंबिल और नीवि ये तीन तो तिविहार या चौविहार ही होते हैं। जिससे इस व्रतों में उष्ण जल ही पीना चाहिये। और एकाशनादि में यथा संभव दुविहार, तिविहार, और चउविहार तीनों ही प्रकार से होते हैं। दुविहारवाले को अचित्त का नियम आवश्यक नही हैं। (ज्ञानविमलसूरिकृत बालावबोध)

१. (**यहाँ तात्पर्य यह है कि** : श्रावक को भी व्रत में उष्ण जल पीना चाहिये। और प्रत्याख्यान विशेषतः तिविहार एकाशनादि करना चाहिये। दुविहार (एकाशनादिमें) तो किसी गाढ़ कारण से करने योग्य है। तथा व्रतों में कच्चा पानी (सचित्त जल) नही पीना चाहिये कारण कि मुख्य वृत्तिसे तो उत्तम श्रावक को सचित्त का सदैव त्याग करना चाहिये। इस विषय में कहा है कि)

अवतरणः- इस गाथा में चार प्रकार के आहारमेंसे मुनि व श्रावकको किस प्रत्याख्यान में कितने आहार का त्याग करना चाहिये ? उसका नियम दर्शाते हैं ।

चउहाहारं तु नमो रत्तिंपि मुणीण सेस तिह चउहा ।
निसि पोरिसिपुरिमेगा, सणाइ सड्ढाण दुतिचउहा ॥१२॥

शब्दार्थः- नमो = नमुक्कारसहियं नवकारसी, **रत्तिं** = रात्रि (के पच्चक्खाण) **तिह** = तिविहार, **सड्ढाण** = श्रावकों को, **दुहा** = दुविहार, **ति (हा)**= तिविहार,

गाथार्थ :- मुनि को नवकारसी का तथा रात्रिका (दिवस चरिम) प्रत्याख्यान चउविहार रूप ही होता है । और शेष (पोरिसी आदि प्रत्याख्यान तिविहार चउविहार रूप[1] दो प्रकार के होते हैं । तथा श्रावक को तो रात्रि का (दिवस चरिम) और पोरिसी, पुरिमड्ढ, तथा एकाशनादि प्रत्याख्यान दुविहार, तिविहार, चउविहार रुप तीन प्रकार होते हैं । (नवकारसी का प्रत्याख्यान तो श्रावक को भी चउविहार वाला ही होता है । कारण कि नवकार सी पच्च० तो गत रात्रि के चउविहार प्रत्याख्यान को कुछ अधिक करने के रुप में कहा है । ॥१२॥

निरवज्जाहारेणं, निज्जीवेण परित्तमीसेणं ।
अत्ताणुसंधण परा सुसावगा एरिसा हुंति ॥१॥(श्राद्ध० वृत्तिः)

अर्थ :- निरवद्य (=निर्दोष) आहार से निर्जीव आहार से और प्रत्येक मिश्र (साधारण वनस्पति रहित) आहार से (आत्मानुसंधान में तत्पर अर्थात्) आत्मगुण प्राप्त करने में तत्पर ऐसे सुश्रावक ही ऐसे आहार द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं ।

इस प्रकार शोचने पर तो नवकारसी का प्रत्याख्यान करने (छूटे) वाले श्रावक को भी अचित्त आहार होना चाहिये, फिर एकाशनादि व्रतों में विना कारण श्रावक को तिविहार में सचित जल और दुविहार में सचित स्वादि म आदि क्यों वापरना ?

१. उपवासाचाम्लनिविर्कृतिकानि प्रायस्त्रिचतुर्विधाहाराणि अपवादात्तु निर्विकुतिकादि पौरुष्यादि च द्विविधाहारमपि स्यात् (इतिश्राध्ध विधि वचनात्) लेकिन दुविहार करना ये व्यवहार मार्ग नही है ।))

भावार्थ :- संक्षेप में इस प्रकार है ।

नमुक्कार सहियं :- मुनि व श्रावक दोनों को चउविहार ।

पौरुषी सार्धपौरुषी पुरिमार्ध अपार्ध	मुनिको तिविहार, चउविहार (मुख्य कारण से ही दुविहार) तथा श्रावक को दुविहार, तिविहार चउविहार
एकाशन एकलठाण बीआसना	मुनि को तिविहार चउविहार (मुख्य कारण से दुविहार) तथा श्रावक को दुविहार, तिविहार, चउविहार (लेकिन एकलठाणा भोजन के बाद चउविहार ही होता है)
आयंबिल, नीवि	श्रावक व मुनि दोनों कोही तिविहार, चउविहार (अपवाद से नीवी दुविहार)[1]
उपवास भवचरिम	

१. बिमारी आदि के मुख्य कारण से पोरिसि आदि प्रत्याख्यान मुनि को कदाचित् दुविहार भी होते हैं । **चउहारं तु नमो रत्तिपि मुणीण सेस दुति चउहा** - इस पाठ से तथा श्री पंचाशकजी कें पांचवे पंचाशकमें ३५ वी गाथा की वृत्ति में अतिगाढ कारण से दुविहार पच्च० के लिए कहा है, जिससे दुविहार का संभव हो सकता है। लेकिन मुख्य आज्ञा तो मुनि के लिए तिविहार चउविहार की ही है। ८ प्रकार के संकेत पच्चक्खाण मुनि को चउविहार ही कहा है। (यति दिन चर्या ।)

तथा मुनि को भवचरिम और उपवास तिविहार या चउविहार का होता है शेष प्रत्याख्यान दुवि.- तिवि.-चउवि. कहें है (श्राद्ध- वृत्ति)

प्रश्नः- उपवास तो तिविहार या चउविहार समज सकते है । लेकिन एकाशन विगेरे दुविहार तिविहार कैसे हो सकते है?

उत्तर :- एकाशनादि में भोजन के समय के अलावा शेष काल में पानी और स्वादिम की छूट होती है, तो दुविहार एकाशना कहलाता है और भोजन के अलावा शेष समय में फक्त पानी की छूट होतो तिविहार एकाशनादि कहलाता है ।

संकेत पच्च०	मुनि को तिविहार चउविहार,श्रावक को दुविहार, तिविहार, चउविहार,
रात्रि प्रत्याखयन	मुनि को चउविहार श्रावक को दुविहार, तिविहार,चउविहार,
(दिवस चरिम)	लेकिन (एकाशनादि विशेष प्रतों में चउविहार)

एकाशनादि व्रतों में जहाँ जहाँ दुविहार की बात कही है। वहाँ वहा मुनि को तो किसी गाढ कारण से ही होता है, और श्रावकों को भी विना कारण दुविहार नही करना चाहिये। विशेषतः तिविहार या चउविहार ही करना चाहिये।

***

अवतरण:- अब तीसरा आहार द्वार कहा जारहा है। इस गाथामें चार प्रकार के आहार में से प्रथम आहार का लक्षण बताया जारहा है।

खुहपसम खमेगागी आहारि व एइ देइ वा सायं ।
खुहिओ व खिवइ कुट्ठे, जं पंकुवमं तमाहारो ॥१३॥

शब्दार्थ:- **खुह** = क्षुधाको, **पसम** = उपशांत करने में, **खम** = समर्थ, **एगागी** = अकेला, **व** = अथवा, **एइ** =आता हो, **खुहिओ** = क्षुधावाला, भूखा **खिवइ** = प्रक्षेपे, डाले, **कुट्ठे** = उदर में पेट मे, **पंक** = किच्चड़, **उवमं** = समान, **तं** = उस द्रव्य पदार्थ,

गाथार्थ: जो अकेला होने पर भी क्षुधा को शांत करने में समर्थ हो, अथवा आहार में आता हो, या आहार का स्वाद देता हो किच्चड़ के समान जिस निरस द्रव्य पदार्थ को भूखा व्यक्ति उदर में प्रक्षेपे (खाला है उसे) (इन चारों लक्षणवाला द्रव्य) आहार कहा जाता है. ॥१३॥

भावार्थ:- जो पदार्थ अन्य द्रव्य में मिश्रित न होता हो, और अकेला ही क्षुधा को शांत करने में समर्थ हो, ऐसा पदार्थ आहार में आता है।

इस लक्षण वाला आहार चार प्रकार का है।

(१) **अशन** = रांधेहुए चाँवल विगेरे पदार्थ।

(२) **पान** = जल तथा छास की आस(छास का पानी) विगेरे।

(३) **खादिम** = पान, फल, गन्ना विगेरे।

(४) **स्वादिम** = सूंठ, हरड़े, पीपरामूल विगेरे। ॥ ये आहार का प्रथम लक्षण है।

तथा क्षुधा को शांत करने में समर्थ न हो फिर भी अन्य द्रव्य के साथ मिश्रित होकर उसके गुण या रसमें कुछ विशेषता दर्शाता हो ऐसे पदार्थ दूसरे लक्षण में आते हैं।

जो एकाकी पदार्थ अशनादिक के स्वादमें वृद्धि करते हों चाहें फिर वो मिश्र हो या न हो, फिरभी आहार में आते हैं। ये तीसरा लक्षण है। (३ रे व ४ थे भक्षण के उदाहरण)[१] निमक हिंग, जीरा, कपूर, काथा विगेरे । जल में कपूर विगेरे, फलादि खादिम में, निमक विगेरे, और तंबोलादिक स्वादिम में काथा विगेरे)

भूखी व्यक्ति भूख को शांत करने के लिए, किच्चड़ समान निरस द्रव्य लेता है, तो उसे भी आहार कहा जाता है। जैसे कि मिट्टी ये आहार का चौथा लक्षण है।

यहाँ औषधि में प्रत्येक आनेवाले कितनेक द्रव्य आहारी और कितनेक अनाहारी भी है। (अधिकांश भावार्थ श्राद्ध विधि अनुसार दिया गया है।)

अवतरणः-इस गाथा में अशन व पान दो प्रकार के आहार के उदाहरण दिये गये हैं। (शेष दो प्रकार के उदाहरण १५ वीं गाथा में दर्शाये गये हैं)

असणे मुग्गो-अण सत्तु, मंड-पय-खज्ज-रब्ब-कंदाई [२]।
पाणे कंजिय-जव-कयर-कक्कडोदग सुराइ जलं ॥१४॥

शब्दार्थ:- **मुग्ग** = मूंग, **ओअण** = ओदन, चाँवल, **सत्तु** = साथु, **मंड** = पूड़े, मांडा, **पय** = दूध, **खज्ज** = खाजे, खाद्य, **रब्ब** = शब, **कंजिय** = कांजी का, **जव** = जव, जऊ, **कयर** = केर का, **कक्कड** = ककड़ी का, **उदग** - पानी, जल, **सुरा (आ) इ**=मदिरा विगेरे,

१. अर्थात नमक हिंग जीरा कपूर, काथा दि पदार्थ भूख समाने के लिए समर्थ नही है तबभी आहार में उपकारी होने से आहार रुपमाना है

(२) गाथा में कंदाई पद में रहा हुआ आइ-आदि शब्द मुंग इत्यादि सभी शब्द के साथ संबंधित गिणना (शब्द के अर्थ दो तरह से होते है,) (१) व्युत्पत्ति से माने धातु के आधार पर और (२) निर्युक्ति से माने शब्द में रहे हुए अक्षरो उपर से उत्पन्न की हुइ युक्ति से इस तरह यहां अशन शब्द का अर्थ भी दो तरह से होता है , आशु=शिघ्र (क्षुधा को उपशांत करता है) वह अशन यह निर्युक्ति अर्थ है, और अस्यते भुज्यते जिसका भोजन कीयाजाता है वह अशन ये व्युत्पति अर्थ है, माने धातु सिद्ध अर्थ है । यहां पर फलादि सभी आहार योग्य पदार्थ का भोजन किया जाता है, लेकिन अशनशब्द से चावलादि अमुक अमुक पदार्थ ही है गिना जाता है।

गाथार्थ:- मूंग विगेरे (= सभी कठोल) चाँवल विगेरे (=सर्व प्रकार के चाँवल, गेहूँ विगेरे धान्य) साथु विगेरे (जवार, मूंग विगेरे को सेक कर बनाया हुआ आटा) मांडा विगेर (पूड़े, रोटी, रोटे, बाटी विगेरे) दूध विगेरे (दही, घी विगेर) खाजे विगेरे (सभी प्रकार के पकवान विगेर) राब विगेरे (मक्का, गेहूँ , चाँवल विगेरे की) और कंद विगेरे (सभी प्रकार की वनस्पति के कंद और फलादि की बनाई हुई सब्जी विगेरे) इस प्रकार इन (८) आठ विभाग वाले सभी पदार्थों का समावेश [२]**अशन** में होता है । और कांजी का पानी (=छास की आछ) जऊ का पानी (=[१]जऊ का धोवण) केर का पानी (केर का धोवण) और ककड़ी तरबूज, खड़बूजे आदिफलो के अंदर रहा [२]हुआ पानी या उनके धोवण [३]का पानी, तथा मदिरा[४] विगेरे का पेय, ये [५]सभी पान [६]आहार में गिने जाते हैं।

भावार्थ:-विशेष यह है कि तिविहार के प्रत्याख्यान वाले को नदी, कूवे, सरोवर विगेरे का पानी जो कर्पूरादि अन्य पदार्थों से मिश्रित न हो ऐसा शुध्ध पाणी तिविहार में कल्पता है। तथा कर्पूर, द्राक्ष इलायची विगेर स्वादिम पदार्थों से मिश्रित जल दुविहार में कल्पता है।

***

अवतरण:- चार प्रकार चके आहार में से **खादिम** और **स्वादिम** आहार का स्वरूप इस गाथा में दर्शाया गया है । तथा **अनाहारी** (जो आहार में न आते) वस्तुओं का स्वरूप

खाइमि भत्तोस फला - इ साइमें सुंठि जीर अजमाई ही
महु गुल तंबोलाई अणहारे मोअ निंबाइ ॥१७॥

शब्दार्थ :- गाथार्थ के अनुसार सुगम हैं ।

---

१. (गेहूँ, चाँवल विगेरे अनाजों का धोवण भी इसमें अंतर्गत समजना।

२. इति प्रव० सारो० वृत्ति ।

३. इति भाष्यावचूरिः ।

४. सरका, आसवा विगेरे इसमें अंतर्गत समजना ।

५. इसके अलावा श्रीफल का पानी, गन्ने का रस तथा छास (और मदिरा) यद्यापि पानी तरीके गिने हैं । लेकिन वर्तमान काल में इसे अशन में गिनने का व्यवहार है। इसके सिवाय नदी, तलाब, कूवे, बावड़ी विगेरे सभी अपकायों को पान में ही गिनना ।

६. प्राणों को उपकार करे उसे पान कहा गया है (इति निर्युक्ति अर्थ) अथवा पा = पीना, जो पीयते=पीया जाता है, उसे पान कहते हैं। (इति व्युत्पत्ति अर्थ)

गाथार्थः- (भत्तोस = भक्तोष याने) सेके हुए धान्य तथा फलादि वस्तुएँ **खादिम**[1] में आती है। सूंठ, जीरा, अजवायन विगेरे तथा शहद, गुड़, तंबोल विगेरे भी **स्वादिम**[2] में आते हैं। और मूत्र (गोमूत्र) तथा निम विगेरे अनाहार में आते हैं।

भावार्थः- खादिमः- जिन वस्तुओं का भक्षण करने से संपूर्ण क्षुधा की शान्ति न हो, फिरभी आंशीक शान्ति हो उन्हें खादिम कहा गया है। जै से कि सेका हुआ अनाज, याने धाणी, ममरे, फुले, विगेरे,

तथा खजूर, खारेक, श्रीफल तथा बादाम, द्राक्ष, काजु विगेरे मेवा, आम तरबूज खड़बूज ककड़ी गन्ना विगेर, आँबलेगंट्ठी आंबागोली, कोठीपत्र, लिंबुइपत्र विगेरे खादिम पदार्थ हैं। दुविहार में नही कल्पते हैं।

स्वादिमः- जिसका आस्वाद किया जाता है उसे स्वादिम कहते हैं। जै से कि सूंठ, हरड़े, पीपर, कालीमीर्च, अजवायन, जायफल, जावंत्री, कांथा, खीखटी, जेठीमध, केसर, नागकेसर, तमालपत्र ईलायची, लविंग, बिडबवण, अजमोद, पीपरामूल, चिणिकबाबा, मोथ कांटासोलिओ, कपूर, हरड़े, बेड़ा - बबूल छाल, धावडीछाल, खेरकी छाल, खेजड़े की छाल, तथा उसके पत्र - सुपारी, हिंग, जवासामूल, बावची, तुलसी तज, पुष्करमूल तथा तंबोल सौंप - सुवा इत्यादि पदार्थ दुविहार में कल्पते हैं।

कितनेक जीरे को खादिम और खादिम दोनो में गिनते हैं। और कितनेक आचार्य अजवायन खादिम भी कहते हैं।

---

१. **खाद्यते** = जो खाया जाता है उसे, खादिम (इति व्युत्पत्ति) **ख**= आकाश अर्थात् मुखका विवर जिसमें **माति** = समाजाता है उसे **खादिम** कहते हैं। (इति निर्युक्ति) इसमें दकार का निपात संभव है।

२. **स्वाद्यते** = जिसका आस्वाद किया जाता है उसे **स्वादिम** कहा जाता है (इति व्युत्पत्ति) गुड़, मिश्री, आदि द्रव्यों के, इस विगेरे गुणों को तथा कर्त्ता के संयम गुणों को याने रागद्वेष रहि आस्वादन से, संयमी के संयम गुणोका जो **स्वादयते** स्वाद जताये उसे **स्वादिम** अथवा जो वस्तुएँ अपने माधुर्यादि गुणों को **सादयति** नाथ करे उसे **स्वादिम** कहते हैं। (इति निर्युक्ति)

तथा शहद - गुड़ - शक्कर - मिश्री भी स्वादिम में ली है, लेकिन तृप्ति करने वाले पदार्थ होने के कारण दुविहार में नही कल्पते हैं।

अनाहारी:- निम के पेड़ के सर्व अंग, (पत्र छाल लकडी फल फुलादि) गोमूत्रा्-दिमूत्र, करियाता, गलो, कडू , अतिविष, चीड़, - राख, - हल्दी, उपलेट,-जवुहरड़े,-[२]बेहडा - आँवले - बबूलछाल, धमासा, - कटु, - आसंधि, - नाहि - रिगणी - एलीओ - गुगल - बोरड़ी - कंथेरी - केरमूल - पूंआड़ - मजीठ - चित्रक - कुंदरु - फटकड़ी - चिमेड़ - थुवर - आकड़ा - विगेरे - अर्थात् जो वस्तु स्वाद में अनिष्ट स्वाद वाली हो - उन्हें अनाहारी समजना।

अवतरण :- अब १६वीं व १७ वीं गाथामें २२ आगार का (किस प्रत्याख्यान में कितने आगार होते हैं ? उस विषय में) चौथा द्वार कहा जारहा है।

दो नवकारी छ पोरिसि, सग पुरिमड्डे इगासणे अट्ठ ।
सत्तेगठाणि अंबिलि, अट्ठ पण चउत्थि छप्पाणे ॥१६॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ के अनुसार सरल हैं ।

गाथार्थ:- नवकारसी में २ आगार, पोरिसी में ६ आगार पुरिमड्ढ में ७ आगार, एकाशन में (तथा बिआसने में) ८ आगार, एकलठाणे में ७ आगार, आयंबिल में ८ आगार, चतुर्थभक्त में (उपवास में) ५ आगार और पाणस्स के प्रत्याख्याने में ६ आगार होते हैं। ॥१६॥

चउ चरिमे चउभिग्गहि, पण पावरणे नवट्ठ निव्वीए ।
आगारुक्खित्त विवेग - मुत्तु, दवविगइ नियमिट्ठ ॥१७॥

शब्दार्थ:- गाथार्थ अनुसार सरल हैं ।

गाथार्थ:- चरिम प्रत्याख्यानों में (दिवस चरिम और भव चरिम में) ४ आगार, [१]अभिग्रह में ४ आगार, प्रावरण (वस्त्र के) प्रत्याख्यान में ५ आगार, और नीवि में ९ आगार, अथवा ८ आगार। यदि नीवि के विषय में पिडविगइ और द्रव विगइ इन दोनों का प्रत्याख्यान हो तो (९ आगार) मात्र द्रव विगइ के नियम में उक्खित्त विवेगेणं इस आगार को छोड़कर शेष ८ आगार होते[२] हैं। ॥१७॥

२. हरड़े बेहड़े व आँवले विगेरे कितनीक वस्तुओं को स्वादिम में भी गिनी गयी है।

भावार्थ :- गाथार्थवत् सुगम है । विशेष यह है कि यहाँ भाष्य में यद्या पि विगइ के अलग प्रत्याख्यान में ९ या ८, इस प्रकार दो तरीके से आगार कहें हैं । लेकिन २० वीं गाथा में फक्त ९ आगार ही कहे जायेंगे । अन्यग्रंथों में तो विगइ के प्रत्याख्यान में ९ या ८ दोनों[2] प्रकार के आगार दर्शाये हैं ।

तथा प्रावरण के प्रत्याख्यान में (जितेन्द्रिय मुनि - चोलपट्टा विगेरे नही पहेरने का अभिग्रह धारण करते हैं उसमें) अन्न० सह० चोलपट्टागारेणं मह० - सव्व० ये पाँच आगार होते हैं । इस विषय में विशेष विवरण चोलपट्टा० के अर्थ में दर्शाया गया है ।

इस प्रकार १६ वीं व १७ वीं गाथा में प्रत्येक प्रत्याख्यानों के आगार की संख्या सामान्यतः दर्शायी गयी । संक्षेप में इस प्रकार हैं ।

नमु० २	पोरिसी ० ६	सार्धपोरिती० ६	प्रावरण - ५
पुरिम० ७	अवड्ढ ७	विगइ ९	नीवि ९
एकाशन ८	बिआसन ८	एकलठाण ७	आयंबिल ८
उपवास ५	पाणहार ६	चरिम ४	अभिग्रह ४

अवतरण: -अब किस प्रत्याख्यान में कितने आगार होते हैं, उसे नामपूर्वक दर्शाया जारहा है । इस गाथा में प्रथम स्थान में गिने जाने वाले अध्धा प्रत्याख्यान के याने नव० पोरिसी - सार्धपो० और पुरिम० अवड्ढ० के प्रत्याख्यान के आगार दर्शाये गये हैं ।

अन्नसह दुनमुक्कारे, अन्न सह पच्छ दिसय साहु सव्व ।
पोरिसि छ सड्ढपोरिसि, पुरिमड्ढे सत्त समहत्तरा ॥१८॥

शब्दार्थ :- गाथार्थ के अनुसार सरल है ।

गाथार्थ:-नमुक्कार सहियं के पच्च० में, अन्नत्थणभोगेणं और सहसागारेणं ये दो आगार हैं, तथा अन्न थणा भोगेणं, सहसागारेणं पच्छन्न कालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणएणं, सव्वसमाहि वत्तियागारेणं, ये ६ आगार पोरिसी व सार्धपोरिसी के प्रत्याख्यान के हैं । और महत्तरा गारेणं सहित ७ आगार पुरिमार्ध के (तथ्र अपार्ध =अवड्ढ के) प्रत्याख्थान में होते हैं।

१. (यहाँ अभिग्रह शब्द से ८ प्रकार के संकेत प्रत्याख्यानों में तथा द्रव्यादि ४ प्रकार के अभिग्रह में ४ आगार होते हैं । जिसका वर्णन २३ वीं गाथा में दर्शाया गया है ।

२. ८ या ९ आगारों का कारण विगइओं का स्वरुप तथा उक्खित्त आगार का अर्थ जानने के बाद समज में आयेगा । (अर्थ आगे गाथा में दर्शाया गया है)

भावार्थः- विशेष यह है कि अन्न, सह विगेरे शब्द संपूर्ण पद नही हैं । लेकिन पदों के अंश हैं । फिर भी अर्थ में संपूर्ण पद लेना चाहिये । तथा [1]नवकारसी प्रत्याख्यान अति अल्प कालका याने १ मुहूर्त (=सूर्योदय से २ घड़ी) तक का ही है । उसी कारणसे उसमें अशक्य परिहार वाले दो आगार अल्पसमय के हैं । पोरिसी आदि प्रत्याख्यान विशेष काल प्रमाण वाले होने के कारण उन में आगार भी विशेष रखने पड़ते हैं ।

"।। इति प्रथम स्थान के अध्धा प्रत्याख्यान आगार ।।"

अवतरण :- इस गाथा में तीसरे स्थान में गिनेजाने वाले एकाशन, बिआशन, और एकलठाण के आगार दर्शाये गये हैं ।

अन्न सहस्सागारि अ , आउंटण गुरु अ परि मह सव्व ।
एग-बिआसणि अट्ठ उ, सग इगठाणे अउंट विणा ।।११।।

शब्दार्थः- गाथार्थ अनुसार सुगम हैं ।

गाथार्थ :-अन्न=[2]अन्नत्थणा भोगेणं, **सह**=सहसागारेणं, **सागारी**=सागारि आगारेणं, [2]**आउंटण** = आउंटण पसारेणं **गुरु**=गुरु अब्भुट्ठाणं, **पारि** = पारिट्ठावणिया गारेणं, **मह** = महत्तरा गारेणं, **सव्व** = सव्व समाहि वत्तिया गारेणं, ये आठ आगार एकासने और बिआसने में होते हैं । और एकलठाण में आउंटण पसारेणं इस आगार के विना शेष सात आगार होते हैं । ।।११।।

---

१. **प्रश्नः-** उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं पच्चक्खाइ । चउविहंपि आहार असणं पाणं खाइमं साइमं । अन्नत्थणाभोगेणं सहसा गारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिया गारेणं वोसिरइ। इस प्रकार नवकारसी के प्रत्याख्यान के आलापक में ४ आगार दर्शाये हैं । इसका कारण?

उत्तरः- ये प्रत्याख्यान सिर्फ नवकारसी का ही नही है, साथ में मुट्ठिसहियं का प्रत्याख्यान भी है । नवकारसी अध्धा पच्च० है, और मुट्ठिसहियं ट्ठि संकेत प्रत्याख्यान है । संकेत प्रत्याख्यान के ४ आगार है, नवकारसी के तो दो ही आगार हैं । अर्द और संकेत दोनों प्रत्याख्यानों के संयुक्त रूप ४ आगार नवकारसी के प्रत्याख्यान में दर्शाये गये हैं । ठीक वैसे ही पोरिसी और सार्धपोरिसी के आलापकों में भी मुट्ठिसहियं संकेत प्रत्याख्यान होने कारण महत्तरा गारेणं आगार आता हैं ।

२. (आउंटणपसारेणं = ये आगार अंग - उपांग को संकुचित और प्रसारने की छूट के लिए है । और एकलठाण में अंगोपांग को हलन - चलन की छूट नही है, इस लिए ये आगार नही लिया)

अवतरणः- इस गाथा में दूसरे स्थान के प्रत्याख्यान नीवि, विगइ आयंबिल के आगार दर्शाये गये हैं।

अन्न स्सह लेवा गिह, उक्खित्त पडुच्च पारि मह सव्व।
विगई निव्विगए नव, पडुच्च विणु अंबिले अट्ठ ॥२०॥

गाथार्थः- अन्नत्थणा भोगेणं, [1]सहसा गारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं और सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, ये ९ आगार विगइ और नीवि के पच्चक्खाण में होते हैं। और [2]पडुच्चमक्खिएणं के अलावा ८ आगार आयंबिल में आते हैं। ॥२०॥

भावार्थः- विशेष यह है कि यहाँपर नीवि तथा विगइमें ९ आगार बताये हैं। और पूर्व की १७ वीं गाथा भावार्थ में कहा है कि नीवि में ९ तथा ८ आगार भी होते हैं। वहाँ पिंडविगइ और द्रव विवेगइ दोनों के संबंध में ९ आगार होते हैं। और मात्र द्रवविगइ के विषय में उक्खित्त विवेगेणं के अलावा शेष ८ आगार होते हैं। याने पिंडविगइ के प्रत्याख्यान में ९ आगार और द्रवविगइ के प्रत्याख्यान में ८ आगार होते हैं। तथा जैसे नीवि में ७ और ८ आगार कहे है, वैसे छूटी विगई के पच्चक्खाण में भी मात्र पिंड विगई का पच्चक्खाण करे तो ७ आगार और मात्र द्रव विगई का पच्चक्खाण में उक्खितविवेगेणं छोडकर शेष ८ आगार जाणना

***

अवतरणः- इस गाथामें उपवास, पानी, चरिम और संकेतादि अभिग्रह इन चारों पच्चक्खाण के आगार बताये गये हैं।

अन्न सह पारि मह सव्व पंचखम (व) णे छ पाणिलेवाई।
चउ चरिमंगुट्ठाई - भिग्गहि, अन्न सह मह सव्व ॥२१॥

---

१. जिन दोषों को टालने का प्रयत्न करते हैं, फिर भी टाल नही सकते, और सहसा हो, जाते हैं, ऐसे अकस्मात दोष अशक्य परिहार वाले कहे जाते हैं। इसी कारण से प्रत्येक प्रत्याख्यान में अशक्य परिहार वाले दो आगार रखने ही पड़ते हैं। तथा निरागार प्रत्याख्यानों में (आगार रहित में) भी ये दो आगार तो अवश्य होते ही हैं।)

२. आयंबिल में घी आदि स्निग्ध (चिकटा) पदार्थ कल्पता नही और पडुच्च मक्खिएणं आगार घी वगेरे से कुछ मसली हुई रोटी आदि आहार भो छुट वाला है, इसलिए आयंविल में यह आगार होता नही है।

शब्दार्थः- गाथार्थ के अनुसार सुगम है ।

गाथार्थः-क्षपण में (उपवास में) अन्नत्थणाभोगेणं - सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं - महत्तरागारेणं और सव्वसमाहि वत्तियागारेणं ये ५ आगार होते हैं । पानी के प्रत्याख्यान में लेवेण वा आदि ६ आगार (लेवेण वा-अलेवेण वा-अच्छेण वा-बहुलेवेण वा-ससित्थेण वा असित्थेणवा ये ६ आगार) तथा चरिम प्रत्याख्यान में और अंगुट्ठसहियं आदि अभिग्रह के (संकेत विगेरे) प्रत्याख्यानों में अन्न त्थणा भोगेणं सहसागारेणं -महत्तरागारेणं और सव्वसमाहि वत्तियागारेणं ये ४ आगार होते हैं । ॥२१॥

भावार्थ :- चरिम प्रत्याख्यान में दिवसचरिम और भवचरिम ये दो प्रत्याख्यान ४-४ आगारवाले हैं, फिर भी भवचरिम प्रत्याख्यान यदि कोई समर्थ महात्मा महत्तरागारेणं और सव्वसमाहि वत्तिया गारेणं इन दो आगारों को भावी के लिए प्रयोजन रहित मानकर निरागार (आगाररहित) प्रत्याख्यान करते हैं तो निरागार भवचरिम में अन्नत्थणा भोगेणं और सहसागारेणं ये दोही आगार होते हैं । **(धर्म सं- वृत्ति)**

॥ प्रत्याख्यानों के आगारों का कोष्टक ॥

नवकारसी	२	अन्न० - सह०
पोरिसी, सार्ध पोरिसी	६	अन्न०-सह०-पच्छन्न-दिसा०-साहु०-सव्व०
पुरिमड्ढ, अवड्ढ	७	६ आगार उपरोक्त एवं १ महत्तरा०
एकासना, बिआसना	८	अन्न-सह०-सागारि०-आउंरण०-गुरु०-पारि०-मह० - सव्व०
एकलठाणा ०	७	आउंटण० विना एकाशन वत्
विगइ		अन्न०-सह०-लेवा०-गिहत्थ०-उक्खित्त०-पडुच्च०-पारि०-मह०-सव्व०-
नीवि - पिडविगई संबंधि	९	
नीवि - द्रव विगई, विगई सबंधि	८	उपरोक्त आगार उक्खित्त विना ८ आगार
आयंबिल	८	पडुच्च० विना विगइवत्
उपवास	५	अन्न० सह० पारि० मह० सव्व०
पाणहार	६	लेवे० अलेवेण० अच्छेण०-बहुले० ससित्थे० असित्थे०
अभिग्रह (संकेत सह)	४	अन्न० - सह०-मह०-सव्व०

प्रावरण	५	अन्न०-सह०-चोलपट्टागा०-मह०-सव्व०
दिवसचरिम भवचरिम देसावगा०	४	अन्न०-सह०-मह०-सव्व०

अवतरण :- २० वीं गाथा का अनुसरण करने वाली इस गाथा में विगई और उसके द्रवविगई आदि भेद दर्शाये गये हैं।

दुध्ध-महु-मज्ज-तिल्लं चउरो दवविगइ चउर पिंडदवा।
घय-गुल-दहियं-पिसियं, मक्खण-पक्कन्न दो पिंडा ॥२२॥

शब्दार्थ:-**महु**-शहद् मधु, **मज्ज**-मद्य, मदिरा, **घय**=घृत, घी **पिसियं**=पिशित, मांस,

गाथार्थ:- दूध, शहद मदिरा, और तेल ये चार द्रव (प्रवाही) विगई है तथा घी गुड़, दहि, और मांस ये ४ पिंड द्रव याने मिश्र विगइ है। तथा मक्खन और पकवान्न ये दो पिंड विगइ है ॥२२॥

भावार्थ:- द्रव = नरम प्रवाही पदार्थ उसे द्रवविगइ कहते हैं। और पिंड याने जिसके अंश परस्पर जुड़करके पिंडीभूत बने हुए हों, ऐसी कुछ कट्ठीन विगइ उसे **पिंडविगइ** कहते हैं। तथा अग्नि आदि सामग्री से जो विगइ प्रवाही बनती हो, और सामग्री के अभाव में पुनः पिंडरुप धारण कर लेती हो उसे **द्रवपिंडविगइ** कहते हैं।

तथा कौनसी, विगइ किस प्रकार के स्वभाववाली है, इस गाथार्थ अनुसार समजाना सुगम है। इसके लिए विशेष विवेचन का प्रयोजन नही है। तथा द्रव व पिंड विगइ में भक्ष्य अभक्ष्य विगइ कौन सी है। इस विषय की जानकारी ग्रंथकार स्वयं २९ वीं गाथामें दर्शायेंगें।

अवतरण :- कौन से प्रत्याख्यान समान आगार वाले है वो इस गाथा में दर्शाया गया है ?

पोरिसि-सड्ढ अवड्ढ दुभत्त निव्विगइ पोरिसाइ समा।
अंगुट्ठ-मुट्ठि-गंथी-सचित्त दव्वाइ भिग्गहियं ॥२३॥

१. २. ३. गाथा में अवड्ढ-दुभत्त और निव्विगई माने अपार्ध बिआसणा और निवि ये ३ प्रत्याख्यान का अलग प्रत्याख्यान है। पिर भी उपलक्षण से उनके सरखे आगार वाले पुरिमड्ढ एकासणा और विगई सजातीय पच्चखाण एक एक पद से ले लेना

शब्दार्थः- गाथार्थ अनुसार सुगम है ।

गाथार्थः- पोरिसी और सार्धपोरिसी के, अवड्ढ [1]और पुरिमड्ढ के, तथा (दुभत्त =) बिआसने [2]व एकाशने के, (निव्विगई=) नीवि और विगई [3]के, अंगुट्ठसहियं मुट्ठिसहियं और गंठि सहियं आदि ८ संकेत प्रत्याख्यान तथा सचित्त द्रव्यादिक का (=द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) अभिग्रह, तथा देसावगासिक (इन दोनों के) परस्पर समान आगार हैं। अर्थात् आगारों की संख्या और आगारों के नाम समान हैं। ॥२३॥

अवतरणः- इस गाथा में प्रथम चार आगारों का अर्थ दर्शाया गया है।

विस्सरणमणाभोगो, सहसागारो सयं मुहपवेसो ।

पच्छन्नकाल मेहाई, दिसिविवज्जासु दिसिमोहो ॥२४॥

शब्दार्थः-विस्सरणं = विस्मरण भूलजाना **अणाभोगो**=अनाभोग, आगार **सयं** = स्वयं, स्व इच्छासे, अकस्मात **मेहाई** = वर्षा विगरे (से) **विवज्जासु** = विपर्यास में, दिशा के फेरफार से

गाथार्थ :- भूलजाना वह अनाभोग, आहार के पदार्थ अकस्मात मुख में प्रवेश करे, वह सहसागार, वर्षा विगेरे से (समय मालुम न हो) वह पच्छन्नकाल, और दिशाओं का फेरफार समजने से दिशामोह आगार समजना चाहिये ।

भावार्थः-अन्नत्थण भोगेणं आगार :- इस आगार में अन्नत्थ और अनाभोग दो शब्द हैं। अन्नत्थ = अन्यत्र (= विना अथवा छोड़कर)और अनाभोग = भूलजाना (ऐसा अर्थ गाथा में ही दर्शाया है) अर्थात् जिस प्रत्याख्यान का व्रत लिया है उसे मतिदोष या भ्रान्ति से भूल गये हो, और त्याग किये हुए पदार्थ भूल से खायें हो, या मुख में डाले हो, तो उसे **अनाभोग** कहा जाता है। प्रत्याख्यान ग्रहण करते समय ऐसे अनाभोग को छोड़कर प्रत्याख्यान करता है । इस प्रकार प्रत्याख्यान के समय ऐसी छूट प्रारंभ से ही जताने के लिए **अन्नत्थणा भोगेणं** आगार उच्चरा जाता है। जिससे कदाच् ऐसी भूल हो भी जाये तो प्रत्याख्यान का भंग नही होता है।

इस आगार के लिए एवं अन्य आगारों के लिए भी इतना ध्यान अवश्य रखना है कि भूलसे या अन्य किसी कारण से त्याग की हुई वस्तु खाइ हो, या मुख में डाली हो तो जैसे ही याद आवे कि तुरंत खाना बंद करके शेष वस्तु को मुख से बाहर निकालकर मुख शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिये लेकिन गलना नही । फिरसे ऐसी भूल न हो, और परिणाम भी मलीन न हो इसके लिए गुरु से यथायोग्य प्रायश्चित लेना चाहिये ये शुद्ध व्यवहार है।

तथा "**अन्नत्थ**" (=छोड़कर) इस शब्द को जिस प्रकार ङ्ग्अनाभोगङ्ग के साथ जोड़ा है, वैसे ही ये शब्द सहसागार विगेरे आगारों के साथमें भी संबंध वाला है। जिससे **अन्नत्थ सहसागारेणं - अन्नत्थ महत्तरागारेणं अन्नत्थ सव्वसमाहि वत्तिया गारेणं** विगरे सर्व आगारों में अन्नत्थं शब्द का अनुसरण है । लेकिन उच्चरते समय "उग्गए सूरे या सूरे उग्गए" के पाठवत् और अन्त में उच्चरे जानेवाला पच्चक्खाइ या वोसिरइ के पाठवत् अन्नत्थ शब्द भी वारंवार नही उच्चराया जाता लेकिन इसका संबंध सर्व आगारों के साथ समजना।

२. सहसागारेणं:- सहसा = अकस्मात् बिना विचारे, या अचानक अर्थात् विचारा भी न हो और अकस्मात कोई कार्य हो जाय, या जिस कार्य को जान बुझ कर न किया हो, सहसा हो गया हो । ऐसे अकस्मात, कार्यो का आगार = छूट उसे सहसागार कहते हैं । जैसे कि उपवास का प्रत्याख्यान किया हो, और छास का बिलौना कर रहे हों, जैसे ही कुछ छास की बूंद मुख में आकर गिर पड़ी हो, इस प्रकार की अकस्मात् घटना से प्रत्याख्यान का भंग न हो इस कारण से **सहसागारेणं** आगार रखा गया है ।

३. पच्छन्नकालेणं आगार:- वर्षा विगेरे से या आकाशमें महावायु से धूल चढ जावे यापर्वतआदि की आडसे सूर्य आच्छादित होने से कितना दिन हुआ है, वह मालूम न पडे इसलिये अनुमान से पोरिसिका काल पूर्णमानकर अपूर्ण काल-में पोरिसी विगेरे प्रत्याख्यान-पार लिया हो, फिर भी प्रत्याख्यान का भंग न हो उसे पचछन्न कालेणं आगार कहा जाता है।

लेकिन प्रत्याख्यान का समय पूर्ण न हुआ हो, और ध्यान में आ जावे है तो तुरंत भोजन करे रहें हो तो रुक जाना चाहिये । जब प्रत्याख्यान का समय हो जाता है, उसके बाद शेष भोजन लेना चाहिये । और प्रत्याख्यान का समय नही हुआ है, ऐसा जानने पर भी भोजन करते रहे, तो प्रत्याख्यान का भंग हुआ, कहलाता है ।

४. दिशामोहेणं [1]आगार:- दिशाओं के व्यामोह से याने दिशा भ्रम से (पश्चिम को पूर्व, [1]पूर्व को पश्चिम दिशा समजे इस प्रकार दिशाभ्रम होनेसे भी) अपूर्ण काल में प्रत्याख्यान (पोरिसी, सार्धपोरिसी, पुरिमड्ढ अवड्ढ, एकाशनादि प्रत्याख्यान अपूर्ण काल में) पार लिया हो तो भी किये हुए प्रत्याख्यान का भंग नही होता है। उसे दिशामोहेणं आगार कहाजाता है। यहाँ दिग्मूढ = दिशामोह ये मतिदोष से होता है । लेकिन जान बुजकर नही होता है, अतः छूट रखी है ।

---

१. इस प्रकार की दिग्मूढता के समय वास्तविक रीत से तो सूर्य पूर्व मेंही होता है । लेकिन दिग्मूढता से पश्चिम दिशा का आभास होता है, और समजता है कि पोरिसी विगेरे का समय तो कभी का पूर्ण हो गया अभि तों संध्या समय होने आया है, इस प्रकार की भ्रान्ति से प्रत्याख्यान अपूर्ण काल में पार लिया हो फिर भी प्रत्याख्यान का भंग नही होता है, इसलिए दिशामोहेणं आगार रखा जाता है । इसी प्रकार पश्चिम दिशा के लिए भी समजना, अन्य दिशाओं का यहाँ प्रयोजन नही है ।

अवतरण :- इस गाथा में ५-६-७-८ वें आगार का अर्थ दर्शाया गया है ।

साहु वयण उग्घाड़ा - पोरिसि तणुसुत्थया समाहित्ति ।
संघाइकज्ज महत्तर, गिहत्थबन्दाइ सागारी ॥२५॥

शब्दार्थ:- **तणु** - शरीर की, **सुत्थया**=स्वस्थाता, रोग की शांति, **समाहि**= समाधि **(इ) ति** = वह, **कज्ज** = कार्य, **बन्दाइ** = बन्दी विगेरे ।

गाथार्थ:- "उग्घाड़ा पोरिसी" इस प्रकार मुनि का वचन सुनकर अपूर्ण काल में (पोरिसी पच्च०) प्रत्याख्यान पारना । वह साहुवयणं आगार कहलाता है । शरीरादि की स्वस्थता के लिए जो आगार उसे सव्वसमाहि वत्तिया गारेणं आगार कहा जाता है । संघ विगेरे के महान कार्य वाला (=प्रयोजन वाला) अथवा महानिर्जरा वाला आगार उसे महत्तरागार आगार कहा जाता है, और गृहस्थ तथा बन्दी विगेरे संबंधि आगार उसे सागारी आगार कहाजाता है। ॥२५॥

भावार्थ :- ५. साहुवयणेणं :- सूर्योदय से ६ घड़ी बाद प्रथम [1]सूत्रपोरिसी पूर्ण होती है उस समय पोरिसी का काल पादोनपोरिसी (पोने भाग की पोरिसी) जितना हुआ होता है । उस समय मुनिभगवन्त "उग्घाड़ा पोरिसी या" बहु पडिपुन्ना पोरिसी बोलकर मुहपत्ति की प्रतिलोखना करते हैं । ऐसी साधु समाचारी (=मुनि का विधिमार्ग) है इस उग्घाड़ा पोरिसी शब्द से पोरिसी को प्रत्याख्यान का समय हो गया है ऐसा जानकर कोई पच्चक्खाण पारे तो पोरिसी के पच्चक्खाण का भंग नही होता है । इसी कारण से **साहुवयणेणं** आगार रखने में आता है.। (साहुवयणेणं याने उग्घाड़ पोरिसी ऐसा साधु का वचन सुनने से)

१. प्रथम ६ घड़ी तक सूत्र पढ़ सकते हैं । अतः प्रथम **सूत्रपोरिसी**, और बाद की ६ घड़ी में अर्थ पढा जता है, अतः **दूसरी अर्थपोरिसी**, इसी कारण से मुनिमहाराज प्रथम पादोन पोरिसी अर्थात् सूत्रपोरिसी में प्रथम सूत्र का व्याख्यान पढते हैं, सूत्र पोरिसी पूर्ण होने पर मुहपत्ति की प्रतिलेखना कर अर्थ का याने चरित्र विगेरे का दूसरा व्याख्यान पढ़ते हैं। इन दो व्याख्यान के बीच साधु साध्वी और पौषधधारी श्रावक सूत्र पोरिसी पूर्ण होने की मुहपत्ति पडिलेते हैं । और श्राविकाएँ विशेष स्वाध्याय अर्थ उस समय गहुँलि गाती है ।

२. पोरिसी का काल सूर्योदय से भिन्न भिन्न याने अनियत प्रमाण वाला है । और सूत्रपोरिसी का (=पादोन पोरिसी का) काल तो सदैव सूर्योदय से ६ घड़ी का नियत प्रमाण वाला होता है। अतः "उग्घाड़ा पोरिसी" ये वचन पोरिसी के प्रत्याख्यान वाले को भ्रान्ति उत्पन्न करता है । और इसीकारण अपूर्ण काल में पच्चक्खाण पारने का कारण बनता है ।

प्रत्याख्यान पारने के बाद यदि ज्ञात हो जाता है कि अभी पोरिसी का समय नही हुआ है तो पूर्ववत् विवेक रखकर समय पूर्ण होने पर भोजन विगेरे ग्रहण करना चाहिये।

६. सव्वसमाहि वत्तियागरेणं:- तीव्र शूल विगेरे वेदना से अत्यंत पिडीत व्यक्ति को अतिपीड़ा के कारण आर्तध्यान और रौद्रध्यान होने की संभव है। और ऐसे दुर्ध्यान से तो जीव दुर्गति में जाता है। इस प्रकार के दुर्ध्यान को रोकने के लिए औषधि आदि लेने के लिए कोई वेदना से व्याकुल जीव पोरिसी आदि का प्रत्याख्यान समय से पूर्व पारता है, तो भी पच्चक्खाण का भंग नही होता है। उसे सव्वसमाहि वत्तिया गारेणं आगार कहा जाता है। (यहां दुर्ध्यान के **सव्व** = सर्वथा अभाव से **समाहि** = समाधि याने शरीर की स्वस्थता रुप **वित्तिय** = प्रत्यय - हेतु - कारणवाला **आगारेण** = आगार से पच्च० का भंग नही होता है)

अथवा वेदना से व्याकुल साधु विगेरे धर्मी आत्माओं का उपचार करने के लिए जानेवाला वैद्य भी अपूर्ण काल में पोरिसी विगेरे का प्रत्याख्यान पारता है तो उसे भी पच्चक्खाण का भंग नही होता है। अतः ये आगार साधु आदि के लिए तथा वैद्य के लिए भी है। (धर्म सं-वृत्ति, प्रव० सारो० वृत्ति आदि)

७. महत्तरा गारेणं :- प्रत्याख्यान से होने वाली निर्जरा से भी अधिक निर्जरा का लाभ मिलता हो, वैसा संघका, जिनालय का या ग्लान मुनि आदि के वैयावच्च का कोई महत्व का कार्य आगया चहो, और वो महान कार्य किसी अन्य के द्वारा होना संभव न हो, ऐसे प्रसंग पर पोरिसी आदि प्रत्याख्यान समय से पूर्व पारना पड़े, फिरभी पच्चक्खाण का भंग न हो उसे महत्तरा गारेणं आगार कहा जाता है।

८. सागारि आगारेणं :- इस आगार का प्रयोग एकाशने में होता है। **सागारी** = (मुनि की अपेक्षा से) कोई भी गृहस्थ, (श्रावक की अपेक्षासे) ऐसी व्यक्ति कि जिसकी द्रष्टि से भोजन न पचे (= कुद्रष्टि वाला व्यक्ति) तात्पर्य यह है कि मुनि को गृहस्थ के देखते हुए भोजन नही करना चाहिये। ऐसी साधु समाचारी है। यदि एकाशने के समय गृहस्थ आजावे और वो अधिक समय तक रुकता है तो मुनि को उस समय भोजन नही करना चाहिये। और लगे कि ये व्यक्ति यहाँ से लम्बे समय तक जानेवाला नही है, तो भोजन करते करते बीचमें उठकर अन्यत्र जाकर भोजन करे, फिर भी प्रत्याख्यान का भंग नही होता है, उसे **सागारिआगारेणं** आगार कहते हैं।

इसी तरह भोजन करते समय ऐसा कोई व्यक्ति आजाय कि जिसकी द्रष्टि भोजनपर पड़ने से भोजन हानिकारक (भोजन न पचे, या अवगुण करे) बनजाता हो, तो ऐसी द्रष्टिवाले व्यक्ति से बचने के लिए गृहस्थ वहाँ से खड़े होकर अन्यत्र जाकर भोजन करे तो भी इस आगार के कारण पच्च० का भंग नही होता है।

तथा सागारिक के उपलक्षण से बन्दि (याने भाट, चारण आदि) सर्प - अग्निभय-जल से भय - गृह के गिरने आदि से - इत्यादि अनेक आगार इस सागारिआगारके अन्तर्गत समजना।

अवतरणः- इस गाथा में ९-१०-११-१२ वें आगार का अर्थ कहा जा रहा है ।

आउंटण - मंगाणं, गुरुपाहुणसाहु गुरु अब्भुट्ठाणं ।
परिठावण विहिगहिए, जईण पावरणि कडिपट्टो ॥२६॥

शब्दार्थ :- आउंटण = आकुंचन प्रसारण (छोटे बड़े करना), **अंगाणं** = अंगो का, हाथ पैर का, **विहिगहिय** = विधिपूर्वक ग्रहण करने पर भी, **जईण** = यतिको, मुनि को **पावरणि** = प्रावरण के (वस्त्र के) प्रत्याख्यान में, **कडिपट्टो** = कटिवस्त्र का चोलपट्टे का आगार

गाथार्थः-अंग को संकुचित प्रसारण करना वह "**आउटणपसारेण**" आगार, गुरु या प्राहुणा साधु (वडीलसाधु) के आनेपर खड़े होना, वह "**गुरु अब्भुट्ठाणेण**" आगार, विधिपूर्वक ग्रहण करने पर शेष परठवने योग्य आहार को (गुरु आज्ञासे) लेना (वापरना) वह "पारिट्ठा वणियागारेण" आगार यति को ही होता है। तथा वस्त्र के प्रत्याख्यान में "**चोलपट्टागारेण**" आगार भी यति को ही होता है ।

विशेषार्थ :- १. आउंटणपसारेणं :- एकाशन में हाथ - पाँव विगेरे अंगो को स्थिर कर बैठना लम्बे समय तक संभव न हो और हाथ पाँव विगेरे अवयवों को संकुचित करे या लंबाये फिर भी एकाशन का भंग न हो उसे आउंटण पसारेणं आगार कहा जाता है ।

---

१. तथा इस प्रकार की द्रष्टि के अलावा अन्य गृहस्थ भोजन के समय घरपर आवे तो विवेक पूर्वक उसको भोजन के लिए कहना चाहिये और भोजन करवाना चाहिये। द्वार पे याचक आया हो तो यथाशक्ति दान दें, लेकिन सर्वथा निराश कर उसे न लौटायें, कारण कि गृहस्थ का दान धर्म है। इसीलिए भोजन के समय द्वार खुले रखने को कहा है। कोई आजायेगा इस भय से द्वार बंद कर भोजन करना कृपणता की निशानी और एकलपेटापणा गिना जाता है।

१०. गुरुअब्भुट्ठाणेणं:- वडील प्राहुणा साधु या गुरुभगवन्त घर पधारें और उस समय एकाशना कर रहे हों फिर भी विनय मर्यादा को ध्यान में रखकर शीघ्र खड़े होकर सम्मान करना चाहिये । जिससे अब्भुट्ठाणेणं याने खड़े [1]होनेपर भी एकाशन का भंग नही होता । और ये आगार विनयधर्म की प्रधानता दर्शाता है । इसी कारण इस आगार का नाम गुरु अब्भुट्ठाणेणं रखा गया है ।

११. पारिट्ठावणिया गारेणं :- विधिपूर्वक गोचरी लेकर आये हों, और अन्य मुनिगण के विधिपूर्वक आहार लेने के बाद भी यदि कुछ बचगया हो तो वो आहार परठवने के योग्य (= सर्वथा त्याग करने के योग्य) गिना जाता है । यदि परठवने में अनेक दोष हैं ऐसा जानकर गुरु महाराज यदि उपवासवाले या एकाशनवाले मुनि को एकाशना करलेने के बाद भी वापरने की आज्ञा करें, तो उस मुनि को फिरसे आहार लेने पर भी उपवास तथा एकाशनादि के पच्चक्खाण का भंग नही गिना जाता है, इसी कारण से पारिट्ठावणियागारेणं आगार रखागया हैं।

इस आगार में प्रत्याख्यान वाले मुनि को गुरु की पवित्र आज्ञा का ही पालन करना है, लेकिन आहार के ऊपर किंचित् मात्रभी भोलुपता नही रखनी है । तथा गुरु भगवन्त ने आहार लेने की आज्ञा की, अच्छा हुआ वर्ना आज एकाशन बहुत मुश्किल से होता। इस प्रकार भी आहार की अनुमोदना नही करनी चाहिये । [2]ये आगार सिर्फ मुनि को ही होता है (यहाँ इतना विशेष है कि चउहार के प्रत्याख्यान वाले मुनि को परठ्ठवने योग्य आहार में अन्न व पानी दोनों ही बचे हों तो लेना कल्पता है। वर्ना नही कल्पता । तथा जिस मुनिने तिविहार उपवास या एकाशना किया हो तो उसे पानी पीने की प्रथम से ही छूट है अतः मात्र आहार ही बचा हो फिरभी लेना कल्पता है । कारण कि बचा हुआ आहार ग्रहण करने के बाद तिविहार से पानी की छूट के कारण पानी से मुखशुद्धि कर सकते हैं ।) ये आगार एकाशन में श्रावक को भी उच्चराया जाता है । प्रत्याख्यान का आलापक खंडित न हो इसके लिए है । लेकिन ये आगार श्रावक को होता है ऐसा नही ।

---

१. यह आगार सिर्फ खडे होनेका है, लेकिन चलकर सामने जाने के लिए नही हैं।

२. यह विधिसे ग्रहण किया और विधिसे भुक्त (खाया)
विधिसे ग्रहण किया और अविधिसे भुक्त (खाया)
अविधिसे ग्रहण किया और विधिसे भुक्त (खाया)
अविधिसे ग्रहण किया और अविधिसे भुक्त (खाया)

ये चार भांगा में से पहला भांगावाला आहार इस आगार में कल्पता है। शेष तीन भांगा का आहार कल्पता नही है।

तथा ये आगार एकाशन - एकलठाणा - आयंबिल नीवि उपवास छट्ठ और अट्ठम तक के प्रत्याख्यान में होता है । इसके उपरान्त वाले दशभक्तादि (चार उपवास आदि) प्रत्याख्यानों से नही होता है । तथा इस आगार के विषय की अन्य जानकारी सिद्धान्त के द्वारा जानने योग्य है।

११. चोलपटागारेणं:-वस्त्र पहनने पर भी अविकारी रहनेवाले जितेन्द्रिय मुनिभगवन्त कुछेक प्रसंगों पर (कटिवस्त्र विगेरे का) वस्त्र त्याग का अभिग्रह करते है। ऐसे त्यागी जितेन्द्रियमुनि वस्त्र रहित बन बैठे हों और उस समय कोई गृहस्थ आजावे तो खड़े होकर चोलपट्टा धारण करे तो भी जितेन्द्रिय मुनि वस्त्र के अभिग्रह प्रत्याख्यान का भंग नही होता है । इसी कारण से चोलपट्टा गारेणं आगार रखागया है । (चोल = पुरुषचिन्ह उसे ढकने वाला पट्ट = वस्त्र , चोलपट्ट कहलाता है ।) ये आगार मुनि[२] को ही होता है = गृहस्थ को नही । [१]तथा इस प्रावरण प्रत्याख्यान में अन्न सह०-चोल०-मह०-सव्व०- ये पाँच आगार पूर्व की १७ वीं गाथा में कहे गये हैं । अतः संभव है कि ये अभिग्रह एकाशनादि के विना अलग से भी ग्रहण कर सकते हैं । और प्रत्याख्यान में पांगुरणसहियं पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं इत्यादि आलापक उच्चारे जाते हैं ।

अतः साध्वी को ये आगार नही होता है।

अवतरण:-इस गाथा में १३-१४-१५ व १६ इन चार आगारों का अर्थ दर्शाया गया है।

खरडिय लूहिय डोवा-इ लेव संसट्ठ डुच्च मंडाई ।
उक्खिवत्त पिंड विगई -ण मक्खियं अंगुलीहिं मणा ॥२७॥

१. यह आगार श्रावक को एकाशनादि पच्चक्खाण में उच्चराते है। पच्चक्खाण पाठ खंडित न हो इस लिए है। लेकिन श्रावक को भी होता है, ऐसे कारण से नही (धर्म सं. वृति।)

२. प्रश्न : - ये आगार वर्तमान काल में उच्चरने में क्यों नही आता है ?

उत्तर :- वर्तमान काल में वस्त्र प्रत्याख्यान का अभाव है। और प्राचीन काल में कुछेक जितेन्द्रमुनि को ही ये आगार उच्चरवाया जाता था। अतः ये आगार सदैव के लिए संबंध वाला नही है, ऐसा लगता है, तथा साध्वी सदैव वस्त्रधारी ही होती है । अतः साध्वी को ये आगार नही होता है ।) मुनि को ही होता है ।

शब्दार्थ :- **खरडिय** = लिप्त, लेपायेली, **लूहिय** = पूँछी हुई , साफ की हुई, **डोव आइ** =चमच विगेरे, **लेव** = लेवालेवेण आगार, **संसट्ठ** = संसृष्ठ, मिश्रित गृहस्थने मिश्रित किया, गिहत्थ संसट्ठेण आगार, **डुच्च** = सब्जि, **मंडाइ** = पूड़े तथा रोटी विगेरे, **उक्खित्त** = उत्क्षिप्त, उठा ली हो, और उक्खित्थविवेगेणं आगार, **पिंडविगइण** = पिंडविगइ से, **मक्खियं** = मसली हुई और पडुच्च मक्खि एणं आगार, **अंगुलीहिं**= अँगुलियों के द्वारा, **मणा** = किंचित्, मनाक्,

गाथार्थ:- (अकल्पनीय द्रव्य से) लिप्त चम्मच विगेरे को पूंछ लीया हो, वह लेवालेवेणं आगार, सब्जि तथा रोटी विगेरे को गृहस्थने (विगइ से) मिश्रित किया (=स्पर्श की हो) वह गिहत्थसंसट्ठेण आगार, पिंडविगइ को उठा ली (=ले ली) हो, वह उक्खित्त विवेगेणं आगार और रोटी विगेरे को किंचित (विगइ से) मसली हो, वह पडुच्चमक्खिएणं आगार ||२७||

१३. लेवालेवेणं आगार :- आयंबिल व नीविमें न कल्पे वैसी विगइ से चमच लिप्त हो वह लेप और उसे पूंछ लेने से अलेप कहलाती है। फिर भी किंचित् अंश रहने के कारण लेपालेप गिनीजाती है । और वैसे लेपायेल चमच विगेरे से, अथवा लेपालेप भोजन मे से आहार लिया हो, फिर भी उसे वापरने पर भी प्रत्याख्यान का (आयंबिल तथा नीविका) भंग इस लेवालेवणं आगार के कारण नही गिना जाता है ।

१४. गिहत्थ संसट्ठेणं :- तथा शाक तथा करबा आदि को छमकल (वगारने) देने से तथा रोटी सोगरा को लेनेमें लेपी हुई हथेली घीसकर गृहस्थने आयंबिल में न कल्पे ऐसी विगइ द्वारा आहार, गृहस्थ ने अपने लिए किंचित् मिश्र कर रखा हो, इस प्रकार की विगइ के अल्पसपर्श वाले भोजन का ग्रहण करने से आयंबिल प्रत्याख्यान का भंग नही गिना जाता है, वह [1]गिहत्थसंसट्ठेणं आगार है। ये आगार मुनिओं के लिए है। तथा अकल्पनीय विगइ का

१. इस ग्रंथ में ये आगार भोजन बनाते समय गृहस्थने भोजनमें अपने लीए जान बुजकर पहलेसे जो मिश्रता की है। और दूसरे ग्रंथो में तो भोजन के पात्र में पहले से लेपी हुई हो और जिस को पूंछा भी ऐसी विगई से हुई मिश्रता कही है।

स्वाद स्पष्ट अनुभव में न हो तो इस आगार में आता है और यदि स्वाद का स्पष्ट अनुभव हो रहा है, ऐसा आहार ग्रहण करने पर आयंबिल का भंग होता है । तथा श्रावक यदि अल्पमिश्रित आहार भी आयंबिल में लेता है तो प्रत्याख्यान का भंग होता है । कारण कि श्रावक को तो भोजन सामग्री स्वयं के लिए ध्यान में रखकर बनाना है, और मुनिओं को तो अपने लिए नही बनाया गया निर्दोष भोजन श्रावकों के यहाँ से भिक्षावृति से ग्रहण करना है । अत इस आगार की छूट सिर्फ श्रावकों के लिए नही (फिर भी श्रावक आयंबिल के पच्चक्खाण में आगार के उच्चराने का ध्येय, मात्र पच्चक्खाण का आलापक खंडित न हो बस इतना ही है) ये अर्थ आयंबिल के लिए कहा है । और विगइ तथा नीवि के प्रत्याख्यान के अलग अर्थ आगे ३६ वी गाथा में कहा जाएगा ।

१५.उक्खित्त विवेगेणं :- रोटी ऊपर रखागया गूड़ विगेरे पिंड विगइ को (उक्खित्त=) उठा कर (विवेग=विविक्त) याने भिन्नकर लिया हो फिर भी पिंड विगइ का किंचित् अंश रह जाता है । वैसी रोटी विगेरे खाने पर आयंबिलादि प्रत्याख्यान का भंग न हो इस कारण से उक्खित्त विवेगेणं आगार रखा गया है । ये आगार भी मुनिके लिए है, श्रावकों के लिए नही । यहाँ अधिक ध्यान रखना है कि सर्वथा हटा न सकें ऐसी पिंडविगइ से मिश्रित भोजन से प्रत्याख्यान का भंग होता है ।

१६. पडुच्चमक्खिएणं :- रोटी को नरम करने के लिए नीवि में न कल्पे वैसी घी विगेरे विगइ को अंगुलि से घिसने में या किंचित् रोटी पर लगाकर मसलने में आता है। वैसी अल्प लेपवाली रोटी विगेरे भोजन वहोरने से नीवि का प्रत्याख्यान भंग न हो, अतः ये आगार रखने में आता है। (पडुच्च=प्रतीत्य याने (सर्वथा रुक्ष) अपेक्षा से मक्खिय म्रक्षित याने किंचित् विगइ से लिप्त करना ऐसा शब्दार्थ है) ये आगार नीवि के प्रत्याख्यान में ही सिर्फ मुनिके लिए कहा जाता है । तथा सूक्ष्म धारसे घी डालकर रोटी मसली हो तो वैसे भोजन से नीवि का प्रत्याख्यान का भंग होता है ।

***

अवतरण :- इस गाथा में पाणस्स (पानी) के ६ आगारों के अर्थ कहे जा रहे हैं ।

लेवाइं आयामाइ इयर सोवीर-मच्छमुसिणजलं ।
धोयण बहुल ससित्थं, उस्सैइम इयर सित्थविणा ॥२८॥

शब्दार्थ :- लेवाइं=लेपकृत, लेवेण वा आगार, आयामं=आचाम्ल, ओसामण, इयर=इतर, अलेपकृत अलेवेण वा आगार, सोवीरं=कॉजी, सोवीर, अच्छ=निर्मल, अच्छेण वा आगार, उसिण=उष्णं, गरम किया हुआ, उस्सेइम=उत्स्वेदिम, आटे का धोवन, धोयण=(चॉवल विगेरे का) धोवन, बहुल=बहुल, बहुलेवेण वा आगार, ससित्थ=दाने सहित, ससित्थेण वा आगार, इयर=उससे इतर, असित्थेण वा आगार, सित्थविणा=आटे का मिश्रण रहित जल,

गाथार्थ :- ओसामण विगेरे का पानी लेपकृत कहाजाता है । जिससे (उसकी छूटवाला) "लेवेण वा" आगार है । कांजी विगेरे अलेपकृत पानी है, अतः "अलेवेण वा आगार है । उष्ण जल निर्मल जल है, उसकी छूटवाला "अच्छेण वा " आगार है । चॉवल विगेरे का धोयण बहुल कहा जाता है, उसकी छूटवाला "बहुलेवेण वा" आगार है । आटे का धोवन ससित्थ (दाने वाला)होता है, उसकी छूटवाला "ससित्थेण वा" आगार है । और उससे विपरित "असित्थेण वा" आगार है । ॥२८॥

भावार्थ:-

१७. लेवेण वा :- तिविहार के प्रत्याख्यान में (अशन-पान-खादिम स्वादिम इन ४ प्रकार के आहार में से) मात्र पानी ही कल्पता है । और शेष तीन आहार का त्याग होता है। यदि कभी कभार शुध्द उष्ण जल न मिले और [१]ओसामण का पानी, खजुर [२]का, ईमली का, या द्राक्ष विगेरे का लेपकृत [३]पानी मिले कि जिसमें त्याग किये हुए पदार्थों के (याने अशन, खादिम व स्वादिम पदार्थों के) रजकण मिश्रित हों तो कारण युक्त ऐसा लेपकृत पानी पाने से (तिविहार उपवास के)प्रत्याख्यान का भंग नही है उसकी छूटवाला लेवेण वा आगार है। द्राक्षादि का पानी बर्तन में रखने से उसे चिकना -लेपवाला बनाता है,अतः उस बर्तन के पानी को शास्त्र में लेपकृत कहा है ।

१. सिजोये हुए अनाज का कण रहित डहोला न हो ऐसा नीतरा हुआ जल ।

२. गृहस्थद्वारा किये गये खजुर, द्राक्षादि का पानी, जब उसके कण नीचे स्थिर हो जाये,चबाने जैसा भाग न आवे वैसा नीतारा हुआ पानी लेनाकल्पता है, अथवा खजुरादि का जल बनाकर कपड़े से छान लिया हो, वैसा पानी नीतरे पानी रुप कल्पता है, ऐसा संभव है ।

१८. अलेवेण वा:- शुध्द जल के अभाव में (गाढ कारण से) कांजी नीतारा हुआ छास का पानी,इत्यादि अलेपकृत् जल पिने से तिविहार उपवासादि के प्रत्याख्यान का भंग न हो, इसके कारण "अलेवेण वा" आगार रखा गया है । कांजी विगेरे का पानी जिस बर्तन में रखा गया हो, उसे अलेप (चिकनाई विना का) रखता है,, अतः कांजी विगेरे के जल को अलेपकृत कहा गया है । (यहाँ अलेप अर्थात् अल्प लेप ऐसा अर्थ संभवित होता है)

१९. अच्छेण वा:- अच्छ=निर्मल उष्ण जल,जिस जल को तीन [1]बार उकाले लेकर सर्वथा अचित्त किया हो, जिसे पिने से तिविहार उपवासादि का भंग नही होता है,इसी कारण " अच्छेण वा " आगार कहा गया है ।(तिविहार उपवास में हो सके वहाँ तक उष्ण जल ही पिना चाहिये । शेष पाँच आगार वाले जल अपवाद से गाढ कारण से पिना है । गृहस्थ को तो विशेषतः उष्ण जल ही पिना चाहिये । अतः शेष पाँच आगार गृहस्थों के लिए नही हैं, मुनि भगवन्तों के लिए ही है ।) तथा फलादिके धोवन अथवा फलादि के निर्मल [2]अचित्त जल भी इस आगार में गिने जाते है ।

२०. बहुलेवेण वा:- तिल का धोवण तथा तंदूल का धोवण विगेरे बहुलजल कहलाता है, वैसा बहुलजल पीने से प्रत्याख्यान का भंग न हो इस कारण से "बहुलेवेण वा " आगार रखा गया है ।

२१. ससित्थेण वा:- सित्थ=अनाज का दाना उससे (स=)सहित जो जल वह ससित्थ जल कहलाता है । याने सिजोये हुए अनाज के दानो का नरम भाग रह गया हो वैसा ओसामण विगेरे जल पिने से , तथा तिल का धोवण, चॉवल का धोवण, विगेरे में तिल विगेरे का दाना रह गया हो वैसा पानी पीने से प्रत्याख्यान का भंग न हो, इस कारण से

---

१. अच्छमुष्णजलमुत्कालितमन्यदपि निर्मलं अवचूरी विगेरे के पाठ में उष्णजल के अलावा भी अन्य निर्मल जल कहे गये हैं और ज्ञान विमलसूरि कृत बालावबोध में फलादि के धोवण को इसमे गिना है। इसलिए यहाँ फलके जल को भी "अच्छेण वा" आगार में कहा है ।

२. कच्चा पाणी प्रायः करके कबहुत सचित और थोडा अचितऐसा मिश्र होता है। एक वार उबाला हुआ पाणी बहुत सचित है, दोवार उबाला हुआ बहुत अचित और अल्प सचित ऐसा मिश्रित है, और तीन उकाला वाला पाणी सर्वथा अचित होता है, इस लिए व्रतधारी ओ को तीन उकाला वाला पाणी पीने योग्य है। जैसा तैसा उकाला हुआ पाणी व्रत में दूषित होता है ।

"ससित्थेण वा'' आगार रखा गया है तथा गाथा में दर्शाये गये उत्स्वेदिम शब्द का तात्पर्य इस प्रकार है । उत्स्वेदिम जल ससित्थ जल कहलाता है । याने मदिरादि बनाने के लिए पदार्थों के , आटे का जल वह पिष्टजल, और आटे से लिप्त हाथ से बर्तन विगेरे धोये हों वैसा पिष्ट धोवण कहलाता है इन दोनो ही प्रकार के जल में पदार्थ के रजकण आते हैं, वैसा जल पीने से प्रत्याख्यान का भंग न हो, इस कारण से ससित्थेण वा'' आगार रखा गया है।

२२. असित्थेण वाः- ऊपर दर्शाये गये ससित्थ जल को कपड़े से छान कर स्थूल रजकण रहित, जिसमें दाना न हो, वही ''असित्थेण ''जल कहलाता है । वैसा जल पीने से प्रत्याख्यान का भंग न हो, इस कारण असित्थेण वा आगार रखा गया है ।

(असित्थ याने सर्वथा सित्थ का अभाव नही, लेकिन अल्पसित्थ ऐसा अर्थ संभवित लगता है)

यहाँ १६ से २२ तक के छ आगारो में वा शब्द का प्रयोग है, वह छ आगारों में प्रतिपक्षि दो दो आगारों की समानता दर्शाता है । वो इस प्रकार - जैसा कि-

अलेवेण वा आगार से याने लेप रहित जल से प्रत्याख्यान भंग नही होता है । वैसे ही लेवेण वा आगार से याने लेप वाले जल से प्रत्याख्यान भंग नही होता है ।

इसी तरह (अच्छेण वा=) निर्मल जल द्वारा प्रत्याख्यान का भंग नही होता है ।

(बहुलेवेण वा=) बहुल जल द्वारा प्रत्याख्यान का भंग नही होत है ।

इसी तरह (असित्थेण वा=) असित्थ जल द्वारा प्रत्याख्यान का भंग नही होता है ।

(ससित्थेण वा=) ससित्थ जल द्वारा प्रत्याख्यान का भंग नही होता है ।

=इस प्रकार वा शब्द से यहाँ प्रतिपक्षी आगारों की अविशेषता दर्शायी है ।

इति ४ था आगार द्वारम्

***

अवतरणः- इस गाथा में ५ वॉ द्वार, ६ भक्ष्य विगई के २१ भेद तथा ४ अभक्ष्य विगई के १२ भेद, संख्या द्वारा दर्शाये जा रहे हैं ।

पण चउ चउ चउ दु दुविह , छ भक्ख दुध्धाइ विगइ इगवीसं ।
ति दु ति चउविह अभक्खा, चउ महुमाई विगइबार ॥२१॥

शब्दार्थः- गाथार्थ के अनुसार सुगम है ।

गाथार्थः- ५-४-४-४-२ और २ भेद इस प्रकार दूध विगरे छ भक्ष्य विगई के २१ भेद हैं, और मधु विगेरे चार अभक्ष्य विगई के अनुक्रमसे ३-२-३ और ४ कुल १२ भेद हैं ।

भावार्थ सुगम है, विगई के उत्तर भेद इस प्रकार हैं ।

भक्ष्य विगई		**अभक्ष्य विगई**	
दूध के	५ भेद	मधु (शहद)	३ भेद
दहि के	४ भेद	मदिरा	२ भेद
घी(घृत)के	४ भेद	मांस के	३ भेद
तेल के	४ भेद	मक्खन के	४ भेद
गुड़ के	२ भेद		**१२** अभक्ष्य विगई कुल
पकवान्न के	२ भेद		
२१ भक्ष्य विगइ			

इस प्रकार भक्ष्य -अभक्ष्य विगई के उत्तरभेद कुल ३३ संख्या से कहने के बाद भेदों का वर्णन आगे की गाथाओं में किया जायेगा ।

जिसके आहार से (भक्षण से) इन्द्रियों तथा चित्तमें विकृति विकार (विषयवृत्ति) उत्पन्न होती है उसे विगइ-विकृति कहा जाता है ।

अवतरणः- इन दो गाथाओं में ६ भक्ष्य विगई के २१ भेदों के नाम दर्शाये गये हैं ।

खीर घय दहिय तिल्लं गुल पक्कन्नं छ भक्ख विगईओ ।

गो-महिसि-उट्टि-अय-एलगाण पण दुध्ध अह चउरो ॥३०॥

घय दहिया उट्टि विणा, तिल सरिसव अयसि लट्ट तिल्ल चऊ ।

दवगुड पिंड गुडा दो, पक्कन्नं तिल्ल घय तलियं ॥३१॥

शब्दार्थः- गुल=गुड़, पक्कन्नं=पकवान्न, महिसि=भेंस का, अय=बकरी का, एलगाण=गाडर का, पण=पाँच.

शब्दार्थः- उट्टि=ऊंटड़ी, अयसि=अलसि, लट्ट=कुसुम्भ (एक प्रकार का घास), द्रव=नरम, प्रवाही, पिंड=कठीन, तलियं=तला हुआ,

गाथार्थः- दूध घी दही-तेल-गुड़-और पकवान्न ये ६ भक्ष्य विगइ है। दूध ५ प्रकार का है, गाय-भेंस-बकरी-ऊंटड़ी और भेड़ का, विगई मे गिना जाता है। तथा चार प्रकार का घी (घृत) तथा दहि ऊंटडी के विना जानना। तथा तिल-सरसव-अलसी-और कुसुंबी के घास का तेल, ये चार प्रकार का तेल (विगई रुप) है। द्रवगुड़ और पिंडगुड़ दो प्रकार का गुड़ विगइ रुप है। और तेल व घी में तला हुआ पकवान्न दो प्रकार का विगई रुप है। ॥३१॥

भावार्थः- दूध के पाँच प्रकार है, लेकिन घी और दहि चार प्रकार का ही है, कारण कि ऊंटड़ी के दूध का घी व दहि नही बनता है। तथा स्त्री विगेरे के दूध को विगई तरीके नही गिना है। ऊपर चार प्रकार के तेल के अलावा अनेक प्रकार का तेल भी है, जैसे कि एरंडि का, सोयाबिन का,मुंगफली का, कपासिये का, इत्यादि लेकिन इन्हे विगई तरीके नही माना है, फिर भी तेल को लेपकृत [1]मानना चाहिये। (जिससे आयंबिल में उसका भी त्याग होता है। तथा विगइ रहित तेल के लेप से लेवालेवेणं आगार रखाना चाहिये।) इस प्रकार गाथा में ६ भक्ष्य विगइ के २१ उत्तर भेदों का स्वरुप दर्शाया गया है। यहाँ ग्रंथकार प्रसंगवत् अभक्ष्य विगई के उत्तर भेदों से पूर्व छ विगई के ३० नीवियाते याने विगई अविगई होती है उसका स्वरुप दर्शा रहे हैं।

अवतरणः- ६ भक्ष्य विगई विकृति स्वभाववाली है। जिस रीत से विकृत स्वभाव अविकृत स्वभाववाला बनता है, उसे निर्विकृत (नीवियाता) कहाजाता है। इस गाथा में दूध विगई के पूनीवियाते दर्शाये गये हैं।

पयसाडि-खीर-पेया-बलेहि-दुध्धट्टि दुध्धविगइ गया।
दक्ख बहु अप्पतंदुल तच्चुन्नंबिल सहियदुध्धे ॥३२॥

शब्दार्थः- पयसाडि=पयःशाटी, विगईगया=विकृतिगत, नीवियाता, दक्ख=द्राक्ष, तच्चुन्न=उसका (तंदुल) चूर्ण, अंबिल=खटाई,

१. शेषतैलानि तु न विकृतयः लेपकृतानि तु भवन्ति (इति० धर्म० सं० वृत्ति० वचनात्) तथा इसी भाष्य की ३८ वीं गाथा में इन तैलों को लेपकृत गिना है।

गाथार्थः- (१) द्राक्ष सहित उकाला हुआ दूध (प्रायः बासुंदी उसे) पयःशाटी कहा जाता है। (२)अधिक तंदूल के साथ उबाला हुआ दूध [१]खीर कहलाता है।(३)अल्प तंदूल के साथ उबाला हुआ दूध पेया[२] कहलाता है । (४)तंदूल के चूर्ण के साथ उबाला हुआ दूध अवलेहिका कहलाता है । और (५) खट्टे पदार्थों के साथ उबाला हुआ दूध [३]दुग्धाटी कहलाता है ।

(इस प्रकार पाँच प्रकार से पदार्थो के साथ रांधा हुआ दूध अविगइ=नीवियाते गिने जाते हैं) ये नीवियाते उपधान में नीवि के प्रत्याख्यान में कल्पते हैं, अन्य नीवि में (उपधान सिवाय) नही कल्पते हैं ।

भावार्थ :- गाथा में दर्शाये गये सहियदुध्धे ये पद''दक्ख'' इत्यादि प्रत्येक शब्द के साथ संबंधवाला है, और तंदूल ये पद 'बहु' और 'अप्प' इन दो शब्द के साथ संबंधवाला है ।

अवतरण :-इस गाथा में घृत व दहि विगई के पाँच निवियाते दर्शाये गये हैं ।

निब्भंजण-वीसंदण-पक्कोसहितरिय-किट्टि-पक्कघयं ।
दहिए करंब-सिहरिणि-सलवणदहि घोल-घोलवडा ॥३३॥

* वर्तमान में बासुंदि दूध को उबालकर ही बनाई जाती है, इसलिए जिस प्रकार नीवियाते में दूध पाक द्रष्टिगोचर होता है वैसे बासुंदि नही होती है । कारण कि अन्य द्रव्यो को संयोग वीना विकृति द्रव्य निर्विकृत नही बनते हैं । इस प्रकार का भावार्थ ३७ वीं गाथा में कहा गया भावार्थ भी हेतुरुप लगता है ।

१. वर्तमान काल में कितनेक तो सिजोये हुए चाँवल दूध में डालकर, और कितनेक चाँवल दूध में डालकर खीर बनाते हैं । ये खीर दूध पाक जितनी जाड़ीनही, लेकिन अल्प जाड़ी,(गाढी)है, अपने देश की पध्धति अनुसार बनाते हैं ।

२.पेया को प्रवचन सारोध्धार वृ त्ति में दूध की काँजी (तरी) तरीके बताई है । तथा वर्तमान में जिसे दूधपाक कहा जाता है, उसे ही पेया कहा गया है। पेया चाँवल दूध में डालकर उसे उबालकर घट (जाड़ा) बनाया जाता है ।

३. कितनेक आचार्य दुग्धाटि को बहलिका कहते हैं, जोकि प्राय तुरंत बीआयेली (ब्यांयी) भेंस विगेरे के दूध की बनती है, जिसे "बरी" कहा जाता है ।

शब्दार्थ :- निब्भंजण=निर्भंजन घृत, विसंदण=विस्पंदन घृत, पक्क=पकाई गयी, ओसही=औषधि, तरिय=तरी, पक्कघयं=पकायाहुआ घृत, दहिए=दहि में , सिहरिणि=शिखंड, घोल=छानाहुआ दहि.

गाथार्थ :- [1]पक्कवान तरलेने के बाद कडाई में बचा हुआ घृत उसे निर्भंजन तथा दहि की तरी और आटा इन दो को मिलाकर बनाइ हुइ कुलेर भो उसे विस्पंदन[1], औषधि (=वनस्पति विशेष) मिलाकर गरम किये हुए घृत की तरी उसे पक्वौषधि तरित [4]घृतको गरम करने पर उस पर आने वाला मेल उसे किट्टि, [5]और आँवले विगेरे औषधि डालकर पकाया हुआ घृत उसे पक्वघृत कहा जाता है (इस प्रकार घृत के पाँच निवियाते (=पाँच प्रकार का अविकृत घी) निवि में कल्पते हैं । [1]तथा सिझे हुए चॉवल मिश्रित दहि उसे करम्ब, [2]दहिका पानी निकालने के बाद शेष मावे को अथवा दहि में शक्कर मिलाकर वस्त्र से छानकर पानी निकाला हुआ शेष दहि उसे शिखरिणि शिखंड, [3]नमक डालकर मथा हुआ दहि उसे [3]सलवण दहि, [4]वस्त्रसे छाना हुआ दहि उसे घोल और उस घोल में वडे डाले हों उसे घोलवडा अथवा घोल डालकर बनाये हुए वडे [5]उसे भी घोलवडा कहा जाता है । (निवि के प्रत्याख्यान में ये दहि के पाँच निवियाते (= दहि की पाँच अविगई) निवि के प्रत्याख्यान में कल्पतें हैं) ।

भावार्थ :- घृत तथा दहि के पाँच निवियाते भी प्राय : योग वहन करने वाले मुनि भगवन्तो को तथा श्रावकों को उपधान में नीवि के प्रत्याख्यान मे कल्पतें हैं । अन्य नीवि में नही कल्पते है ।

अवतरण :- इस गाथा में तेल व गुड के पाँच पाँच नीवियाते दर्शाये गये हैं ।

तिलकुट्टि निब्भंजण पकतलि पक्कुसहितरिय तिल्लमली ।
सक्कर गुलवाणय, पाय खंड अध्धकढि इक्खुरसो ॥३४॥

शब्दार्थ :- अर्थ के अनुसार सुगम है ।

---

१. सिध्धान्त में अर्ध जले हुए घृत में तंदूल डालकर बनाये हुए भोजन विशेष को विस्पंदन कहा गया है।

१. शास्त्र में इसे व्याजिका खाट कहा गया है । अत: व्यवहार भाषा में इसे रायता अथवा दहिका मठ्ठा कहा जाता है । वह यही है, और उसमें सांगरी विगेरे का प्रयोग न किया हो फिरभी नीवियाता कहा जाता है ।

गाथार्थ :- तिलकुट्टि निर्भंजन पक़्वतेल पक़्वौषधितरित और तेल का मेल, ये तेल के पॉंच नीवियाते हैं । तथा साकर गुडपानी, पक्वगुड, शक्क़र और आधा उकालाहुआ गन्ने का रस ये पॉंच गुड के नीवियाते हैं । ॥३४॥

भावार्थ :- यहॉं पर तेल के नीवियाते में तिलकुट्टि और घृत के नीवियाते में विस्पंदन=इन दो नामों के अलावा शेष ४ नाम दोनो में समान हैं । फिरभी यहॉं तेल कि पॉंच नीवियाते के अर्थ कहे जा रहे हैं वो इस प्रकार हैं ।

१. तिलकुट्टि :- तिल व गुड को ऊंखली में ,(ख़ांडणीदस्त में या मिक्सर में पिसकर) एक रस बनाया जाता है उसे तिलकुट्टि कहतें हैं । अथवा तिलवटी [1](तिलपपडी) कहते हैं ।

२. निर्भंजन :- पकवान्न तलने बाद के बचा हुआ जला हुआ तेल उसे निर्भंजन कहते हैं ।

३. पक्व़तेल :- औषधि मिश्रित कर पकाया हुआ तेल पक़्वतेल कहलाता है ।

४. पक़्वौषधितरित :-औषधि मिश्रित कर गर्म करने पर (=उकालने पर) ऊपर जो तरी आती है उसे पक़्वौषधि तरित तेल कहते हैं ।

५. उष्णतेल के ऊपर जो मैल आता है उसे मली अथवा किट्टी कहते हैं ।

(इति तैल के पॉंच नीवियाते)

गुड के पॉंच नीवियाते इस प्रकार हैं .।

१. साकर :- जो कंकड के दाने के समान होते हैं जिसे मिश्री कहते हैं, उसे सालर कहा जाता है ।

---

१. तिल को खांडकर पश्चात उसमें ऊपर से गुड डालने में आता है,उसे तिल की साणी कहा जाता है, तथा तिल (आखे) में गुड (कच्चा) मिलाया जाता है उसे तिलपपडी कहा जाता है। इन दोनो में कच्चा गुड आता है अतः नीवियाते में नही कल्पते हैं । लेकिन गुड की चासनी लेकर बनायी हुई तिलपापडी नीवियाते में कल्पती है । (२) खट्टे पूडले खाने के लिए गुडकापानी उकालने में आता है जिसको गलमाण बोलते हैं।

२. गुलपानक :- उकाला हुआ गुड का पानी उसे गुलपानक या [1]गुलवाणी कहते हैं ।

३. पक्वगुड :-गरम किया हुआ गुड , पक्वगुड कहलाता है ।

४.शक्कर :- जिसका लेप खाजे विगेरे के ऊपर किया जाता है, (अर्थात गुड की चासनी) व सर्व प्रकार की शक्कर उसे शक्कर=खांड कहते हैं ।

५. [2]अर्धक्वथित ईक्षुरस[2]:- गन्ने के रस को गर्म करने पर आधे भाग जितना शेष रहता है उसे अर्धक्वथित ईक्षुरस कहते हैं । संपूर्ण उकालने पर गुड बनता है, अतः अर्धक्वथित कहा है । इस प्रकार ये पाँच नीवियाते गुड के हैं ।

अवतरण:- इस गाथा में पक्कवान्न विगई याने कडाइ विगई के पाँच नीवियाते दर्शाये गये हैं।

पूरिय तवपूआ बी-अपूअ तन्नेह तुरियघाणाई ।
गुलहाणी जललप्पसि, अ पंचमो पुत्तिकय पूओ ॥३५॥

शब्दार्थ :- पूरिय = पूराय (वैसा), तव=तवी-कड़ाई, पूआ=पूरी, पूड़ा, बीअपूअ=दूसरी-पूरी-पूड़ा, तन्नेह=तत्स्नेह, उसी घृत (में) अथवा उसी तेल (में तला हुआ), तुरिय=चोथा, घाण=घाण, गुलहाणी=गुल धाणी, जललप्पसि=जल लापसी, पंचमो=पांच वा निविथाता पुत्तिकय पोतकृत(पोता देकर बनाई हुई)

गाथार्थ:- तवी पूराय वैसी (तवी के बराबर) प्रथम पूरी, दूसरी पूरी, तथा उसी तेलादिक में तला हुआ चोथा आदि घाणं, गुलधाणी, जललापसी, और पोता दिया हुई पुरी पांचवाँ नीवियाता है। ॥३५ ॥

---

१. खट्टे पूडले खानेके लिए गुडका पाणी उकालने में आता है जिसको गलमाणा बोलते है ।

२. संपूर्ण गन्ना का रस को उबालने से गुड बन जाता है। इसलिए अर्थक्वथित कहा है।

३. प्रश्न :- अर्ध उकाला हुआ ईक्षुरस अविगई होता है, फिर तो संपूर्ण उकालाहुआ ईक्षुरस का बना हुआ गुड़ तो अविगई ही होता है, फिर उसे विगई क्यों कहा ?

उत्तर:- ईक्षुरस से बनाहुआ गुड़ तो ईक्षुरस से द्रव्यान्तर (=अन्यद्रव्य) द्रव्य है। अतः गुड़ में तो में गुड़ के अनुसरने वाले याने विगईभाव उत्पन्न हुए हैं। उस में द्रव्यान्तरोत्पत्ति (भिन्न द्रव्य का उत्पन्न होना) यही हेतु लगता है। उस समय प्रथम के ईक्षुरसका विगई भाव तो संपूर्ण नष्ट हुआ लगता है। (इत्यादि यथायोग्य विचार करना)

भावार्थ :- कड़ाई अथवा तवी में तलकर बन सके वैसे भोजन को यहाँ पक्कवान्न तरीके गिनना लेकिन लोक प्रसिद्ध खाजे, तारफेणी, घेवर, इत्यादि पांच पक्वान्न हैं, इसके अलावा भी बहुत सारी वस्तुऐं जैसे भुजिये, पूरी, तले हुए पापड़, पापड़ी, विगेरे पक्वान्न में आते हैं। तथा ये सारी बस्तुएँ कड़ाई में घृत-तेल विगेरे विगई अन्दर तलकर बनाई जाती है, अतः कडाई (कटाह) विगई है। घृत-तेल में तली हुई दो प्रकार की कहलाती है। ये दोनो प्रकार की कडाह विगइ, पक्वान्न विगइ स्वरुप है। फिर वो अविगई स्वरुप (नीवियाता स्वरुप) कैसे होती है? उसके पाँच भेद याने पक्वान्न विगइ के पाँच नीवियाते का स्वरुप-निम्न प्रकार से है।

१.द्वितीया पूप :- तवी या कडाई का संपूर्ण आवरण करे वैसी प्रथम पूरी तलने के बाद की दूसरी, तीसरी, चौथी आदि पूरी या पूडे=याने प्रथम पूरी विगई में आती है उसके बाद की तली हुई सर्व पूरीयाँ विगई अविगई=नीवियाते में आती है, उसे द्वितीय पूय नीवियाता कहाजाता है। (पुनः कडाई में घृत या तेल पूरा हो तो पूनः प्रथम बड़ीपुरी तलनी चाहिये)

२. तत्स्नेह चतुर्थादिघाण :- प्रथम जो घृत या तेल कड़ाई में पूरा हो (बीच में घृत-तेल दूसरा नही पूरना) उसी घृत-तेल में छोटी पूरीओं के तीन घाण तर लेने के बाद, चोथा, पाँचवा इत्यादि सर्व घाण की पोरीयाँ अविगई-नीवियाते में आती है, प्रथम तीन घाण की पुरीयाँ विगई मे आती है, अतः चतुर्थादि सर्व घाण की पुरीयाँ उसे तत्स्नेह चतुर्थादिघाण नाम का दूसरा नीवियाता कहा जाता है।

३. गुड़धाणी :- गुड़ व धाणी (=जुवार-बाजरी-मक्काई आदि को सेक कर बनाई जाती है) का मिश्रण उसे गुड़धाणी नीवियाता कहा जाता है। यदि कच्चे गुड़ के साथ धाणी का मिश्रण किया हो तो विगइ में गिना जाता है, लेकिन गुड़ की चासनी लेकर धाणी का मिश्रण किया हो वह गुड़धाणी नीवियाता कहलाती है। (विशेषतः जुवार-बाजरी की धाणी व गुड़ के मिश्रण से लड्डु विगेरे बनाये जाते है।)

४. जल लापसी नीवियाता:- पकवान्न बनने के बाद बचा हुआ घी-कड़ाई से निकाल लेने के बाद उसपर लगी चिकास को दूर करने के लिए गेहूँ का दलिया सेककर-गुड़ का पानी डालकर लापसी बनाई जाती है उसे, या आटा सेककर कंसार बनाया जाता है उसे जललापसी चोथा नीवियाता कहा जाता है। या कारी कड़ाई में वर्तमान काल में या आधुनिक विधिसे बनाये जाने वाले पदार्थ सीरा, कसार, लापसी, सुखडी विगेरे-जललापसी

विगेरे नीवियाते में गीने जाते है। चूटे ऊपर से नीचे ऊतारने के बाद एक बूद भी घी डालने पर नीवियाते में काल नही आते हैं।

५. पोतकृत पूड़ला :-तवी में से जला हुआ घी निकालने बाद उसी तवी में पूड़ी अथवा खट्टी पूड़ी घी या तेल का पोता देकर बनाने में आती है उसे पोतकृत पूड़ला कहा जाता है। अथवा कोरी तवी या तवे में वर्तमान मे बनाये जाने वाले खट्टे-मीठे पूड़े - पूड़ीयाँ - पोतकृत पूड़ले रुप पाँचवा नीवियाता है। चूल्हे से तवी नीचे ऊतारने के बाद उसमे घी की एक बूंद भी नही डालना इस प्रकार 'पाँच नीवियाते पकवान्न विगई के हैं।

'**प्रश्न:**- कडाह विगई (पकवान्न के) अंतिम तीन नीवियाते में तलने की क्रिया नही होती है। तो उन्हे कड़ाह विगई के नीवियाते में क्यों गिनना ? अर्थात पकवान्न याने तरी हुऐ पदार्थ येबात इन तीन निव्रियातों में नही घटती।?

उत्तर :- यहाँ पकवान्न याने 'घी अथवा तेल विगेरे स्नेह (चीकटे) द्रव्यो में तरीहुई या सेकीहुई वस्तु 'ऐसा अर्थ घटित है। और कडाह याने केवल कडाही ही नही लेकिन कड़ाई के साथर तवी तवा तपेली इत्यादि भी समजना। अतः घी अथवा तेल में तली हुई या सेकीहुई वस्तुएँ -उसे पक्वान्न विगई कहाजाता है, और वही वस्तु कड़ाई विगेरे में तरी या सेकी जाते है, तो उसे दूसरे नाम से कड़ाह विगई कहा जाता है।

अथवा घी और तेलादि स्निग्ध द्रव्यो के अवगाहने डबोने से (जो वस्तुएँ पक्व होती है उसे अवगाहिम कहा जाता है, ये भी पकवान्न विगई का ही नाम है। इस अर्थ के आधार पर अंतिम तीन नीवियाते के पदार्थ डूबे वैसे घी तेल में नही तराते है, फिर भी चूस सके वैसे घी-तेक में तरे या सेके जाते है। इसीकारण उचित मात्रा में घी डालकर-बनाई रोटी को पकवान्न नीवियाते में ही गिना जाता है। चातुर्मासी प्रतिक्रमण में पकवान्न का काल कहने में आता है। वहा पकवान्ने शब्दसे बहुत ही तेलमें तली हुइ चीजोका काल कहा जाता है ऐसा नही है। लेकिन शेकने योग्य चीजो को पकवान्न मानकर उनका काल कहा जाता है । और पोतादिया पूडला को भी पूडला शेका गया ऐसा नही कहते है। लेकिन पूडले तले है ऐसा कहते है। इसलिए डूबे ऐसे घी में तला और अल्प घी से तला हुआ या शेका हुआ ऐसा बोलने की पध्धति है। इस तरह ये तिनो निवियाते पकवान्न के निवियाते है।

संक्षेप में ६ भक्ष्य विगई के ३० नीवियाते

	दूधके ५	तेल के ५	दहि के ५
१.	पयः शाटी	१. तिलकुट्टी	१. करंब
२.	रवीर	२. निर्भंजन	२. शिखरिणी
३.	पेया	३. पक्वतेल	३. सलवणदधि
४.	अवलेहिका	४. पक्वौषधितरित	४. घोल
५.	दूग्धाटी	५. तिलमलि	५. घोलवड़ा

	घृत के ५	गुड़ के ५	पकवान्न के ५
१.	निर्भंजन	१. साकर	१. द्वितीयपूड़ला
२.	विस्पंदन	२. गुलवाणी	२. चतुर्थ घाणादि
३.	पक्वौषधि तरित	३. पाकगुड़	३. गुड़ धाणी
४.	किट्टि	४. शक्कर	४. जल लापसी
५.	पक्वघृत	५. अर्धक्वथित ईक्षुरस	५. पोतकृत पूड़लग

इस प्रकार सामान्यतः ३० नीवियातों का वर्णन किया , लेकिन विगई के रुपान्तर से होने वाले बहुतसारे नीवियाते हैं। जिनका विस्तार अन्यग्रंथों से समजना ।

अवतरण :- 'गिहत्थ संसट्ठेणं' इस आगार से पूर्व में आयंबिल में कल्पनीय द्रव्यों के बारे में कहा गया है। अब इस गाथा में इसी आगार के द्धारा नीवि तथा विगई के प्रत्याख्यान में कल्पनीय गृहस्थ संसृष्ट द्रव्य कौन से हैं? उन्हे दर्शाया गया है।

दुध्ध दही चउरंगुल, दवगुल घय तिल्ल एग भत्तुवरिं।
पिंडगुडमक्खणाणं, अददामलयं च संसट्ठं ॥३६॥

शब्दार्थ:- दवगुल=नरमगुड़, द्रवगुड़, एग=एक अंगुल, भत्त उवरिऽ=भोजन के ऊपर, अद्दामलयं=आर्दामलक, पीलु के, वा=शीण के महोर, संसट्ठ=संसृष्ट, मिश्र,

गाथार्थ: - भोजन के ऊपर दूध और दहि चार अंगुल (चढ़ा हुआ हो) वहाँ तक संसृष्ट और नरम गुड़, नरम घी और तेल एक अंगुल ऊपर चढ़ा हो वहाँ तक संसृष्ट, और ठोस गुड़ तथा मक्खन[1] पीलु या शीणवृक्षके महोर के समान कण-खंड वाला हो वहाँ तक संसृष्ट (हो तो नीवि में कल्पते हैं, अधिक संसृष्ट् होने पर नही कल्पते हैं।)

भावार्थ:- यदि गृहस्थ अपने लिये चाँवल को दूध या दहि से संसृष्ट याने चाँवल के ऊपर चार अंगुल प्रमाण दूध, या दहि चढ़े इस प्रकार दूध या दहि डाल के चाँवल विगेरे को मिश्रित करके रखे तो वह दूध या दहि संसृष्ट द्रव्य कहलाता है। और वह मुनि को नीवि तथा विगई के प्रत्याख्यान में कल्पता है। लेकिन चार अंगुल से किंचित भी अधिक चढ़ा हो तो विगई में कल्पता है। नीवि में नही कल्पता है।

इस प्रकार द्रव गुड़ (नरम गुड़) घी और तेल चाँवल विगेरे के ऊपर एक अंगुल चढ़ा हुआ होतो ये तीनो ही संसृष्ट द्रव्य नीवियाते में आते है।

तथा कठोर गुड़ को चुरमा विगेरे में मिश्रित किया हो, या कठोर मक्खन को चाँवल विगेरे में मिश्रित किया हो, और ये संपूर्णतया एक रसन हुए हों, लेकिन गुड़ और मक्खन के पीलु या शीण वृक्षके महोर के समान याने छोटे छोटे कुछेक कण चुरमा या चाँवल में रह गये हों फिर भी गुड़ और मक्खन संसृष्ट द्रव्य कहलाते हैं। और ये नीवियाते गिने जाते हैं। यदि बड़े बड़े कण रह गये हों तो दोनो ही द्रव्य द्रव्य विगइ में गिणने से नीवि और विगइ के प्रत्याख्यान में नही कल्पते हैं।

इस प्रकार ये ७ विगई याँ उपरोक्त विधि अनुसार संसृष्ट द्रव्य और गिहत्थसंसट्ठेणं आगार में आसकती है। लेकिन मक्खन विगई तो सर्वथा अभक्ष्य होने के कारण नीवियाती बनी हो फिरभी वहोरना कल्पती नही है।

***

अवतरण :- दूध विगेरे द्रव्य विकृत स्वभाव वाले हैं। फिरभी निर्विकृत स्वभाव वाले बनते है। तथा अन्य आचार्यो के अभिप्राय से उत्कृष्ट द्रव्यरुप नीवियाता किस प्रकार बनता है? जिसे इस गाथा में दर्शाया गया है।

---

१. यहाँ श्री ज्ञान विमलसूरि कृत बालावबोध में मक्खणाणं पद का अर्थ मसला हुआ (गुड़) किया है। तथा उसी पाठ की अवचूरि में तो पिंडगुड़ म्रक्षणयोः इस पद का द्विवचन अर्थ होने से पिंडगुड़ और मक्खन ऐसा अर्थ लगता है ।

दव्वहया विगई - गय पुणो तेण तं हयं दव्वं।
उध्धरिए तत्तंमि य, उक्किट्ठदव्वं इमं चन्ने ॥३७॥

शब्दार्थ:- दव्व=अन्य द्रव्यों से, हया=हनायी हुई, विगइ=विगइ, विगइगय=विकृतिगत=याने नीवियाता, पुणो=और तेण=इस कारण से, तं=वह, हयंदव्वं=हतद्रव्य, य=तथा (पकवान्न), उध्धरिए= उध्धरने के पश्चात, तत=उध्धृत घी विगेरे, तंमि=उसके विषयमे (उसमें, च=और, इमं=इसे (इस नीवियाते को), अन्ने=अन्य आचार्य, उक्किट्ठ दव्वं=उत्कृष्ट द्रव्य.

गाथार्थ :- अन्य द्रव्थों से हनायी हुई विगई विकृतिगत-अर्थात नीवियाता कहलाती है। और इस कारण से वह हना हुआ द्रव्य कहलाता है। तथा पकवान्न उध्धरने के बाद उध्धृत घी (बचा हुआ [1]घी) विगेरे से उसमें जो द्रव्य बनाने में आता है उसे भी नीवियाता कहा जाता है। और इस नीवियाता को अन्य आचार्य 'उत्कृष्ट द्रव्य' ऐसा नाम देते हैं।

भावार्थ :-इस गाथा के भावार्थ में ,इस गाथा की अवचूरि का अर्थ ही अक्षरस : कहा जा रहा है । यथा - (द्रव्यैः =याने)कलमशालि तंदूल आदि द्रव्यों से (हता=) भेदायी गयी दूध आदि विगई उसे ''विकृतिगत=(नीवियाता)कहा जाता है । और (तेण=)इस कारण से तंदूल आदि से हणाया हुआ दुध विगेरे द्रव्य ही कहा जाता है (परन्तु विगई नही, अतः नीवि के प्रत्याख्यानवाले को भी किसी न किसी प्रकार से कल्पता हैं ।

(इति प्रव० सारो० वृत्तिः)

१. प्रव० सारो० वृत्तिः में इस गाथा का अर्थ में गाथा में कहा गया तत्तंमि पदका चूल्हे पर तपता हुआ घी वगेरेमे ऐसा अर्थ करके उस मे बना हुआ द्रव्य को उत्कृष्ट द्रव्य और इसका निवियाता कितके आचार्यो मानते है लेकिन ये अर्थ गीता र्थो को मान्य नही है। गीतार्थ के अभिप्राय से चूल्हे उपरसे उतारकर घी ठंडा होने के बाद उस में जो कणिक्कादि मिलाते है तब ही परिपक्वता के अभाव से निवियाता गिना जाता है ऐसे जो नही हो तो परिपकव होने से विगई ही बन जाता है।

इस गाथा की व्याख्या हमने इस तरह की है, तबभी बुध्धिमानो को अपने ज्ञान के अनुसार दूसरी तरह भी व्याख्या कर सकते है।

तथा कडाई में से सुखडी विगेरे पकवान्न उध्धरने के बाद शेष घी विगेरे को चूल्हे से उतारने के बाद ठंडा होने पर उसमें कणिक्कादि मिलावे, उस समय वह कणिक्कादि से बना हुआ द्रव्य नीवियाता कहा जाता है । अन्य आचार्य इसे उत्कृष्ट द्रव्य कहते हैं । तथा इस गाथा का पाठान्तर इस प्रकार है ।

दव्वहया विगइगयं, विगई पुण तीइ तं हयं दव्वं । उध्धरिए तत्तंमी य, उक्किट्ठदव्वं इमं चन्ने ॥३७॥

इस गाथा के अर्थ के अनुसार- द्रव्य से (क्षीरान्न वत= खीर के-सदृश)हणाई हुई वस्तु नीवियाता बनती है । और विगई से द्रव्य हणाता है तो मोदक की तरह विगई बनता है । तथा तीन घाण तलने के बाद बचे हुए घी में पूरी -पूडले आदि जो तले जाते है उसे नीवियाता कहा जाता है , और इसे अन्य आचार्य उत्कृष्ट द्रव्य कहते हैं ॥३७॥ (इति अवचूरि अक्षरार्थ)

अवतरण :-पूर्व गाथाओं में नीवियाते तथा उत्कृष्ट द्रव्य के विषय में कहा गया, अब इस गाथा में सरसोत्तम द्रव्य के बारे में दर्शाया गया है । जिस द्रव्य को कारण से नीवि में कल्पनीय कहा है ।

तिल॰।क्कुलि वरसोला-इ, रायणंबाइ दक्खवाणाई ।
डोली तिल्लाई इय, सरसुत्तमदव्व लेवकडा ॥३८॥

शब्दार्थ :- गाथार्थ अनुसार सुगम हैं ।

गाथार्थ :- तिलपापडी वरसोला विगेरे, रायण और आम (केरी) विगेरे, द्राक्षपान विगेरे डोलिया और (अविगई) तेल विगेरे, सरसोत्तम द्रव्य और लेपकृत द्रव्य हैं । ॥३८॥

(१) तिलपापडी :- तिल को सेककर, गुड की चासनी में मिश्रित कर बनायी हुई=उसे तिलपापडी कहा जाता है। (लेकिन कच्चे तिल कच्चे गुड से बनायी हुई ऐसी तिल पापडी नही)

(२) वरसोला :- धागे में खोपरे, खारेक या शिंगोडे विगेरे पिरोकर माला (हार) रुप में बनाये हुए उसे वरसोला कहा जाता है ।

("वरसोलाइ" इस शब्द में प्रयोग रत "आदि" शब्द से) शक्कर के द्रव्य मिश्री-शक्कर-शक्कर पारे-,शक्कर के चने, मीठे काजु विगेरे, तथा अखरोट बादाम विगेरे सर्व प्रकार के मेवे विगेरे द्रव्य भी वरसोलाइ के आदि शब्द से आजाते हैं।

(३) द्राक्ष का पानी :-अचित्त किये हुए शक्कर से मिश्रित किये हुए रायण, आम विगेरे फल तथा द्राक्षका पानी, श्रीफल का पानी, तथा सर्व प्रकार के फलों के अंदर रहा हुआ अचित्त किया हुआ पानी विगेरे द्राक्षपानादि कहलाता है।

(४) डोलिया :- डोली याने महुडे के बीज जिसके तेल को डोलिया कहते हैं, तथा अन्य एरंडि का तेल, कुसुंभिये विगेरे का तेल (जिसे विगई नही गिना गया है) सरसुत्तम अथवा उत्तम द्रव्य कहलाता है। इन्हें लेपकृत द्रव्य भी कहा जाता है । (याने लेवालेवेण आगार के विषय वाले द्रव्य है। ये द्रव्य नीवि के प्रत्याख्यान में अपवाद मार्ग से (कारण मे)मुनि को कल्पनीय है। जिसे अगली गाथा में दर्शाया गया है ।

अवतरण :- पूर्व में कहे गये निविर्कृत द्रव्य, संसृष्ट द्रव्य और सरसोत्तम द्रव्य नीवि के प्रत्याख्यान में कब और किसे कल्पता है ? जिसे इस गाथा में दर्शाया गया है।

विगइगया संसट्ठा, उत्तमदव्वा य निव्विगइयंमि ।
कारणजायं मुत्तुं, कप्पंति न भुतुं जं वुत्तं ॥३९॥

शब्दार्थ :- विगइगया=विकृतिगत, नीवियाता, निव्विगइयंमि=नीवि में, कारणजायं=कारण उत्पन्न हुआ हो उसे, मुत्तुं=छोडकर, भुतुं=खाना, जं=जिस कारण से, वुत्तं=कहा है कि,

गाथार्थ :- नीवियाते (३० वीं गाथा के अनुसार) तथा ३६ वीं गाथा में कहे हुए संसृष्ट द्रव्य, और उत्तम द्रव्य (३८ वीं गाथा में दर्शाये गये) ये तीनो ही प्रकार के द्रव्य यद्यपि विगइ-विकृति रहित है। फिर भी नीवि के प्रत्याख्यान में कुछ कारण उत्पन्न हुआ हो, उस कारण को छोडकर शेष नीविओ में (खाना) भक्षण करना नही कल्पता है। तथा प्रकार के प्रबल (मुख्य) कारण विना ये द्रव्य नीवि में नही कल्पते हैं।(इस कारण से संबंधित सिध्धान्त की (निशिथ भाष्य की) गाथा आगे दर्शायी गयी है।)

भावार्थ :- यहाँ कारण के विषय में जानना है कि जो मुनि योगवहन करते हैं, परन्तु विशेष सामर्थ्य न हो या व लम्बे समय तक नीवि की तपश्चर्या चलती हो, अथवा जीवन पर्यन्त विगई का त्याग किया हो, उग्र तपस्वी हो, अथवा नीवि का तप करते हुए ग्लानमुनि, गुरु तथा अन्य मुनिओं की वैयावृत्य (कायिक सेवा) करने वाले हों, और सर्वथा नीरस द्रव्यों से अशक्ति आजाने के कारण वैयावृत्यादि में व्याघात होता हो, वैसे मुनिओं को गुरु की आज्ञा से नीवि में ये तीनो ही प्रकार से (नीवियाने, उत्तम द्रव्य, संसृष्ट द्रव्य) द्रव्य लेना कल्पता है। लेकिन जिह्वा की लोलुपता से इन द्रव्य को नीवियाते होते हुए भी लेना कल्पता नही है। कारण कि इन द्रव्यों को विकृति रहित कहें है। फिर भी सुस्वाद रहित तो नही कहे, और सर्वथा विकृति रहित भी नही हैं।

तपश्चर्या तो स्वादिष्ट आहार के त्याग से ही सार्थक होती है । तथा तपश्चर्या करके स्वादिष्ट आहार करना ये तपश्चर्या का लक्षण नही है। तपश्चर्या करने वाली आत्मा तो स्वादिष्ट आहार को त्याग करने वाला होता है, और तपस्वी का लक्ष्य तो सरस आहार को त्याग करने के तरफ होता है। फिर तथा प्रकार के तप में स्वादिष्ट आहार को स्थान कैसे हो सकता है?

तथा इन विगईयों के नीवियाता बनाने पर भी विगई याँ सर्वथा विकृतिरहित बन ही जाती है, ऐसी बात नही, जिसे आगे की गाथा में दर्शाया गया है ।

अवतरण :- पूर्व कथित तीनो ही प्रकार के द्रव्य निर्विकृतिक (विकृतिरहित) में गिनने पर भी नीवि के प्रत्याख्यान में क्यों नही कल्पते ? उसका कारण श्री निशिथ भाष्य की गाथा द्वारा कहा जारहा हैं ।

विगइं विगई भीओ, विगइगयं जो उ भुंजए सा ।
विगई विगइ सहावा, विगई विगइं बाला नेइ ॥४०॥

[1]अन्वय :- विगईभीओ जो साहू विगइं उ विगइगयं भुंजए । विगई विगइसहावा विगइ विगइं बला नेइ ॥४०॥ (तं साहूं इति शेषः)[3]

१.२. इस गाथा में 'विगइ' शब्द का प्रयोग अधिक बार हुआ है, जिससे शब्द व गाथा अर्थ स्पष्ट समज में आजावे इसलिए सर्व शब्दों के अर्थ के साथ का अन्वय भी विया गया है।

३. अर्थ के समय तं साहु ये पद अध्याहार से ग्रहण करना ।

[1]**शब्दार्थ :-** विगइं =विगई को, विगई=विगई (=दुर्गति अथवा असंयम), भीओ=भयभीत, विगइगयं=विकृतिगत को, निर्विकृतिको, नीवियाता को, जो=जो, उ= और (अथवा छंदपूर्तिके लिए), भुंजए=भक्षण करे, खाये, विगइ=विगई, विगइसहावा=विकृति के स्वभाव वाली, विगई= विगई, विगइं=दुर्गति में विगति में, बला=बतात्कार से, नेइ= ले जाती है।

गाथार्थ:- विगति से (याने दुर्गति से अथवा असंयम से) भयभीत साधु विगई का और निवीयातो का (तथा उपलक्षण से संसृष्ट द्रव्य, व उत्तमद्रव्यों का) भक्षण करता है, (उस साधु को) विगई तथा उपलक्षण से नीवियाते आदि तीनो ही प्रकार जे द्रव्य भी (विगई=)विकृति के (इन्द्रियों को विकार उपजाने के) स्वभाव वाले होते हैं। अतः वह (विगति स्वभाववाली) विगई विगति में (याने दुर्गति अथवा असंयम में) बलात्कार से ले जाती है।

(अर्थात बिना कारण से रसना के लालच से विगई का उपयोग करने वाले साधु को भी वह बलात्कार से दुर्गति में ले जाती है, तथा संयममार्ग से भी पतित करती है)

विशेषार्थ:- दूध दही आदि विगईयाँ जहाँ तक अन्य द्रव्यों से उपहत नही होती है (=हणाइ न हो) वहाँ तक वह निश्चित रुप से विकृति स्वभाव वाली होती है इतना ही नही अपितु उन विगईओ को अन्य द्रव्यो से तथा अग्नि आदि से उपहत करके उससे क्षीर, शिखंड आदि नीवियाते बनाये गये हो, तो ये नीवियाता यद्यपि विगई के त्याग वाले को कल्पते हैं, फिरभी ये उत्कृष्ट द्रव्य (=पौष्टिक और स्वादिष्ट रसवाले) है। अतः इनका उपयोग करने वाले को मनोविकार उत्पन्न होता है, और विगई के त्यागी तपस्वीओंको इन द्रव्यों के भक्षण से उत्कृष्ट निर्ज्जरा नही होती है। अतः ये द्रव्य निविर्कृतिक होने पर भी इन उत्कृष्ट विविध प्रकार की तपश्चर्या आदि उत्तम अनुष्ठान तथा स्वाध्याय अध्ययन विगरे करने में असमर्थ बनते हों तो ऐसे मुनिओं को विगई के त्याग में नीवियाते आदि उत्कृष्ट द्रव्य गुरु की आज्ञा से लेना कल्पता है। उसमें किसी प्रकार का दोष नही लगता है। लेकिन पुष्कल प्रमाण में कर्म निर्ज्जरा ही होती है। इस प्रकार से मुनि को भी बिना कारण से निवियाते का उपयोग गुरु की आज्ञा विना [1]करना कल्पता नही है। (प्रव० सारो० वृ० भावार्थ)

१. विना कारण से विगई का उपयोग नही करना चाहिये । इसके लिए सिध्धान्त मे इस प्रकार कहा है। कि नीवियातों का उपयोग भी कारण से ही किया जाता है, और उत्कृष्ट द्रव्य का उपयोग तो कारण विशेषसेभी करने योग्य नही है। ॥१॥ नीवियाते रुप बनी हुई विगई का उपयोग असाधु को युक्त है। लेकिन इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने वाले मुनि के लिए विगई के त्याग में विगई का त्यागवाला आहार का परिभोग युक्त नही है ।

अवतरण:- छ भक्ष्य विगई के उत्तर भेद दर्शाने के बाद इस गाथा में विगई को स्वरुप दर्शाया गया है।

कुंत्तिय-मच्छिय-भमर, महुं तिहा कट्ठ पिट्ठ मज्ज दुहा ।
जल-थल-खगमंस तिहा,घयव्व मक्खण चउ अभक्खा ॥४१॥

शब्दार्थ:- कुंत्तिय=कौतिक,कुंती,मच्छिय = मधुमक्खि, भमर=भ्रमर, कट्ठ=काष्ठ का, वनस्पतिका, पिट्ठ = पिष्ट,लोटका, मज्ज = मदिरा, दारु, जल = जलचरका, थल=स्थलचरका, खग=पक्षीका, मंस=मांस, घयव्व=घृत की तरह,

गाथार्थ:- [1]कुंतिया का, मधुमक्खि का, एव भ्रमर का शहद इस प्रकार शहद के तीन प्रकार हैं। तथा काष्ठ (वनस्पति) मदिरा और पिष्ट (आटे की) मदिरा, इस प्रकार मदिरा दो प्रकार की है। तथा जलचर - स्थलचर एवँ खेचर जीवों का मांस, इस प्रकार मांस तीन प्रकार का है। घृत की तरह मक्खन भी चार प्रकार का है। इस प्रकार अभक्ष्य विगई १२ प्रकार की है।

भावार्थ:- तीन प्रकार का शहद (मधु) गाथा में दर्शाया गया है, वह प्रसिध्ध है। तथा दो प्रकार की मदिरा में काष्ठ की मदिरा कही है। काष्ठ अर्थात वनस्पति के अवयव स्कंध, पुष्प, तथा फल विगेरे इन अवयवों को सड़ाकर अत्यंत उष्ण कर इनका सत्त्व

॥२॥ तथा जो साधु विगई का त्याग करके स्निग्ध और मधुर रसवाले उत्कृष्ट द्रव्य (=नीवियाते विगेरे) का भक्षण करता है तो उस तप का कर्म निर्जरा रुपीफल अति अल्प समझना ॥३॥ संयम धर्म में मंद ऐसे बहुत से साधु दिखाई देते हैं, कि जिन्होने (आहारादि संबंधि) जो प्रत्याख्यान किया है, उस प्रत्याख्यान में कारण से ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को विना कारण से परिभोग करते हैं । ॥४॥ तिल के मोदक, तिलकुट्टी, वरसोले, श्रीफल (कोपरे) के टुकड़े विगेरे, अधिक घोल, क्षीर, घृतपूप (पूरीयाँ) और सब्जि विगेरे (इन नीवियाते उत्कृष्ट द्रव्यों) को कितनेका साधु विना कारण से खाते है ॥५॥ अतः यथोक्त विधिमार्ग के अनुसार चलने वाले और आगम की आज्ञा अनुसार आचरण करने वाले तथा जरा जन्म और मृत्यु से भयंकर ऐसे इस भवसमुद्र से उद्वेग पाये हुए चितवाले मुनिओ के लिए (असाधुओं का आचरण) प्रमाण नही है। जिस कारण से दुःखरुपी दावानल की अग्नि से तप्त ऐसे जिवों को संसार रुपी अटवी में श्री जिनेश्वरकी आज्ञा के अलावा अन्य कोई उपाय (प्रतिकार) नही है ॥८॥ विगई ती परिणति धर्म वाला मोह जिसे उदय में आता है। उसे मोह के उदय होने पर मनको वश में करने के लिए प्रयत्नशील मुनि भी अकार्य में प्रवृत्ति क्यों नही करते ?

१, कुंतियां अथवा कुंता वह वन में उत्पन्न होने वाले छोटे छोटे जंतु ।

निकालकर उन्मादक द्रव्य बनाया जाता है, वही काष्ट मदिरा कहलाती है। गन्ने विगेरे की मदिरा स्कंध मदिरा में,महुडे की मदिरा पुष्प मदिरा में, तथा द्राक्ष विगेरे की मदिरा फलमदिरा कही जाती है। इस प्रकार वनस्पति के अन्य अंगो की मदिरा भी यथासंभव समजना ।

तथा जुवार विगेरे का पिष्ट याने आटे को उबालकर उसमें से उसका सत्व निकालकर मादक द्रव्य बनाया जाता है उसे पिष्ट मदिरा कहीजाती है।

मछली-मत्स्य-कच्छुए-विगेरे जलचर जीवों का मांस-जलचर मास, मनुष्य, गाय, भेस, हिरण, विगेरे स्थलचर जीवों का मांस-स्थलचर मांस तथा चिड़िया, मूर्गे, कबूतर, हँस विगेरे पक्षीओं का मांस खेचर मांस कहलाता है। अथवा शास्त्र में रुधिर-चरबी-और चर्म (चमड़ी) इस तरह भी तीन प्रकार का मांस कहा है।

तथा घृत के समान मक्खन भी ऊंटड़ी के विना मक्खन चार प्रकार का है। क्योंकि ऊंटड़ी के दूध का मक्खन व घी नही बनता है। मक्खन छास से अलग किया हो तब ही अभक्ष्य कहा गया है।

॥ अभक्ष्य ४ महा विगई ॥

ये चारों ही विगईयाँ इन्द्रिय और मनको विकार उत्पन्न करने वाली है, अतः महा विगई कहलाती है। तथा इनमें बहुत सारे स्थावर व त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है। इसी कारण से ये अभक्ष्य विगई साधु व श्रावक को भक्षण करने योग्य नही है। कहा है कि..

आमासु य पक्कासु य, विपच्चमाणासु मंस पेसीसु ।
सययं चिय उववाओ, भणिओ अ निगोयजीवाणं ॥१॥

गाथार्थ:- कच्ची मांसपेशीयाँ में, (=कच्चे में) पकाये हुए मांस में, तथा अग्नि के ऊपर सेके हुए (=पकाये हु) मांस में, इन तीनो ही अवस्थामें निश्चय निगोद जीवों की (अनंत बादर साधारण वनस्पति काय के जीवों की निरन्तर (प्रतिसमय) उत्पत्ति कही है। इस प्रकार मांस में जबकि अनन्त निगोद जीवों की उत्पत्ति होती है, तो द्विन्द्रियादि असंख्य त्रस जीवों की उत्पत्ति तो स्वाभाविक होति ही है। तथा मांस में तथा जरा जन्म और मृत्यु से भयंकर ऐसे इस भवसमुद्र से उद्वेग पाये हुए चितवाले मुनिओं के लिए (असाधुओं का आचरण) प्रमाण नही है। जिस कारण से दुःखरुपी दावानल की अग्नि से तप्त ऐसे जीवों को संसार रुपी अटवी में श्री जिनेश्वरकी आज्ञा के अलावा अन्य कोई उपाय (प्रतिकार) नही है अन्य अभक्ष्यों की तरह अन्तर्मुहूर्त बादमें जीवोत्पत्ति होती है ऐसा नही है, लेकिन जीवसे अलग करने पर तुरन्तही जीवोत्पत्ति प्रारंभ होजाति है। कहा है कि...

मज्जे महुम्मि मंसंमि, नवणीयम्मि चउत्थए।
उप्पज्जंति अणंता, तव्वन्ना तत्थ जंतुणो ॥१॥

अर्थः- मदिरा में, मद्यमें, मांसमें व चौथे मक्खन में इन चारो में (समान आकृति वाले) समान वर्णवाले [1]अनन्त (अनेक) जंतुओं की (त्रसं[2] जीवों की) उत्पत्ति होती है ॥२॥ इस कारण से चारो ही महाविगई अभक्ष्य है।

अवतरण :- इस गाथा में प्रत्याख्यान लेने के दो प्रकार अर्थात दो भांगे का द्धार दर्शाया गया है।

[1]मण-[2]वयण-[3]काय-[4]मणवय-[5]मणतणु-[6]वयतणु-[7]तिजोगि सग सत्त।
[1]कर-[2]कारणु [3]मइ दुतिजुइ, तिकालि सीयाल भंगसयं ॥४२॥

शब्दार्थः- तिजोगि=त्रिसंयोगी भंग-१, सग=सात, सत्त=सात, सगसत्त=सात सप्तक, कर=करना, कार=कराना, अणुमइ=अनुमति, दु (जुइ)=द्धियोगी, तिजुइ=त्रियोगी, तिकालि=तीन कालके, सीयाल=सेंतालीस (४७), भंग=भांगे के प्रकार, सय=सौ (१००)

गाथार्थः- मन-वचन-काया-मनवचन-मनकाया-वचन काया और (त्रिसंयोगी याने) मन वचन काया ये सात भांगे तीन योग के हैं। उसे करना - करना - अनुमोदन करना (तथा द्धिसंयोगी याने) करना, कराना, कराना अनुमोदन कराना, और कराना अनुभोदन कराना तथा (त्रिसंयोगी १ भांगा याने) करना कराना-अनुभोदन करना ये सात भांगे त्रिकरण के होते हैं। (साथ गुनते-सात सप्तक के ४९ भांगे ते हैं) और उसे तीन काल से गुणने पर १४७ भांगे होते हैं।

भावार्थः- प्रत्याख्यान धारण करने वाले अलग अलग ४९ प्रकार से अथवा १४७ प्रकार से - अर्थात दोनो ही रीत से ले सकते हैं। उसके विकल्प तीनयोग - तीन करण - व तीन काल की अपेक्षासे अलग अलग होते हैं। वो इस प्रकार हैं

१-२- यहाँ अनंत शब्द का अर्थ अनेक किया गया है, जिससे मांस में अनंत निगोद जीवों की तथा असंख्य त्रसजीवों की उत्पत्ति और अन्य तीन में असंख्य त्रस जीवों की उप्तत्ति होती है। या इस गाथा केवल में त्रस जीवों की उत्पत्ति के केवल रुप में कही है, इस प्रकार भी माना जा सकता है। अतः अनंत याने अनेक अर्थात असंख्य त्रस जीवों की उत्पत्ति इन चारो में होती है। ऐसा अर्थ जाणना

तीन योग के अयोगी भांगे ३, द्विसंयोगी भांगे ३, व त्रिसंयोगी १ भांगा होता है, इस प्रकार तीन योग के कुल भांगे ७ हुए । तथा तीन करण के भी अयोगी भांगे ३ द्वियोगी भांगे ३ व त्रियोगी भांगा-१, कुल ७ भांगे होते हैं। तीन योग के ७ भांगे को तीन करण के ७ भांगे से गुणा करने पर ४९ भांगे होते है।

इन सात सप्तक के ४९ विकल्प होते है। और उन्हे तीन काल से गुणा करने से १४७ विकल्प भांगे होते है। जिससे प्रत्याख्यान लेने वाले ४९ या १४७ व्यक्ति हों तो भी उन सभी को अलग अलग प्रत्याख्यान दे सकते है। यहाँ करण व योग के ७-७-भांगे -वो इस प्रकार है।

तीन योग के ७ विकल्प		**तीन करण के ७ विकल्प**	
१ मनसे	असंयोगी ३	१ करना	अंसयोगी ३
२ वचनसे		२ कराना	
३ कायासे		३ अनुमोदन करना	
४ मन-वचन से	द्विसंयोगी ३	४ करना-अनुमोदना	द्विसंयोगी ३
५ मन-काया से		५ कराना-अनुमोदना	
६ वचन-कायासे		६ करना-कराना	
७ मन-वचन-कायासे	त्रिसंयोगी १	७ करना-कराना-अनुमोदना	त्रिसंयोगी

इन दोनो सप्तकों के परस्पर विकल्प जोड़ने से ४९ भांगे होते हैं वो इस प्रकार

प्रथम सप्तक	**दूसरा सप्तक**
१ मनसे, करुंगा नही	१ मनसे करवाऊंगा नही
२ वचन से करुंगा नही	२ वचन से करवाऊंगा नही
३ कायासे करुंगा नही	३ कायासे करवाऊंगा नही
४ मन - वचन से करुंगा नही	४ मन-वचन से करवाऊंगा नही
५ मन-काया से करुंगा नही	५ मन-काया से करवाऊंगा नही
६ वचन काया से करुंगा नही	६ वचन कायासे करवाऊंगा नही
७ मन-वचन-कायासे नही करुंगा	७ मन वचन काया से करवाऊंगा नही

तीसरा सप्तक

१ मनसे अनुमोदुंगा नही
२ वचन से अनुमोदुंगा नहीं
३ कायासे अनुमोदुंगा नही
४ मन-वचन से अनुमोदुंगा नही
५ मन कायासे अनुमोदुंगा नही
६ वचन काया से अनुमोदुंगा नही
७ मन वचन काया से अनुमोदुंगा नही

चौथा सप्तक

१ मनमे न करुंगा न करवाऊंगा
२ वचनसे न करुंगा न करवाऊंगा
३ कायासे न करुगा न करवाऊंगा
४ मन-वचन से न करुंगा न करवाऊंगा
५ मन-कायासे न करुंगा न करवाऊंगा
६ वचन काया से न करुंगा न करवाऊंगा
७ मन-वचन कायासे न करुंगा,न करवाऊंगा

पाँचवाँ सप्तक

१ मनमे न करुंगा, न अनुमोदुंगा
२ वचनसे न करुंगा, न अनुमोदुंगा
३ कायासे न करुंगा, न अनुमोदुंगा
४ मन वचनसे न करुंगा, न अनुमोदुंगा
५ मन कायासे न करुंगा,न अनुमोदुंगा
६ वचन कायासे न करुंगा,न अनुमोदुंगा
७ मन वचन कायासे न करुंगा,न अनुमोदुंगा

छट्ठा सप्तक

१ मन से न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
२ वचनसे न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
३ कायासे न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
४ मन वचन से न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
५ मन कायासे न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
६ वचन काया से न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
७ मन-वचन कायासे न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा

सातवाँ सप्तक

१. मन से न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
२. वचनसे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
३. कायासे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
४. मन-वचनसे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
५. मन-कायासे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
६.वचन कायासे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा
७. मन-वचन कायासे न करुंगा न करवाऊंगा न अनुमोदुंगा

इन सात सप्तक के विकल्पो को तीन काल से गुण करने पर ४९X३=१४७ भांगे होते है।

प्रश्न: प्रत्याख्यान भविव्य काल के विषय वाला है, अर्थात भावि में किये जाने वाले अनुचित कार्योंकि त्याग स्वरुप है, फिर तीनो काल के विषयवाला गिनकर उसके १४७ विकल्प क्यों कहे? तथा भूतकाल के अनुचित आचरण का त्याग प्रत्याख्यान करने समय कैसे हो सकता है?

उत्तर: भूतकाल में किये हुए अनुचित आचरण की निंदा और गर्हा करता हूँ उससे विराम लूंगा और भविष्य काल में ऐसे आचरण को नही करुंगा । इस प्रकार प्रत्थाख्यान में भूतकाल की मिंदा, वर्तमान का संवर, और भविष्य का प्रत्याख्यान होता है, अतः तीनो काल के विषय वाला प्रत्याख्यान है, कहाभि है कि ....
अतीतस्य निंदया, सांप्रतिकस्य संवरणेन, अनागतस्य प्रत्याख्यानेन (इति अवचूरिः)

अवतरण:- प्रत्याख्यान का पालन किस तरह करना चाहिये ? तथा प्रत्याख्यान ग्रहण के अन्य चार प्रकार इस गाथा में दर्शाये गये हैं।

एयं च उत्तकाले, सयं च मण वय तणूहिं पालणियं ।
जाणग जाणगपासत्ति, भंग चउगे तिसु अणुन्ना ॥४३॥

शब्दार्थ:- एयं=इन (पौरुषी आदि प्रत्या०), उत्तकाले=कहेहुए काल तक, सयं=स्वयं, जाणग=प्रत्या० के जानकार, (अ) जाणग=प्रत्या० के अजाण अनजान, पास=पासमें, त्ति=इस प्रकार, तिसु=तीन भागमें, अणुन्ना=अनुज्ञा, आज्ञा,

गाथार्थ:- इन (पौरुषी आदि) प्रत्याख्यानों को उनके कहे हुए (एक प्रहर इत्यादि) कालतक स्वयं मन वचन काया से परिपालन करे (लेकिन भांगे नही) तथा प्रत्या० के जानकार और अजानकार के पास से प्रत्याख्यान लेने - देने के चार विकल्पो में तीन विकल्प के विषयमें प्रत्याख्यान करने की आज्ञा है।

विशेषार्थ:- पौरुषी आदि प्रत्याख्यानो का जितना काल बताया है, उतने काल तक प्रत्याख्यान का पालन पूर्ण आदर के साथ करना चाहिये । लेकिन किसी भी प्रकार के सांसारिक कार्यों के प्रलोभन में आकर प्रत्याख्यान समयावधि से पूर्व नही पालना चाहिये या ने भंग नही करना चाहिए । सांसारिक अनेक लाभों का त्याग कर जो ली हुई प्रतिज्ञा का पूर्ण पालन करता है, अन्त में उसे ही महान लाभ प्राप्त होता है। तथा मोक्षमार्ग

की आराधना के लिए आत्मधर्म को प्रगट करने वाली प्रतिज्ञा का त्याग तुच्छ लाभ के लिए नही करना चाहिये।

तथा प्रत्याख्यान के ज्ञाता अज्ञाता के संबंध में चतुर्भंगी इस प्रकार है।

१ प्रत्याख्यान करने वाला ज्ञाता और कराने वाला ज्ञाता

२ प्रत्याख्यान करने वाला ज्ञाता और कराने वाला अज्ञाता

३ प्रत्याख्यान करने वाला अज्ञाता और कराने वाला ज्ञाता

४ प्रत्याख्यान करने वाला अज्ञाता और कराने वाला अज्ञाता

इनमें प्रथम तीन विकल्प शुध्ध हैं, चौथा विकल्प अशुध्ध है।

१. प्रथम तीन विकल्प को शुध्ध हैं, कहा गया है, कारण कि प्रत्याख्यान के आगार-काल विगेरे के ज्ञाता प्रत्याख्यान करने को और कराने वाले भी ज्ञाता हो तो परम शुध्ध है।

२. परन्तु गुरु यदि अल्प क्षयोपशम वाले अथवा लघु वय वाले होने से पच्च० के स्वरुप का ज्ञान न हो, फिरभी श्रध्धालु श्रावक अथवा शिष्य गुरु के बहुमान के लिए गुरु की साक्षी से ही पच्चक्खाण उच्चरना चाहिये। इस प्रकार का शास्त्र विधि है, जिससे अज्ञाता गुरु से भी पच्चक्खाण उच्चरने पर भी स्वयं ज्ञाता होने के कारण लिये हुए प्रत्याख्यान का यथार्थ पालन कर सकता है। अतः दूसरा विकल्प भी शुध्ध है।

३. तथा लेने वाला प्रत्याख्यान का अज्ञाता हों और उच्चराने वाले गुरु ज्ञाता हों तो बादमें वह पच्च० का यथार्थ पालन कर सकता है, अतः तीसरा विकल्प भी शुध्ध है,

४. लेकिन चतुर्थ विकल्प वाले तो दोनो ही अज्ञाता होने के कारण प्रत्याख्यान का स्वरुप की जान कारी न होने से यथार्थ पालन भी संभव नही ! अतः चतुर्थ विकल्प स्पष्ट ज्ञात होता है अशुध्ध ही है। इस प्रकार चतुर्भगी का स्वरुप जानकर प्रत्याख्यान करने वाले को प्रत्याख्यान का स्वरुप समजकर या गुरु से स्वरुप जानकर 'गुरुसे पच्चक्खाण उच्चरना चाहिये।

अवतरण: किया हुआ प्रत्याख्यान जिस छ प्रकारों से शुध्ध होता है, वहछ प्रकार-की शुध्धि का ८ वाँ द्वार इस गाथा के द्वारा दर्शाया गया है।

---

१. इस अर्थ उपर से पच्चकखाण के स्वरूप समजा जावे तो ही पच्चकखाण करना, नही तो नही इस तरह बोलनेवाले प्रत्याख्यान धर्म के निषेधक और विराधक जाणना।

फासिय पालिय सोहिय तीरिय किट्टिय आराहिय छ शुध्धं ।
पच्चक्खाणं फासिय, विहिणोचियकालि जं पत्तं ॥४४॥

शब्दार्थ:- फासिय=स्पर्शित, पालिय=पालित, सोहिय=शोधित, तीरिय=तीरित, किट्टिय=कीर्तित, आराहिय=आराधित, विहिणा=विधि से, उचियकालि=उचितकाल में, पत्तं=प्राप्त हुआ, लिया,

गाथार्थ:- स्पर्शित - पालित - शोधित - तीरित - कीर्तित और आराधित (ये छ प्रकार की) शुध्धि है। विधि पूर्वक उचित समय में (सूर्योदय से पूर्व) यदि प्रत्याख्यान किया हो (लिया हो वह स्पर्शित प्रत्याख्यान कहलाता है।

भावार्थ:- प्रत्याख्यान के स्वरुप को समजने वाले साधु अथवा श्रावक सूर्योदय से पूर्व ही स्वयं या चैत्य के समक्ष अथवा स्थापनाजी के सम्मुख या गुरु के समक्ष प्रत्याख्यान उच्चरने के बाद प्रत्याख्यान की अवधि समाप्त होने से पूर्व या पश्चात गुरु को वंदन कर गुरुसे राग -द्धेष और नियाणे के भाव से रहित बन प्रत्याख्यान करना चाहिये । उस समय गुरु के साथ स्वयं को भी मंद स्वर से प्रत्याख्यान के आलापक के अक्षर का उच्चार करना चाहिये । इस प्रकार लिया हुआ प्रत्याख्यान स्पर्शित प्रत्याख्यान कहलाता है।

अवतरण:- प्रथम शुध्धि का अर्थ कहने के बाद इस गाथा में २-३-४ व ५ वीं शुद्धि का अर्थ कहा जारहा है।

पालिय पुण पुण सरियं, सोहिय गुरुदत्त सेस भोयणओ ।
तीरिय समहिय काला, किट्टिय भोयणसमयसरणा ॥४५॥

शब्दार्थ:- पुणपुण=वारंवार, सरियं=स्मरण किया हो, समहिय=कुछ आधिक, काला=(प्रत्या० के) काल से, सरणा=स्मरण से, याद करने से. समहिय=कुछ अधिक,

गाथार्थ:- किये हुए प्रत्याख्यान का वारंवार स्मरण किया हो तो वह पालित प्रत्या० कहलाता है। तथा गुरु को देने के बाद शेष बचा हुए भोजन करने से शोधित अथवा शोभित (शुद्ध किया या सुशोभित किया) प्रत्या० कहलाता है। तथा (प्रत्या० का जो काल

दर्शाया है उस काल से भी) अधिक काल करने से (प्रत्या० देरी से पारने से) तीरित[1] (तीर्यु) प्रत्या० कहलाता है। किये हुए प्रत्याख्यान को भोजन के समय स्मरण करने से [2]कीर्तित (कीर्त्यु) प्रत्याख्यान कहजाता है ॥४५॥

भावार्थ:- गाथार्थ वत सुगम है।

अवतरण :- इस गाथा में ६ शुध्धि का अर्थ, एवं अन्य ६ प्रकार की शुध्धि दर्शायी गयी है।

इय पडियरियं आरा - हियं तु अहणा छ सुध्धि सद्दहणा ।
जाणण विणय ऽ णुभासण, अणुपालण भावसुध्धित्ति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ:- इय=इस प्रकार, पडियरियं=आचरण कियाहुआ, प्रतिचरित, अहवा=अथवा, दूसरी तरह

गाथार्थ:- इस प्रकार पूर्वोक्त की रीतसे आचरण किया हुआ (=संपूर्ण किया हुआ) प्रत्याख्यान वह आराध (आराधाहुआ) पच्च० कहलाता है, अथवा दूसरी रीत से भी ६ प्रकार की शुध्धि है, वो इस प्रकार, श्रध्धा शुध्धि - जाणशुध्धि (ज्ञान शुध्धि) - विनय शुध्धि -अनुभाषणशुध्धि - अनुपालन शुध्धि और भाव शुध्धि ये ६ शुध्धि है। ॥४६॥

भावार्थ:- इस प्रत्याख्यान भाष्य में प्रत्याख्यान का जिस प्रकार का विधि कहागया है, उसी के अनुसार अथवा पूर्व में कही गयी पाँच शुध्धि के अनुसार जिस प्रत्याख्यान का आचरण किया हो अर्थात संपूर्ण किया हो उसे आराधित प्रत्या० कहा जाता है। तथा अन्य तरीके से भी ६ प्रकार की शुध्धि दर्शायी गयी है, उसका भावार्थ इस प्रकार है।

१. श्रध्धाशुध्धि:- सिध्धान्त में साधु अथवा श्रावक संबंधि प्रत्याख्यान जिस [1]रीति से जिस अवस्था में और जिस समय करने के लिए कहा है, उसी तरह, उसी [2]अवस्था में और उसी [3]काल मे ही प्रत्याख्यान करना उचित है ऐसी श्रध्धा रखना उसे श्रध्धाशुध्धि कहते हैं।

२. ज्ञानशुध्धि :- अमुक प्रत्याख्यान अमुक अवस्थामें , अमुक काल में अमुक रीत से करना उचित है, और अन्य रीत से करना अनुचित है, इस प्रकार का ज्ञान हो उसे ज्ञानशुध्धि कहते हैं।

---

१. प्रत्याख्यान का समय पूर्ण होने के उपरांत भी कुछ अधिक काल बीतजाने के बाद भोजन करना उसे ।

२. भोजन के समय मेरे अमुक प्रत्या० था उस का काल पूर्ण हुआ अतः 'मै भोजन करुंगा' इस प्रकार बोलने से कीर्तित प्रत्या० कहलाता है (अवचूरि:)

१. रीतिय याने मुनिके पंचमहाव्रतरुप मूलगुण प्रत्याख्यान और पिंडविशुध्धि आदि उत्तरगुण प्रत्याख्यान और श्रावक के पाँच अणुव्रतरुप मूलगुण प्रत्याख्यान और दिशिपरिमाण आदि उत्तरगुण प्रत्याख्यान और उन सभी का उच्चारविधि समजना।

३. विनयशुध्धि :- गुरु को वंदन कर प्रत्याख्यान लेना उसे विनयशुध्धि कहते है।

४. अनुभाषणशुध्धि :- गुरु जब प्रत्याख्यान उच्चराते हों तब स्वयं भी साथमें मंद स्वर से प्रत्याख्यान के आलापक बोले उसे अणुभाषणशुध्धि कहते हैं। (अथवा गुरु पच्चक्खाइ शब्द बोले तब पच्चक्खामि और वोसिरइ कहे तब वोसिरामि बोलना उसे अनुभाषणशुध्धि कहते हैं।

५. अनुपालन शुध्धि – विषम संकट अवस्था में भी ग्रहण किये हुए प्रत्याख्यान को सम्यग रीत से पालन करना उसका न भंग करना, उसे अनुपालन शुध्धि कहते हैं

६. भाव शुध्धि – इस लोक में चक्रवर्ति आदि के सुःखकीऔर परलोक में इन्द्रादि के सुख की अभिलाषा रहित नियाणा रहित । [४]राग द्वेष रहित पच्चक्खाण करना उसे भाव शुध्धि कहते हैं।

---

२. अवस्था:- याने साधु के विषय में जिनकल्प स्थविरकल्प परिहारकल्प यथालंदकल्प बारह प्रतिमाधारी – इत्यादि, तथा ग्लानादि अवस्था, और श्रावक के विषयमें प्रतिमाधर, प्रतिमारहित, नियतव्रती और अनियतव्रती – इत्यादि

३. काल– याने सुकाल – दुष्काल – वर्षाकाल – शेषकाल इत्यादि [१]नमुक्कार सहियं प्रत्या० का ग्रहण सूर्योदय से पूर्व और पूर्ण काल सूर्योदय से एक मुर्हूत बादमें, इस प्रकार प्रत्येक प्रत्याख्यान का यथासंभव काल समजना।

इन तीन विषयों को अवचूरि में संक्षेप में इस प्रकार कहा है। अथवा इति यत्साधुश्रावकविषयं मूलोत्तरगुण प्रत्याख्यानं यत्र जिन कल्पादौ यत्र सुभिक्षदुर्भिक्षादौ काले च तथा श्रीसर्वज्ञैरुक्तं तत्त्र तथा श्रध्धत्ते इति श्रध्धान शुध्धि। ।

(किसी प्रिय वस्तु का विरह होने पर उसे पुनः प्राप्त करने के लिए या गुरु को व लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए, या चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त करने के हेतु से जो प्रत्याख्यान तपश्चर्या की जाती है उसे रागसहित प्रत्याख्यान कहाजाता है। तथा जो वस्तु भाती नही है, अथवा रुचिकर नही है उसका त्याग करना, अथवा दुश्मन को संताप उपजाने के लिए तेजोलेश्यादि लब्धि प्रापृ करने के लिए जो प्रत्याख्यान लिया जाता है उसे द्वेष सहित प्रत्याख्यान कहते है।

अवतरण:- प्रत्याख्यान करने से इहलोक व परलोक में क्या फल मिलता है वो इस गाथा में ९ वें द्धार के रुप में दर्शायागया है।

पच्चक्खाणस्स फलं इहपरलोए य होइ दुविहं तु ।
इहलोए धम्मिलाई दामन्नगमाइ परलोए ॥४६॥

शब्दार्थ:- सुगम है।

गाथार्थ:- इस लोक का फल और परलोक का फल इस प्रकार प्रत्याख्यान का फल दो प्रकार है। इस लोक में धम्मिलकुमार विगेरे को शुभफल प्राप्त हुआ, और परलोक में दामन्नक विगेरे को शुभ फल प्राप्त हुआ ! ॥४६॥

विशेषार्थ:- सुगम है, लेकिन इस लोक व परलोक के विषय में दृष्टान्त इस प्रकार है। इस लोक के विषय में ध म्मिलकुमार का दृष्टान्त

जंबूद्धीप के दक्षिण भरतक्षेत्र में कुशार्त नाम के नगर में सुरेन्द्रदत्त नामका श्रेष्टि रहता था । उस की पत्नी का नाम सुभद्रा था। संतान न होने के कारण दोनो चिन्तित रहते थे । लेकिन धर्म के प्रभाव से पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी, ऐसा जानकार दोनो ही धर्माराधना में लीन रहने लगे। धर्म प्रभाव से पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम धम्मिल रखा गया । बालक बड़ा हुआ, अनेक कलाओं में निपुणता प्राप्त की, धर्मशास्त्रो का अध्ययन किया और धर्मक्रियाओं के प्रतिश्रद्धावन्त बना। यौवन वय में माता पिताने इसी नगर के निवासी धनवसु शेठ की पुत्री यशोमति के साथ धम्मिल की शादी करवाई ! दोनो ने विद्याभ्यास भी एक ही जैन गुरु के पास किया था ! दोनो का संसार व्यवहार सुख पूर्वक चलरहा था ! लेकिन कुछ वर्षोमें ही छम्मिल का मन संसार से विरक्त बनगया । नव विवाहित पत्नि

अथवा तप संबंधि अभिमान करना, गुरु से नाराज होकर तप करना, पदार्थोके लोभ से तप करना, तपश्चर्या मुश्किल से हो रही हो उसपर क्रोध या खेद प्रगट करना, उसे भी द्धेष सहित प्रत्याख्यान कहते है।

तपश्चर्या में (मल्लिनाथ प्रभु के पूर्व भव कीतरह) माया करना, या किसी भी प्रकार का माया प्रपंच करना, तथा धन-धान्यादि के विषय में लोभ करना उसे रागसहित प्रत्याख्यान कहते हैं। अतः सर्व प्रकार के राग द्धेष से रहित होकर -प्रत्याख्यान करना चाहिये ।

मायाजाल स्वरुप लगने लगी । जब यशोमति को इसका आभास हुआ तो अपनी सखियो से ये बात कही । सखियों ने सुभद्रा शेठानी को सारी बात कही। शेठानी को चिन्तित देखकर शेठ ने पूछा । जब जाना कि धम्मिल संसार से विरक्त बनगया है। यह जानकर दोनो ही बहुत चिन्तित गुए। विचार करने लगे पुत्र को व्यवहार मार्ग की जानकारी नही है, लोगों में भी वो मूर्ख गिनाजाता है।

कालान्तर में शेठ के मना करने के बावजूद भी शेठाणि ने धम्मिलको जुगारीयोंको सौंप दिया । खराब संगति के कारण बह वैश्यागामी बन गया । माता प्रतिदिन वैश्या की याचना के अनुसार धन भिजवाती रहती है। एक दिन वैश्या के यहाँ से शेठाणी ने धम्मिल को घर बुलवाने केलिए नोकर को भेजा, लेकिन वह नही आया । पुत्र के वियोग में शेठ शेठाणी मृत्यु को प्राप्त हुए। धन भी समाप्त हुआ । यशोमति निर्धन बन गयी, वहाँ से अपने पिता के वहाँ चलीगयी ।

वसंतसेना वेश्याने धम्मिल से धनप्राप्ति बंध होने के कारण घर से निकाल दिया। इधर उधर भटकते भटकते उसे श्री अगड़ दत्त महामुनि मीले । मुनि उसे प्रतिबोंध करने के लिए उपदेश दिया । मुनिसे प्रति बोधित होनेपर भी उसने कहा हे भगवन्त मुझे अभी भी सांसारिक सुख भोगने की ईच्छा हैं, अतः मेरी ईच्छा पूर्ण हो वैसा उपाय बताने की कुपा करे बाद में आप कहेंगे वो करुंगा, गुरुने कहा की मुनि संसारिक सुख का उपाय नही बताते है। फिर भी भावि परिणाम इसमे आश्रव संवर रुप बनने वाला है अत: उपाय दर्शाता हू - 'तुं छ मास तक चउविहार आयंबिल तप करना व द्रव्यं से मुनिवेष धारण करना, दोष रहित गोचरी लाना, मुनिधर्म का पूर्ण पालन करना, नव लाख नवकार मंत्र का जाप करते मेरे द्धारा बताया हुआ षोडशाक्षरी मंत्र का जाप करना इस प्रकारछ मास साधना करने पर तेरी ईच्छा पूर्ण होगी'। (अगड़ दत्त मुनिद्धारा बतायी गयी विशेष विधि - धम्मिल कुमार चरित्र से जानना)

धम्मिलकुमार नें गुरु भगवन्त के निर्देशानुसार तप-जप किया, तप के प्रभाव से देवप्रसन्न हुआ, मुनि वेष का त्याग करवा कर देव ने उसकी ईच्छा को पूर्ण किया । पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म साथ अनेक प्रकार के सांसारिक सुखो की प्राप्ति हुई ।

एकदा धर्मरुचि अणगार वहाँ पधारे । उपदेश श्रवण करने के लिए धम्मिलकुमार भी परिवार के साथ वहाँ गया । वंदन कर उपदेश श्रवण करने के लिए बैठा । उपदेश में गुरुभगवन्त ने उसका पूर्वभव दर्शाया । जिससे वैराग्य पाकर राज्य की बागडोर पुत्र को सोम्पकर चारित्र अंगीकार किया ऽ दिर्घ कालतक चारित्रका पालनकिया । अंत में एकमासका अनशन कर काल करके बारहवें अच्युत नाम के देव लोक में देव बने । वहाँ से कालकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर चारित्र ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति करेंगे।

(इति धम्मिल कुमार दृष्टान्त)

२) परलोकमें शुभ फल प्राप्ति (दामन्नक का दृष्टान्त)

राजगृहि नगरी के निवासी कुलपुत्र सुनंद को उसके मित्र जिनदास श्रावक ने उपदेश देकर मुनि भगवन्त से मांस का भोजन नही करने का प्रत्याख्यान दिलवाया ! एक बार देश में अकाल पड़ा सभी मांसाहारी बने। सुनंद का परिवार क्षुधासे पिड़ाने लगा। फिरभी वह मत्स्यादि जलचर जीवों को मारने के लिए नही जाता है। एक दिन साला के अति आग्रहसे सुनंद सरोवर पर गया जाल देकर मछली पकडने को कहा ले किन जाल में जो मछली आती है, उसे वापस छोड़देता है । इस प्रकार उसने तीन दिन तक किया। अंत में अनशन कर मांस के प्रत्याख्यान के कारण मृत्युको प्राप्तकर राजगृ ही नगरी में दामन्नक नाम का श्रेष्ठिपुत्र बनता है। आठ वर्ष की उम्र में ही मरकी के रोग के कारण माता-पिता स्वर्गवासी बने । तब दामन्नक इसी नगरी के सागरदत्त सेठ के यहाँ नोकरी करने लगा। एकदिन मुनिभगवन्त भिक्षार्थे वहाँ पधारे, सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता एक मुनिने दूसरे मुनि से कहा ये दामन्नक सेठ के घर का मालीक बनेगा, ये बात सेठ सुनलेता है। सेठ उसे मरवाने के लिए चांडाल के यहाँ भेजता है। लेकिन यांडाल उसकी छोटी अंगुली काटकर उसे छोड़देता है । वह वहाँ से सेठ के ही गोकुलवाले गाँव मे चलाजाता है, वहाँ गोकुल के स्वामी ने उसे पुत्रवत रखा । कितनेक वर्षो के बाद सागर दत्त सेठ वहाँ आता है, दामन्नक को पहचान जाता है। पुन: उसे मरवाने के लिए पत्र में विष दे देना इस प्रकार लिखकर लेख के साथ उसे अपने घर भेजा । थकावट के कारण वह गाँव के बाहर एक देवमंदिर में सो गया । दैवयोग से सेठ की पुत्री वहाँ दर्शन के लिए आती है, दामन्नक का रुप देखकर मोहीत हो जाती है । उसकी दृष्टि पत्र पर पड़ती है, पत्र में विष की जगह विषा सुधार दिया घरजाने पर शेठ के परिवार वालो विषा के साथ शादी करवादी ! सेठ घर आया अनर्थ हुआ जातकर पुनः मरवाने का उपाय किया, लेकिन उसमें उसका पुत्र ही मारागया । साधु का वचन असत्य नही होता है, ऐसा मानकर सेठ ने दामन्नक को घर का मालिक बनाया । राजाने भी नगर सेठ की पदवी दी ।

एकबार गुरु भगवन्त वहाँ पधारे। दामन्नक ने धर्म देशना सुनी, जातिस्मरण ज्ञान से पूर्व भवमें मांस का प्रत्याख्यान किया उसका स्मरण हुआ। जिससे सम्यक्त्व प्राप्तकिया। धर्माराधना करके देव लोक में देव बना। वहाँ से कालपूर्ण कर महाविदेहक्षेत्रमें जन्मलेकर, चारित्र ग्रहणकर मुक्तिपद को प्राप्त करेंगे।

॥ इति दामन्नक दृष्टान्तम ॥

अवतरण:- प्रत्याख्यान भाष्य की समाप्ति के प्रसंग पर इस गाथा में प्रत्याख्यान करने से श्रेष्ठतम फल की प्राप्ति होती है, जिसे दर्शाया गया है। और इसी के साथ भाष्य पूर्ण होता है।

पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं।
पत्ता अणंत जीवा, सासयसुक्खं अणाबाहं ॥४८॥

शब्दार्थ:- इणं =इस, उद्दिट्ठं=उद्दिष्ट, कहे गये, पत्ता=प्राप्त किया, सासयसुक्खं= शाश्वत सुखके।, मोक्षको, अणाबाहं=अनाबाध, पीड़ा रहित,

गाथार्थ:- श्री जिनेश्वर प्रभु द्वारा कहे गये इस प्रत्याख्यान भाष्य का भावसे आचरण कर अनंत जीवोने पीड़ारहित मोक्ष सुख को प्राप्त किया। ॥४८॥

---

१. इन कुप्रवचनो में कितनेक वचन शास्त्रोक्त भी हैं। लेकिन शास्त्रो में तो इन वचनो का उल्लेख जीवों को धर्म सम्मुख करने की दृष्टि से कहे गये हैं, फिर भी इन्ही वचनों का प्रयोह प्रत्याख्यान धर्म को हल्का बताने के लिए बोलाजाने से कुप्रवचन कहा गया है।

२. मरुदेवी माता, भरत चक्री और श्रेणिकराजा इत्यादिने उद्यपि व्यक्त (लोक दृष्टि में आवे वैसा) प्रत्याख्यान धर्म नही पाया, फिर भी शास्त्र दृष्टि से तो व्रत - नियमादि अव्यक्त प्रत्याख्यान धर्म से ही मोक्षादि भाव प्राप्त किये है। फिर भी पांच इन्द्रियों के विषय में पराधीन बने हुए हैं, तथा विषय भोग त्याग करने योग्य हैं, ऐसी मान्यतारूप श्रद्धामार्ग में जो जीव अभितक नही आये हे वेहि ऐसे कुप्रवचन प्रगट करते है। स्वयं की विषय पराधीनता को बचाने के लिए भक्ष्याभक्ष्य के विवेक में कुछ जानते नही फिर भी आत्मधर्म दर्शाने के लिए प्रयत्न करते है।

विशेषार्थः- प्रत्याख्यान का स्वरुप - विधि अनंत ज्ञानि श्री जिनेश्वरोने ही कही है, और उसका सर्वोतम फल जीवको मोक्षसुख की प्राप्ति होना है। तथा प्रत्याख्यान विधि का आचरण करके भूतकाल में अनंत जीवोंने मोक्षसुख प्राप्त किया है, वर्तमान काल में भी अनंत जीव (महाविदेह क्षेत्र में) मुक्तिसुख प्राप्त कर रहे है। और भविष्य में भी अनंत जीव मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे।

॥ प्रत्याख्यान धर्म का आचरण और उस विषय में लौकिक कुप्रवचनो का त्याग करनेका उपदेश ॥

प्रभु के द्धारा प्ररुपित प्रत्याख्यान धर्म का पालन करना ही मानवभव और जैन धर्म प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट फल है। उसके पालन करने से ही आत्मगुणो संपूर्ण प्रगट होते है, और परमानंद की (मोक्ष की) प्राप्ति होती है। फिर भी वीर्यांतराय कर्म की प्रबलता के कारण प्रभुद्धारा प्ररुपित प्रत्याख्यान धर्म का पालन करने जैसी शक्ति न होनेसे तथा मोहनीयकर्म के अप्रत्याख्या नावरण कर्म के वजहसे ग्रहण न कर सकें, फिर भी प्रत्याख्यान धर्म मोक्षका परम अंग है, और केवल भावसे (अव्यक्त) अथवा द्रव्य के साथ भावसे (व्यक्त) भी प्रत्याख्यान धर्म जहाँ तक प्राप्त नही होता है। वहाँ तक मुक्ति नही मिल सकती इस प्रकार की सम्यक श्रद्धा अवश्य रखना चाहिये। प्रत्याख्यान के विषय में लौकिक कुप्रवचन

प्रत्याख्यान धारक भव्य आत्माओं को, उनके भावसे पतित करने वाले लौकिक कुप्रवचनों का त्याग करना चाहिये। वो इस प्रकार हैं[1]।

कु प्रवचन

१. मनसे संकल्प लेना प्रत्याख्यान ही है, हाथ जोड़कर उच्चरने से क्या विशेष है ?

२. [2]मरुदेवी माता ने क्या प्रत्याख्यान किया था ? फिर भावना से मुक्तिपद पाया अतः भावना उत्तम है।

३. भरत चक्रवर्ति ने छ खंड का राज्य भोगते हुए व्रत - नियम विना भावना मात्र से केवल ज्ञान प्राप्त किया।

४. श्रेणिकराजा नवकार सी जैसा प्रत्याख्यान भी नही करते थे फिर भी प्रभु ऊपर के प्रेममात्र से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया। अतः प्रत्याख्यान में क्या विशेष है ?

५. दान, शीयल, तप, और भाव रुप चार प्रकार के धर्म में भी भाव धर्म को श्रेष्ठ कहा है, लेकिन दानादि को नही कहा ।

६. व्रत - नियम ये तो क्रिया धर्म है, और क्रिया तो ज्ञान की दासी है। अतः ज्ञानादि रुप भावना उत्तम है। लेकिन व्रत - नियमादि क्रिया उत्तम नही।

७. प्रत्याखयान लेकर उसका पालन न कर सकें तो व्रतभंग रुप महादोष लगता है। इससे तो अच्छा है कि प्रत्याख्यान लिये विना ही व्रत नियम को पालना उत्तम है।

८. प्रत्याख्यान लेने पर भी मन काबु में नही रहता है। नित्य दैनिक चर्या प्रमाणे तो मन आहार - विहार में ही घुमता है, फिर प्रत्याखयान लेने से क्या लाभ ?

९. कोई जीव भाव विना या अलभ्य (जिस की प्राप्ति संभव न हो ती) वस्तु का प्रत्याख्यान करे, तब लोग उसका मज़ाक करते है कि इसमे तुने क्या छोड़ा ? ना मिली नारी, बावा ब्रहम चारी जैसी बात है।

१०. सभा के बीच खड़े होकर प्रत्याख्यान, 'यह तो मैने प्रत्याख्यान' किया है, ऐसा लोगों को दर्शाने के लिए आड्बर मात्र है। अतः जिस प्रकार गुप्तदान श्रेष्ठ है, वैसे ही मन में संकल्प कर कियाहुआ प्रत्याख्यान ही श्रेष्ठ फल वाला है।

इन दस के अलावा भी अन्य बहुत से कुप्रवचन हैं , ये कुप्रवचन धर्म के घातक हैं , धर्म से पतित करने वाले होने के कारण प्रत्याख्यान धर्म में श्रद्धावन्त जीवों को इनका आचरण नही करना चाहिये, और इस प्रकार न तो बोलना नही सुणना चाहिये । इति प्रत्याख्यान धर्मेलोकिक कुप्रवचनानि ॥ ३॥

इस प्रकार तीनो ही भाष्य पूर्ण हुए, मतिदोषादि के कारण भूलचूक हो गयी हो, उसका मिथ्यादुष्कुत हो, तथा सज्जन वाचक वर्ग भूलचूक को सुधारकर पढे, ऐसी हमारी विनंति है ।

॥ इति .. .. .. समाप्तम् ॥

इस प्रकार **अशोकवृक्ष,सुरपुष्पवृष्टि,दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामंडल, दुंदुभि और छत्रत्रय ये आठ प्रातिहार्य है** तथा नीचे दो चरणों के बीच आगे धर्मचक्र चल रहा है नवग्रह और दशदिग्पाल विगेरे प्रभुजी की सेवा कर रहे है। ये सारी घटनाएँ परिकर मे होती है। श्री तारंगा तीर्थ में भव्य परिकर युक्त श्री अजितनाथ परमात्मा की भव्य प्रतिमा है। उस भव्य परिकर को देखेंगे तो सारी हकीकत स्पष्ट समझ मे आ जायेगी।

इस प्रकार स्नान करवाने वाले देवों को देखकर परमात्मा की जन्मावस्था का चिंतन, मालाधारी को देखकर राज्यावस्था का चिंतन। प्रभुजी के मस्तक पर तथा दाढी-मूछके केश देखकर मुनि अवस्था का चिन्तन, परमात्मा दीक्षा लेते समय स्वहस्त से पंच मुष्ठि लोच करते है। फिर भी जो केश बाकी रह जाते है वो बढते नहीं है। अवस्थित रहते है और प्रतिमाजी के ऊपर केश तथा शिखा(चोटी) का आकार होता है। वो अवस्थित केश की अपेक्षा से होता है जिससे केश वृध्दि के अभाव रूप केश का अभाव यहां चिंतन करना है।

आठ प्रातिहार्यो को देखकर परमात्मा की तीर्थंकर अवस्था का चिंतन करना।

पर्यंकासन और कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रभुजी की प्रतिमा होती है उसे देखकर परमात्मा की सिध्धअवस्था का चिंतन करना।

दाहिनी जंघा और पिंडी के बीच बांयाँ पाँव स्थापन किया जाय, बाँयी जंघा और पिंडी के बीच दाहिना पाँव स्थापन किया जाय, नाभि कमल के पास में दोनों हाथ सीधे एक दूसरे पर स्थापन किये हो वो पर्यंकासन अवस्था कहलाती है कितनेक प्रतिमाजी काउस्सग्ग मुद्रा में भी होते हैं इन दोनों अवस्थाओं को देखकर परमात्मा मोक्ष में गये हैं, अत: सिध्धावस्था का चिन्तन करना।

जिसप्रकार तीर्थंकर परमात्मा पूज्यतम है वैसे ही उनकी और उनके जीवन पर आधारित अनेक हकीकतें और अवस्थाऐं भी नय -निक्षेप की अपेक्षा से पूज्यतम है। और वह सहेतुक और नियमानुसार है। जो तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमाओं की अवस्था भेद की अपेक्षा से अलग अलग पूजा विधि स्वीकार नहीं करते वो नय निक्षेप को समझते नही है, अर्थात् वो जैन तत्त्वज्ञान का अपमान कर रहे है, ऐसा कह सकते हैं। याने उत्सूत्रभाषी और असत्यभाषी कहे जाते हैं। छोटे बालक का पालन पोषण करने वाली माँ जब उसे खिलाती पिलाती हो तब ही पूज्य है और खाना बनाती हो या पानी भर रही हो तब पूज्य नहीं है। ऐसी बात नहीं है, वो सर्व अवस्था में समान भाव से पूज्य है इसी प्रकार जिनेश्वर परमात्माओं के नजदीक और दूर के द्रव्य निक्षेप भी पूज्य है, इसलिये च्यवन से लेकर सिध्धावस्था तक की अवस्थाएँ भी पूज्य है। प्रतिमा की रचना में सर्व अवस्थाओं का विधान नहीं हो सकता।

श्री लब्धि-विक्रम स्थूलभद्र पट्टालंकार

कविरत्न व. त.
100 ओली के आराधक प. पू. आ. देव
श्री कल्पयशसूरीजी म.सा.

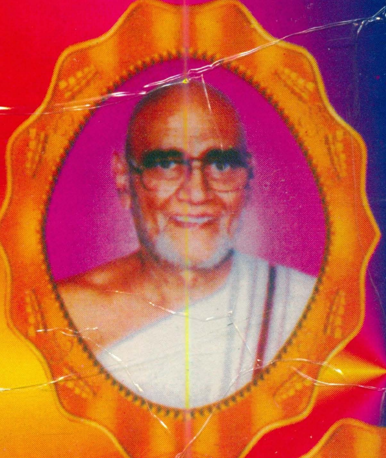

स्वाध्याय मग्न व. त.
100 ओली के आराधक प. पू. आ. देव
श्री अमितयशसूरीजी म.सा.

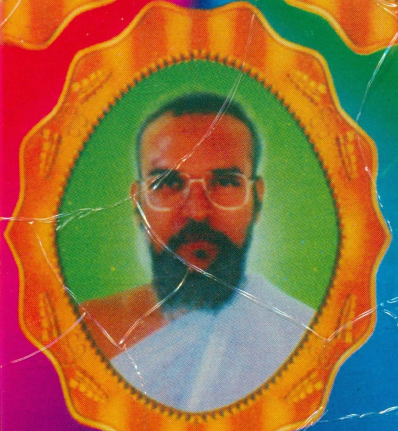

वर्धमान तपोनिधी प्रवर्तक प्रवर 100+45 ओली के आराधक
प.पू.मु. श्री कलापूर्ण विजयजी म.सा.

विमोचन कर्ता

श्रीमति विमलादेवी धर्मपत्नि श्रीमोतीलालजी मुणोत

Service before Self

MARUTHI MEDICALS

THE LEADING MEDICAL STORE OF KARNATAKA

No. 13 & 14. Shree Moti Building, Service Road,
REMCO Layout, Vijaynagar,
Bangalore - 560 040
Ph. : 080-23301807, 23500029